प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, पो० गिरगांव, बम्बई ।

मुद्रक—
अनंत आत्माराम मोरमकर
श्रीलक्ष्मी-नारायण प्रेस
४०२ ठाकुरद्वार बंबई नं. २

विषय-सूची।

पृष्ठसंख्या

१ सभ्यताका प्रारम्भ ।

मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े-मकोड़े आदि अनेक प्रकारके जीव संसारमें भरे पड़े हैं,—ये सब खाते-पीते, सोते-जागते, चलते-फिरते, मिलते-जुलते, लड़ते-झगड़ते संतान पैदा करते और उनका पालन-पोषण करते हैं। इनमसे हाथी, घोड़ा, गाय, भैंस आदि कई जीवधारी डीलडौलमें मनुष्यसे बहुत बड़े हैं, और शेर, चीता आदि कई जीवधारी उससे ताकतमें भी अधिक हैं; परन्तु नई नई बातोंके निकालनेकी बुद्धि और आपसमें बातचीत करनेकी शक्ति ये दो बातें मनुष्यमें ऐसी हैं जो अन्य जीवोंमें नहीं पाई जातीं। इन्हीं दो बातोंके कारण मनुष्यका बड़प्पन और मनुष्यत्व जाहिर होता है। मनुष्यके सिवा जितने जीव हैं वे सब अपने अपने स्वभावके अनुसार सदासे एक ही प्रकारका जीवन व्यतीत करते आ रहे हैं। लाखों करोड़ों वर्ष बीत जाने पर भी उन्होंने अभीतक अपने जीवन–निर्वाहकी विधिमें जरा भी उन्नति या अदल–बदल नहीं की, और न भविष्यमे कुछ अदल-बदल करनेकी आशा ही है। यह सच है कि इनमेंसे कई जीवधारी बड़ी बड़ी होशयारी और कारीगरीका काम करते हैं कि जिसे देखकर मनुष्य-बुद्धि भी आश्चर्य्यचकित हो जाती है; जैसे–मकड़ीका जाला बुनना और शहदकी मक्खियोंका छत्ता बनाना आदि। लेकिन मकड़ी जैसा जाला आज पूरती है वैसा ही वह सदासे पूरती आ रही है, इसीप्रकार मक्खियाँ भी जैसा छत्ता आज बनाती हैं वे सदासे वैसा ही

बनाती आ रही हैं। यही कारण है कि किसी मकड़ीके पूरे हुए एक जालेमें यदि छह कौने हैं तो उस जातिकी सभी मकड़ियोंके जालेमें छह कौने ही होंगे। यह कभी नहीं हो सकता है कि एक ही जातिकी मकड़ियोंमें कोई तो छह कौनेका जाला पूरे और कोई पाँच या सातका। एक जातिकी सभी मकड़ियोंके जालेमें एक ही प्रकारके कौने होंगे। यही बात मक्खियोंमें भी पाई जाती है। यदि उनके एक छत्तेकी कोठरियाँ पाँच पाँच कौनेकी हैं तो उस जातिकी मक्खियोंके सभी छत्तोंकी कोठरियाँ सर्वत्र पाँच ही कौनोंकी मिलेंगी, इसमें किसी प्रकारकी कमी वेशी न कभी उन्होंने की है और न वे कर सकती हैं। इस लिए बुद्धिमानोंका कथन है कि मकड़ीका जाला, मक्खियोंका छत्ता और वया पक्षीका घोंसला आदि जितने बड़े बड़े चतुराईके कार्य्य इन जीवोंमें दिखाई देते हैं उनको वे अपने विचार-बलके द्वारा नहीं, किन्तु अपनी अपनी प्रकृति या स्वभावके अनुसार ही करते हैं। यही कारण है कि वे उक्त कार्य्य बिना देखे और बिना सीखे ही कर लेते हैं। उदाहरणार्थ यदि किसी वया पक्षीका अंडा किसी गुप्त स्थानमें रखकर किसी अन्य जातीय पक्षी द्वारा सेया (पोषित किया) जाय, तो उससे निकला हुआ वयाका बच्चा भी बड़ा होकर वैसा ही घोंसला बनावेगा जैसा कि अन्य वये बनाते हैं। इसी लिए विद्वानोंने इन जीवोंकी इस चतुराईको विचार-शक्ति-जन्य नहीं, किन्तु पशु-प्रकृतिजन्य Instinct of Brutes ही बतलाया है।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि ये जीव कोई नवीन बात सीख ही नहीं सकते, बल्कि इसका मतलब केवल इतना ही है कि वे अपनी बुद्धिसे कोई नवीन बात पैदा नहीं कर सकते हैं। विचारबुद्धिकी हीनताके कारण ही ये जीव अपने खाने-पीने आदिके लिए किसी प्रकारकी कोई वस्तु नहीं बनाते हैं और न उसके लिए किसी प्रकारकी मिहनत ही करते हैं। इनको तो जो कुछ बनी बनाई वस्तु

मिल जाती है उसी पर वे अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार जीवन-निर्वाह किया करते हैं। परन्तु मनुष्यने अपने बुद्धिवलसे अर्थात् नई नई बातोंके निकालनेकी शक्तिसे अपने आरामके वास्ते अनेक अद्भुत और उपयोगी बातें निकाल ली हैं,और वह आगेको और और नवीन नवीन तर्कीबें निकालता ही जा रहा है। देखो, पशुगण सदासे कच्चे फल मूल, कच्चा मांस और कच्चा घास-पात ही खाते हैं, जिसके पचानेके लिए उन्हें अपनी जठराग्निसे बहुत काम लेना पड़ता है, इतने पर भी वे उसे बहुत ही कम पचा सकते हैं, जिससे बहुत भोजन करने पर भी उन्हें बहुत ही थोड़ा रस मिलता है और इसी लिए इन जीवोंको दिन भर खाने और मल-मूत्र त्यागनेके सिवा दूसरा काम ही नहीं रहता है। परन्तु मनुष्यने पहले तो यह बात खोज निकाली कि खानेकी वस्तुको अग्निमें पका लेनेसे पेटकी पाचन-शक्तिको बहुत कम काम करना पड़ता है, और थोड़ा खानेसे ही इतना रस निकल आता है जो शरीरके पोषणके लिए यथेष्ट हो जाता है। इसके बाद मनुष्यने यह भी ज्ञात किया कि भोजनके साथ थोड़ासा नमक खालेनेसे खाना और भी आसानीके साथ पच जाता है। इन बातोंके ज्ञानसे उसका पशुओंके समान दिन भर खानेका काम छूट गया, और उसको अपने सुखकी अन्य सामग्री जुटानेके लिए बहुत अवकाश मिल गया।

इसी प्रकार धीरे धीरे मनुष्यने मिट्टीके बर्तन बनाकर उनको आगमें पकाना और फिर उनमें अपना भोजन बनाना सीखा। फिर उसने पत्थरोंको तोड़-फोड़कर तथा खोद या घिसकर भी अनेक प्रकारके बर्तन, औजार तथा हथियार बनाना प्रारंभ किया। इसी प्रकार वह काँसा, ताँबा आदि नरम धातुओंको आगमें गलाकर उनको साँचेमें ढालना या ठोक पीटकर अनेक प्रकारकी उपयोगी वस्तुएँ बनाना सीख गया। अन्तमें लोहे जैसे कड़े पदार्थको भी काममें

लानेकी विधि उसे मालूम हो गई। इसी प्रकार सरदी गरमीसे अपना शरीर बचानेके लिए पहले तो मनुष्यने हिरण आदि पशुओंका चमड़ा ओढ़ा, फिर वृक्षोंके पत्ते और छाल लपेटी, फिर वृक्षोंकी छालसे मोटा-झोटा बुनना शुरू किया, फिर वह पशुओंके लम्बे लम्बे बालोंको लेकर कम्बल बुनने लगा, वृक्षोकी छालके रेशोंसे डोरी बटकर उनसे टाट बुनने लगा और इस प्रकार अन्तमें वह रूईका कपड़ा भी बनाने लग गया। इसी प्रकार वर्षा और धूप आदिसे बचनेके लिए पहले तो उसने वृक्षोंपर घास-फूस डालकर छप्पर सा बनाया, फिर वृक्षोंकी पतली पतली छड़ियों और बाँसोंको बाँधकर उनका एक छप्पर बना कर वृक्षोंपर डाला, फिर छप्परके ही दो पल्ले बनाकर और उनको जमीन पर तान कर घरसा बनाया, फिर मिट्टीकी दीवालें खड़ी करके उनपर छप्पर डालना शुरू किया, इसके बाद वह फूसकी जगह मिट्टीकी खपरैल आगमें पकाकर उपयोगमें लाने और ईंटें बनाकर ईंट तथा पत्थरकी दीवालें बनाने लगा। कुछ समयके उपरान्त जब उसने इस काममें और तरक्की की तब वह छप्परके स्थानमें कड़ियाँ डालकर कच्ची तथा पक्की छतें बनाने लगा।

इस प्रकार मनुष्यने केवल कारीगरीहीमें उन्नति नहीं की, वरन् प्रकृतिसे पैदा होनेवाली वस्तुओंमेंसे जो जो वस्तुएँ उसने अपने कामकी समझीं, उन सबको भी वह उत्पन्न करने लगा। कई जगहोंसे उनके बीज लाकर और उनके पैदा होनेका मौसम आदि जाँचकर उनका बोना शुरू किया। फिर उनकी पैदावार बढ़ानेके लिए जमीनके झाड़ वगैरह साफ करके और जमीनको हल आदिसे पोली तथा फुस-फुसी करके उसमें खाद डालना शुरू किया। फिर जरूरतके समय कुए तालाब आदिसे पानी सींचकर और खेतमें उत्पन्न होनेवाले घास-फूस आदिको नींदकर तथा जंगली जानवरों और पक्षियोंसे उसकी पूरी पूरी रक्षा करके वह प्रकृतिसे कई गुनी

फसल पैदा करने लगा। फिर उसने पैदा किये हुए अनाजको बहुत समयतक सुरक्षित रखनेका तरीका निकाल कर अपनी जरूरतोंको बहुत कुछ पूरा करना सीख लिया।

इसी रीतिसे मनुष्यने अनेक प्रकारकी ओषधियाँ ढूंढ़ निकालीं कि जिनके द्वारा वह अपनी सब प्रकारकी बीमारियोंसे रक्षा करने लगा। जंगलके अनेक जानवरोंको पकड़कर उससे सवारी, बारबरदारी और खेती आदिका काम लेने लगा और जिन जानवरोंका दूध फायदेमंद मालूम हुआ उनका दूध पीने लगा। फिर दूधसे खीर आदि अनेक प्रकारके भोजन बनाना और उससे दही जमाना तथा घी निकालना भी सीख गया। धीरे धीरे घीसे वह अनेक प्रकारके सुस्वादु और पौष्टिक भोजन बनाने लग गया।

मनुष्यके ये सब कार्य्य बढ़ते बढ़ते इतने ज्यादा बढ़ गये कि एक आदमीके लिए आप ही अपनी सब जरूरतोंको पूरा कर लेना असम्भव हो गया; परन्तु मनुष्यमें नवीन बातें खोज निकालनेका बुद्धिके सिवा जानवरोंसे एक और विशेषता यह है कि वह बातचीत द्वारा अपने मनके भाव दूसरों पर व्यक्त कर सकता है। वह अपने मनकी बात दूसरोंसे कह सकता है और दूसरोंके दिलकी बात सुन सकता है। इस आपसकी बातचीतके द्वारा मनुष्यने अपने आरामके लिए अनेक बातोंका प्रबन्ध कर लिया। उसने अपनेसे बहुत बलसंपन्न पशुओंतकको अपने वशमें कर लिया। क्योंकि जो बात एकको सूझती, वह अपनी बात दूसरोंको सुनाता रहा और इस प्रकार सभी लोगोंकी खोज और सभी मनुष्योंके विचार सब लोगोंको मालूम होते गये। इस प्रकार दिन पर दिन उसके ज्ञानकी वृद्धि होती गई और वह बड़े बड़े कठिन और अद्भुत कार्य्य करने लगा। सच तो यह है कि मनुष्यमें चाहे जितनी बुद्धि क्यों न होती—वह नवीन नवीन बातोंके निकालनेमें कितना ही कुशल क्यों न होता, परन्तु यदि उसमें आपसमें

बातचीत करने और अपने विचार दूसरों पर प्रकट करनेकी शक्ति न होती तो वह कुछ भी उन्नति न कर सकता और अन्य प्राणियोंके ही समान निम्नदशामें पड़ा रहता। इस वचनशक्तिकी बदौलत उसने अपने आरामकी नई नई वस्तुएँ बना लीं और उनके बनते रहनेका भी उत्तम प्रबन्ध कर लिया; क्यों कि जब मनुष्यके आवश्यक पदार्थोंकी संख्या इतनी अधिक बढ़ गई कि अपने उपयोगमें आने-वाली वस्तुओंको जुटाना और उन सबको स्वतः बनाना उसके लिए असम्भव हो गया, तब उसने पृथक् पृथक् मनुष्योंको पृथक् पृथक् काम हाथमें लेने और उस कार्य्यमें पूर्ण दक्षता प्राप्त करनेकी विधि निकाली। इस प्रकार खास खास आदमी खास खास कामोंमें बहुत होशयार होने लगे और वे अनेक प्रकारके कामोंको छोड़कर एक ही प्रकारका काम करने लगे। जब उनको अन्य चीजोंकी जरूरत पड़ी तब वे अपनी बनाई हुई चीजोंका दूसरोंकी बनाई हुई चीजोंसे बदला करने लगे या अपनी किसी कारीगरी अथवा चतुराईके बदले दूसरोंसे कारीगरी या चतुराईका काम कराने लगे। इसी समयसे लुहार बढ़ई, जुलाहा, कुम्हार, राज, पत्थर तराशनेवाले तथा खेती करनेवाले कृषकों आदिका अलग अलग पेशा हो गया, और ऐसा होनेसे मनुष्यकी हजारों जरूरतकी चीजें धड़ाधड़ तैयार होने लगीं। इस प्रकार धीरे धीरे मनुष्यके रहन-सहन और जीवन-निर्वाहमें बहुत उन्नति हो गई।

इस उत्तम प्रबन्धका यह फल हुआ कि दुनियाका कोई भी आदमी जो कुछ काम बनाता उसका लाभ दुनिया भरके लोगोंको होने लगा और होते होते इस महान् सुविधाको लोगोंने यहाँ तक अपनाया कि दुनिया भरकी बनी हुई चीजोंको लिये बिना, केवल अपनी ही बनाई हुई चीजों पर जीवन-निर्वाह करना बिल्कुल ही असम्भव हो गया। उदाहरणस्वरूप, अगर कोई आदमी इस बातकी प्रतिज्ञा करे कि मैं

दूसरोंकी बनाई हुई चीजोंको उपयोगमें न लाऊँगा और केवल अपनी ही बनाई हुई चीज़ों पर गुज़ारा करूँगा, तो उसको सबसे पहले पेट भरनेके लिए अनाजकी जरूरत पड़ेगी और उसकी प्राप्तिके लिए उसे खेती करनी पड़ेगी। खेती करनेके लिए हल और कई तरहके औजारोंकी जरूरत पड़ेगी कि जिसके लिए उसे लुहार और बढ़ईका काम सीखना होगा। यही नहीं, लोहेकी खानिका पता लगाकर उसे लोहा लाना होगा और उस लोहेसे बढ़ई तथा लुहारके औजार बना कर फिर उनके द्वारा काश्तकारीके औजार–हल, बखर, कुसिया, पाँस आदि-बनाने होंगे। इस प्रकार अनेक कठिनाइयोंके पश्चात् अनाज उत्पन्न कर लेने पर भी आटा पीसनेके लिए चक्कीकी जरूरत पड़ेगी और उसके बनानेके लिए उसे पत्थर गढ़नेका काम सीखना पड़ेगा। रसोईके बर्त्तनोंके लिए ताँबे और पीतलकी खानियोंसे ताँबा पीतल लाना तथा ठठेरेका काम सीखना होगा, या कुम्हारका काम सीखकर मिट्टीके बर्तन बनाने पड़ेंगे। अब नमकके बिना भी काम न चलेगा, अतएव नमककी खानि पर जाकर नमक लाना होगा, तब कहीं उसे रोटी मयस्सर होगी। परन्तु ये सब काम एक आदमी अपनी सारी उमरमें भी पूरे नहीं कर सकता। मतलब यह कि दुनियाकी बनाई हुई चीजोंको काममें लाये बिना कोई आदमी अपना जीवन-निर्वाह नहीं कर सकता। ऊपर केवल रोटी बनानेकी कठिनाइयाँ ही लिखी गई हैं, परन्तु उसे रोटीके सिवा और भी कई प्रकारको वस्तुओंकी आवश्यकता पड़ती है, जिनको वह दूसरोंकी सहायताके बिना अपने आप नहीं बना सकता। मान लीजिए कि उसे कपड़ेकी आवश्यकता है, तो उसके लिए पहले उसे कपास बोना पड़ेगा, फिर जुलाहेका काम सीखकर कपड़ा बुनना होगा और तब दर्जीका काम सीखकर उसे सीना होगा। परन्तु सीनेके लिए पहले उसे सुई और कैंची बनानी होगी। इसी प्रकार तेलके लिए अलसी, तिली, सरसों आदिके

बीज बोने पड़ेंगे, फिर उनसे तेल निकालनेके लिए कोल्हू बनाना होगा तब कहीं तेल निकाला जा सकेगा और रातको चिराग जलाना नसीब होगा। ऐसे ही मकान बनानेके लिए भी उसे कई प्रकारकी कारीगरीका काम सीखना होगा और अनेक वस्तुएँ जुटानी पड़ेंगी तब कहीं मकान बन सकेगा। इससे साफ जाहिर होता है कि एक मामूली आदमीकी जरूरतका सामान भी अनेक लोगों और अनेक धन्धेवालोंकी सहायताके बिना न तो पूरा जुट ही सकता है और न उसके बिना वह अपना जीवन-निर्वाह ही कर सकता है।

ऐसी स्थितिमें प्रत्येक मनुष्यको यह समझ लेना चाहिए और ऐसा समझना बिलकुल सही भी है कि दुनिया भरके आदमी जो जो काम कर रहे हैं वे सब काम मेरे ही भले या बुरेके वास्ते हो रहे हैं; अर्थात् दुनिया भरके आदमी जितने अच्छे अच्छे काम करेंगे उनसे मुझे फायदा पहुँचेगा और जितने बुरे बुरे काम करेंगे, उनसे नुकसान पहुँचेगा। अभी प्रत्यक्ष ही देख लीजिए कि अँगरेजों और जर्मनोंकी जो लड़ाई हमसे हजारों कोसकी दूरी पर हो रही थी उससे हम लोगोंको कितना नुकसान पहुँचा? सब चीजोंमें आग लग गई, तोपोंमें रूईका खर्च बढ़ जानेसे हमारे देशमें रूई इतनी मँहगी हो गई कि वह घीके भाव भी न मिली और इसका दुःख सबको उठाना पड़ा। इसी प्रकार अगर यूरोप, अमेरिका आदि दूर देशोंमें अनाज कम पैदा हो तो अपने देशमें चाहे कितनी ही पैदावारी क्यों न हो, परन्तु अनाज अवश्य मँहगा हो जायगा और अकालके लक्षण दिखाई देने लगेंगे। यही कारण है कि अभी जर्मनी, फ्रान्स, आस्ट्रिया, इंग्लैण्ड आदि अनेक देशोंके महायुद्धमें लिप्त रहने, तथा वहाँ सब प्रकारकी वस्तुओंका बनना और जहाजोंका आना जाना बंद हो जानेसे हम लोगोंको कई चीजें दुष्प्राप्य हो गई थीं। कहनेका अभिप्राय यह है कि अब मनुष्यका निर्वाह तभी हो सकता है

जब कि दुनिया भरके सभी आदमी पूरी कोशिशके साथ सभी जरूरतकी चीजें बनाते रहें और किसीके भी काममें कोई बाधा खड़ी न हो। क्यों कि इस समय सारी दुनियाका व्यावहारिक सम्बन्ध इतना घनिष्ट हो गया है कि यदि एक आदमीके काममें भी कुछ बाधा आ जाती है तो उसका फल दुनियाके सारे आदमियोंको भोगना पड़ता है।

ऐसी अवस्थामें अपनी सुखसमृद्धिके लिए प्रत्येक मनुष्यका यह कर्त्तव्य हो गया है कि वह संसारकी समग्र मानव जातिकी उन्नतिके लिए प्रयत्न करे, संसारमें सुख-शान्ति बढ़ावे और अनेक प्रकारकी कलाकुशलता सीखकर मनुष्योंके आरामकी अच्छी अच्छी चीजें निर्माण करे। इसी बातको पूर्ण करनेके लिए कई मनुष्योंने टोलियाँ बनाकर एक साथ रहना प्रारंभ किया और इस प्रकार वे एक दूसरेकी सहायता और रक्षा करने लगे। इसी प्रकार होते होते ग्राम और नगर बस गये और प्रत्येक ग्राम या नगर निवासियोंने अपनेमेंसे किसी एकको अधिक योग्य समझकर अपना सर्दार बना लिया। ये सर्दार आपसकी अनीति तथा अत्याचारोंको रोकने लगे और हरप्रकारसे उनकी रक्षा करने लगे। उनमें किसी तरहका झगड़ा या मनमुटाव न हो इस लिए उन्होंने जमीनकी सीमा निर्धारित की और मकानों, खेतों तथा अन्य सब प्रकारकी वस्तुओंके लिए भी नियम बाँध दिये। इसके सिवा कौन वस्तुपर किसका अधिकार होना चाहिए, एक मनुष्यका दूसरेपर कितना अधिकार है और वह अपने अधिकारोंको किस तरह काममें ला सकता है, स्त्रीका पुरुषके प्रति और पुरुषका स्त्रीके प्रति क्या सम्बन्ध है, इत्यादि सभी प्रकारके नियम बनाये गये और इस प्रकार मनुष्योंमें परस्पर प्रेम और सहकारिताकी वृद्धि हुई।

यह सब तो हो गया, परन्तु अभी तक एक दिक्कत बनी ही रही। किसी जुलाहेको मिट्टीके बरतनकी जरूरत हुई, इसलिए वह कपड़ेका

थान लेकर कुम्हारके पास गया, परन्तु उस समय उसे कपड़ेकी जरूरत न थी। उसने कह दिया कि भाई, मुझे अनाजकी जरूरत है, आप अनाज लाकर दें तो मैं उसके बदले अपने मिट्टीके वर्तन दे सकता हूँ--कपड़ेके बदले नहीं। तब बेचारे जुलाहेको अनाजवालेके पास जाना पड़ा और उससे अनाज लाकर कुम्हारको देना पडा, तब कहीं उसे मिट्टीके वर्तन मिले। यदि उस समय अनाजवालेको भी कपड़ेकी जरूरत न होती तो जुलाहेको अपने कपड़ेके बदलेमें वह चीज़ अनाजवालेको लाकर देनी पड़ती, तब कहीं काम बनता। इस प्रकार प्रत्येक जरूरतको पूर्ण करनेके लिए लोगोंको बहुत भटकना पड़ता था और सबको बहुत दिक्कत उठानी पड़ती थी। अत एव इस दिक्कतसे बचनेके लिए मनुष्योंने एक ऐसी वस्तु नियत कर दी कि जिसके बदले सभी चीजें मिलने लगीं। पहले तो उन्होंने यह काम अनाजसे लिया; परन्तु अनाज बहुत दिनोंतक ठहर नहीं सकता है, इस कारण जिनको बहुत दिनोंतक अन्य किसी वस्तुकी अवश्यकता नहीं पड़ती थी उनके पासका अनाज सड़ या घुनकर खराब हो जाया करता था। इस असुविधाके कारण उन्होंने अनाजकी जगह धातुके टुकड़ोंके द्वारा सब चीजोंका विनिमय या अदलाबदला करना प्रारंभ किया। फिर इस कार्य्यमें उन्नति होते होते राजाओंने अपने अपने नामके ताँवे, चाँदी, सोने आदिके सिक्के जारी किये। इन सिक्कोंके द्वारा सबको सब प्रकारकी चीजें मिलना सुलभ हो गया, इतर मनुष्योंकी बनाई हुई चीजें यथेच्छ उपयोगमें लाई जाने लगी और इस प्रकार मनुष्यकी सभ्यतामें बहुत उन्नति हुई।

२ मनुष्यका मनुष्यत्व ।

मनुष्य जातिका पशुजीवनसे उन्नति करते करते मनुष्यत्व प्राप्त करनेका पूर्वोक्त वर्णन मालूम हो जानेपर यह बात सहज ही समझी जा सकती है कि मनुष्योंको अपना मनुष्यत्व कायम रखने और आगेको उसे अधिकाधिक उन्नत करनेके लिए कौन कौनसे कर्त्तव्य पालन करने चाहिए। क्योंकि जिन सब बातोंकी बदौलत मनुष्यको अपने जीवन-निर्वाहकी अनेक उपयोगी वस्तुएँ प्राप्त होने लगीं, तथा जिनकी बदौलत उसका जीवन पशुजीवनसे सर्वथा भिन्न होकर अत्यन्त सुखमय तथा परम श्रेष्ठ बन गया, उन सब बातोंकी रक्षा करना और उनको उन्नत बनाना मनुष्य-जीवनका मुख्य कर्त्तव्य है—और उनसे ही उसके मनुष्यत्वकी रक्षा हो सकती है। उक्त बातोंको हम तीन श्रेणियोंमें विभक्त करते हैं—(१) विचारशक्ति—जिसके द्वारा मनुष्य अपनी उन्नति और सुखशान्तिके बढ़ानेवाले नवीन उपायोंको खोजता और प्राचीन असुविधाजनक तरीकोंको छोड़ता जाता है। (२) वचनशक्ति—जिसके द्वारा बालकों तथा नवयुवकोंको अपनेसे बड़े तथा अनुभवी पुरुषोंकी जानी बूझी हुई बातें मालूम होती रहती हैं, और आगे चलकर जब ये ही बालक तथा नवयुवक सयाने होते हैं या पितृपदको पाते हैं तब वे अपने पूर्वजोंकी सुनी हुई और अपनी बुद्धि तथा अनुभवसे प्राप्त की हुई बातोंको अपने बच्चोंको सुनाते या सिखाते हैं। इस प्रकार इस बातचीत करनेकी शक्तिकी बदौलत मनुष्य उन सब लोगोंकी खोजी हुई बातोंको जानता रहता है कि जो उससे सैकड़ों-हजारों पीढ़ी पहले उत्पन्न हुए थे। नवीन लोग प्राचीन लोगोंके अनुभवसे जानी हुई बातोंमें अपनी बुद्धिको लड़ाकर कुछ

और आगे सरकते हैं और इस तरह उनसे भी बढ़ियाँ बातें खोज निकालते हैं। इसके सिवा इस वचनशक्तिकी बदौलत मनुष्य अपने समकालीन लोगोंसे भी बातचीत करता है और इस प्रकार नये पुराने सभी मनुष्योंके अनुभवको इकट्ठा करके वह बहुत बड़ा ज्ञानी बनता चला जाता है। यदि मनुष्यमें बातचीत करनेकी शक्ति न होती तो वह न तो उन लोगोंके ही अनुभवोंको जान सकता जो उससे पहले हो गये है, और न वह अपने समकालीन मनुष्योंके अनुभवोंको ही जान सकता। ऐसी अवस्थामें उसकी बुद्धिको बाहरसे कुछ भी सहायता न मिलती और वह जरा भी उन्नति न कर सकता, अपनी एक ही दशामें उसी तरह पड़ा रहता जिस तरह कि सब पशुपक्षी पड़े हुए हैं। परन्तु इस वचनशक्तिकी बदौलत उसे नवीन तथा प्राचीन सभी लोगोंका ज्ञान-भंडार मिलता रहता है और इसी लिए वह बहुत शीघ्रताके साथ आगे बढ़ता जाता है। इसी वचनशक्तिकी बदौलत वह अपनी बनाई हुई वस्तुओंसे दूसरोंकी बनाई हुई वस्तुओंका परिवर्त्तन करता, दूसरोंकी रक्षा और सहायता करता तथा दूसरोंसे अपनी रक्षा या सहायता कराता और अपने मनोगत भाव दूसरोंपर प्रकट करता तथा दूसरोंके भाव आप जानता है। (३) **पारस्परिक सहायता**—अर्थात् आपसमें मिल जुलकर रहना, एक दूसरेकी चीजोंसे बदला करना, एक दूसरेके धन जन और अधिकारोंकी रक्षा करना और सहायता देना। अगर ये बातें न हों तो एक मनुष्य अपनी अकेली बुद्धि और वचनशक्तिसे कुछ भी नहीं कर सकेगा, बल्कि इनके बिना उसका जीवन-निर्वाह ही कठिन और रुद्ध हो जायगा।

इस प्रकार ये तीन बातें ऐसी हैं जिन्होंने मनुष्यको मनुष्य बनाया है। इस लिए उसका मनुष्यत्व और परम कर्त्तव्य यही है कि वह सदैव इन तीनों बातोंमें उन्नति करता रहे, उनको

सदैव उचित रीतिसे काममें लावे और उनका कभी दुरुपयोग न करे। इन शक्तियोंके दुरुपयोग अथवा बुरी तरह काममें लानेकी बात हमने इस लिए कही है कि इनके द्वारा हानि और लाभ दोनों हो सकते हैं। यदि हम शक्तिका सदुपयोग करें अर्थात् उसे अच्छे काममें लगावें तो उससे हमको लाभ होगा, और यदि हम उसका दुरुपयोग करें—उसे बुरे काममें लगावें तो उसके द्वारा हमें हानि पहुँचेगी। जैसे आगसे रोटी बनाई जावे, या लोहा, पीतल आदि गलाकर बर्तन बनाये जावें, या सोना चाँदी गलाकर जेवर या सिक्के बनाये जायँ, या एंजिन बनाकर उससे रेलगाड़ियाँ और अनेक तरहके कारखाने चलाये जायँ, तो हम कहेंगे कि आगका सदुपयोग किया गया है और उससे लाभहीकी संभावना होगी; परन्तु यदि उसी आगके द्वारा लोगोंके घर जलाये जायँ, बन्दूक अथवा तोपके द्वारा गोले फेंककर मनुष्योंका नाश किया जाय तो यह उसका दुरुपयोग कहलावेगा और उससे हानि ही हानि होगी।

मनुष्यको अपना मनुष्यत्व स्थिर रखनेके लिए, अपना मानवीकर्त्तव्य पालन करनेके लिए, अपनी इन तीनों शक्तियोंका सदुपयोग करना चाहिए। यही नहीं, बल्कि हजारों लाखों-वर्षोंसे मिलनेवाले मनुष्योंके अनुभवजन्य ज्ञान-भाण्डारका ऋण चुकानेके लिए जहाँ तक हो सके उसे स्वयं भी कुछ उन्नति करके दिखलानी चाहिए या कोई नवीन वस्तु बनानी चाहिए; पुरानी तर्कीबों, पुरानी कारीगरियों और पुरानी रीतियोंसे बढ़िया कोई नवीन तर्कीब कारीगरी या रीति निकालकर उसे सर्वसाधारणमें प्रकट करनी चाहिए। इन नई नई खोजों या तर्कीबोंको छिपाना मानों मनुष्यजातिकी उन्नतिके मार्गमें बाधा पहुँचाना है। परन्तु अपनी बुद्धिको कभी ऐसी बातोंके सीखने सिखाने या ऐसी किसी बात या तर्कीबके निकालनेमें न लगानी चाहिए जिससे मनुष्य जातिकी हानि होती हो या मनुष्यके मनुष्यत्वमें फर्क आता

हो। जिन देशोंमें जब तक इस प्रकार नवीन नवीन उत्तम रीतियाँ निकलती रहीं, तब तक वे देश उन्नति करते रहे, और अन्य देशोंके सिरताज बने रहे, परन्तु जब उन्होंने इस प्रकार आगेको सरकना छोड़ दिया, और पुरानी रीतियोंको पकड़कर बैठ रहे, तब वे अन्य उन्नतिशील देशोंके अधीन बन गये। अर्थात् जो लोग पुरानी कमाईके भरोसे न बैठकर नई नई बातोंकी खोज करते हुए आगे बढ़ते रहते हैं, संसारमें उन्हींकी तूती बोलती है।

मनुष्य अपनी वचनशक्तिकी बदौलत ही यह सब उन्नति करनेमें समर्थ हुआ है और आगेको करता जाता है, अतएव उसे उचित है कि वह इस शक्तिका उपयोग सदैव मनुष्यमात्रके लाभकारी कामोंमे ही करे। मनुष्योंने अपने विचार दूसरों पर प्रकट करनेके लिए एक और तर्कीब निकाली है और वह तर्कीब लिखनेकी है। इससे भी वे उसी प्रकार काम लेने लगे हैं जिस प्रकार कि मुंहके द्वारा बोलकर। बल्कि इस लिखनेकी तर्कीबके द्वारा वचनशक्तिकी अपेक्षा अधिक उन्नति हुई; क्योंकि मुंहके द्वारा हम अपने मनके विचार उन्हीं लोगों पर प्रकट कर सकते थे जो हमारे पास होते थे, परन्तु लिखनेकी तर्कीबसे हम अपनी बातें हजारों–लाखों मीलोंकी दूरी पर भी पहुँचाने लगे। इस लेखनकलाकी बदौलत एक और भारी लाभ यह हुआ कि हमारे लिखित अनुभवों तथा समस्त ज्ञानका लाभ हमसे बहुत पीछे पैदा होनेवाले लोगोंको भी होने लगा। इस लेखन-कलाकी विधिको और भी उन्नत बनानेके लिए लोगोंने छापनेकी तर्कीब निकाली कि जिसके द्वारा धड़ाधड़ लाखों करोड़ों पुस्तकें छपने लगीं। इस प्रकार बहुत थोड़े श्रमसे बड़े बड़े विद्वानोंके विचार सबको विदित होने लगे। इसके सिवा तार, टेलीफोन, 'विना तारका तार,' आदि अनेक प्रकारकी तर्कीबें निकाली गईं और मनुष्यबुद्धिकी गंभीर खोजसे और भी निकलती चली जा रही हैं। कहनेका मतलब यह है कि अपनी

बात दूसरों तक पहुँचानेकी कलामें जितनी उन्नति की जायगी मनुष्योंकी भी उतनी ही उन्नति होगी। अतएव मनुष्यको नये पुराने और सुदूरवर्ती लोगोंके विचारोंको जाननेके लिए सब प्रकारकी पुस्तकें पढ़नी चाहिए और अपने विचारों तथा अनुभवोंको लिखकर सर्व साधारणमें प्रकट करना चाहिए। ऐसा करनेसे ही वह अपनी तथा अपनी भविष्यत्में होनेवाली संतानकी भलाई कर सकता है।

परन्तु मनुष्यको नवीन चीजें बनाने, नवीन तर्कीबें सोचने और वचनशक्तिको काममें लानेके लिए बड़ी सावधानीकी जरूरत है। क्योंकि जो शक्ति जितनी अधिक बलवान् होती है और जितना अधिक लाभ पहुँचाती है, वह विपरीत हो जाने या उल्टी रीतिसे काममें लाई जाने पर उतना ही अधिक नुकसान भी पहुँचाती है। उदाहरणार्थ–हँाकनेवालोंकी असावधानीसे यदि दो बैल गाड़ियाँ आपसमें लड़ जावें तो उसमें बैठे हुए दो चार मुसाफिरोंको ही चोट आयगी और यह चोट भी सांघातिक नहीं, साधारण ही होगी। परंतु यदि ड्राइवरकी असावधानीसे दो रेलगाड़ियाँ आपसमें लड़ जायँ तो सैकड़ों–हजारों आदमियोंकी मौत हो जायगी; उनकी हड्डियों-पसलियों तकका पता न चलेगा। इसी प्रकार नवीन आविष्कार और बातचीत करनेकी शक्तियाँ भी ऐसी ही महान् शक्तियाँ हैं कि जिन्होंने मनुष्यके रहन-सहन और जीवन-निर्वाहका एक बिलकुल विलक्षण और अद्भुत ढाँचा खड़ा कर दिया है और भविष्यतमें भी जिनकी बदौलत मनुष्य अपने जीवन-निर्वाहका नयेसे नया नकशा बनाता जाता है। अतएव इन शक्तियोंको बहुत सावधानीके साथ उपयोगमें लानेकी आवश्यकता है, नहीं तो यही शक्तियाँ मनुष्यका सर्वनाश करनेकी ताकत भी रखती है। जो लोग इनका दुरुपयोग करते हैं उनका विषमय फल भी तत्काल ही पालेते हैं।

इस विषयमें सबसे भारी कठिनाईकी बात यह है कि मनुष्यमें नवीन नवीन बातें निकालनेकी बुद्धि और विवेकशक्तिके होते हुए भी उसके हृदयमें पशुओंके समान क्रोध, मान, माया लोभका आवेग भी भरा हुआ है कि जिसके बढ़ जाने या भड़क उठनेसे वह अपनी विवेक बुद्धिको त्यागकर आपेसे बाहर हो जाता है, और जान बूझकर ऐसे काम करनेके लिए उद्यत हो जाता है कि जिनसे उसकी प्रत्यक्ष हानि होती है। बहुधा क्रोधसे भरे हुए लोगोंके मुँहसे ऐसा कहते हुए सुना जाता है, कि चाहे मेरा घर मिट्टीमें क्यों न मिल जाय, परन्तु मैं अपने बैरीको खाकमें मिलाकर ही छोड़ूँगा; चाहे मेरी फाँसी क्यों न लग जाय परन्तु मैं अमुक आदमी की एकबार भरे बाजार इज्जत बिगाड़े बिना न रहूँगा। इस प्रकार क्रोधमें आकर मनुष्य न जाने क्या क्या कहता है और केवल कहता ही नहीं, कभी कभी कर भी बैठता है कि जिसका पीछे उसे बहुत पछतावा होता है। इसी प्रकार अपनी इज्जतके खयालमें इस देशके लोग अपने लड़के लड़कियोंके विवाहमें अपना सर्वस्व लुटाकर भिखारी बन जाते हैं और अपनी प्रिय संतानोंके सिरपर ऋणका इतना भारी बोझा छोड़ जाते हैं कि वे फिर अपनी उमर भर सिर नहीं उठा पाते हैं और न किसी मानके योग्य ही रह जाते है। ऐसे ही लोभ और मायाके वशीभूत होकर भी लोग ऐसा ही काम कर बैठते हैं कि जिससे उनकी बनी बनाई साख या इज्जत बिगड़ जाती है, और कभी कभी तो उनका सब कारोबार बंद हो जाता है और उन्हें जैलखानेकी हवा तक खानी पड़ती है।

मतलब यह है कि क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि मनके उफान ऐसे प्रबल हैं जो असावधान मनुष्यको बिलकुल बेकाबू कर देते हैं और उससे विपरीत काम कराने लगते हैं। जैसे, आँखोंपर हरे रंगका चश्मा लगानेसे सब वस्तुएँ हरी हरी दिखाई देने लगती हैं और पीले रंगका चश्मा लगानेसे सब तरफ पीला ही पीला दिखाई देने लगता

है, उसी प्रकार क्रोध, मान, माया लोभ, आदि कषायोंके जोशसे भी मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और कर्तव्योंको त्यागकर वह अपनी बुद्धिको उन कामोंकी ओर झुका देता है कि जिससे उसके मनकी भड़क पूरी होती है। कभी कभी तो वह अपने मनकी भड़कको पूरी करनेमें इतना वेसुध और उन्मत्त हो जाता है कि चाहे उसके तमाम काम विगड़ जावें-चाहे सारी दुनिया रसातलको चली जाय, परन्तु उसकी वह भड़क पूरी होनी ही चाहिए। इसी लिए असावधान और कषायी मनुष्य अपनी अनेक प्रकारकी प्रबल इच्छाओं और हृदयकी उमंगोंको पूर्ण करनेके लिए उपरिलिखित महान् महान् शक्तियोंको भी इसी ओर लगा देता है और झूठ, फरेब, धोखेबाजी, जालसाजी, मक्कारी आदि बुरे मार्गोंमें ही अपनी उक्त शक्तियोंको व्यय करने लगता है। परिणाम यह होता है कि वह सारे संसारके लोगोंसे मेल-जोल रखने, उनके जान मालकी रक्षा करने और सुख-शान्ति बढ़ानेके बदले उनको नुकसान पहुँचाने, उनका हक छीनने, माल उड़ाने, चोरी डकैती करने और पराई स्त्रियोंकी ओर कुदृष्टिसे देखने आदि बुरे बुरे कामोंमें फँस जाता है और इन कामोंमें सफलता प्राप्त करनेमें वह अपना परम सौभाग्य और कर्तव्य समझने लगता है। परन्तु ऐसा करनेसे वह मनुष्यत्वके ढाँचेमें बड़ी भारी खलबली पैदा कर देता है और पारस्परिक विश्वासको खोकर आपसमें मिल-जुलकर रहनेके अत्युत्तम प्रबंधको शिथिल बनाता है। ऐसे ऐसे विपरीत कामोंसे मनुष्य समाज अपने पदसे भ्रष्ट होकर केवल नीचेहीको नहीं आता, किन्तु वह पतित होकर नष्ट हो जाता है और किसी योग्य भी नहीं रहता।

पशुओंमें वाचाशक्ति न होनेसे वे आपसमें न तो झूठ ही बोल सकते हैं और न ऐसा भारी धोखा ही दे सकते हैं जैसा कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्यको दे सकता है। इसी प्रकार पशुओंके पास

अपने शरीरके सिवा अन्य कोई साधन भी नहीं हैं, जिससे वे अन्य पशुओंको भारी नुकसान नहीं पहुँचा सकते हैं। परन्तु मनुष्योंने दूसरोंको मारने या हानि पहुँचानेके लिए तीर-कमान, तलवार, बंदूक, तोप आदि अनेक ऐसे साधन बना लिये हैं कि जिससे वे भारी विध्वंस मचा सकते हैं, और कषायोंके भड़कनेपर बहुधा ऐसा करते भी हैं। इस प्रकार नवीन नवीन उपायोंके निकालनेकी बुद्धि और वाचा शक्तिके दुरुपयोगसे मनुष्यका मनुष्यत्व दूर होकर वह पशुसे भी गया बीता बन जाता है, और अनन्त दुःखोंमें फँसकर कहींका भी नहीं रहता है।

पशुगण अपना जीवन पृथक् पृथक् ही व्यतीत करते हैं। वे अपने जीवन-निर्वाहके लिए न तो आप ही कुछ काम करते हैं और न दूसरोंसे ही कुछ सहायता लेते हैं, बल्कि प्रकृतिके द्वारा जो कुछ संसारमें उत्पन्न होता है उसी पर अपना निर्वाह या गुजारा करते रहते हैं। परन्तु मनुष्यको अपने जीवन-निर्वाहके लिए ऐसी कई वस्तुओंकी जरूरत पड़ती है कि जिनको अनेक मनुष्य बनाते हैं। छोटेसे छोटे और बिलकुल सादे ढँगसे जीवन व्यतीत करनेवाले मनुष्यकी जरूरतें भी ऐसी नहीं हैं कि जो दो चार या दश बीस मनुष्योंकी बनाई हुई चीजोंसे पूरी हो सकें बल्कि छोटेसे छोटे और मामूली आदमीकी जरूरतें भी दुनिया भरके सभी मनुष्योंके कामसे पूरी होती हैं। अतएव प्रत्येक मनुष्यका दुनिया भरके सब मनुष्यों और उनके कामोंसे ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध हो रहा है कि अन्य मनुष्योंके कामोंमें गड़बड़ी पड़नेसे इसके काममे भी गड़बड़ी पड़ जाती है और उसके सुख तथा सुभीतोंको धक्का पहुँचता है। इस लिए प्रत्येक मनुष्यको स्वयं सावधान रहने और दुनिया भरके लोगोंको सावधान रखनेकी जरूरत है कि जिससे कोई मनुष्य किसी प्रकारकी गड़बड़ी या अशान्ति पैदा न करे और आपसमें प्रेमपूर्वक रहनेका जो प्रबन्ध

मनुष्यजातिने कर लिया है वह बिना किसी विघ्न बाधाके ठीक ठीक चलता जावे । परन्तु यह तभी हो सकता है जब सब लोग, क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि कषायोंको अपने काबूमें कर लें और उन्हें इतना न बढ़ने दें कि जिससे उनको आपसमें प्रेम और सद्बकको तोड़कर किसी मनुष्यको दुःख देने, नुकसान पहुँचाने या उसके हक मारनेमें प्रवृत्त होना पड़े, या इन क्रोधादिक मनके आवेगोंकी सिद्धिके लिए मनुष्यकी सर्वोत्कृष्ट वृत्ति अर्थात् आपसमें बातचीत करनेकी परम पवित्र और श्रेष्ठ शक्तिको झूठ, फरेब, धोखेबाजी आदि अत्यन्त नीच कामोंके लिए व्यवहारमें लाना पड़े ।

परन्तु ऐसा होनेके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य संसारके सभी मनुष्योंको अपने शरीरका अंग समझे, और ऐसा विश्वास रक्खे कि जिस प्रकार शरीरके किसी अगमें चोट लग जानेसे, या उसमें किसी प्रकारकी पीड़ा होनेसे सारे शरीरको बेचैनी सहनी पड़ती है, उसी प्रकार दुनियाके किसी मनुष्यको दुःख पहुँचनेसे भी मनुष्यमात्रको नुकसान पहुँचता है और मनुष्य जातिके हितमें धक्का लगता है । इस लिए परलोक सुधारनेवाले धर्मोंमें भलाई और बुराईका कैसा ही लक्षण क्यों न बतलाया गया हो और अपना परलोक सुधारनेके लिए मनुष्य उनका कैसा ही लक्षण क्यों न मानता हो, परन्तु मनुष्यको अपने मनुष्यत्वकी रक्षा करनेके लिए भलाई और बुराईका यही लक्षण मानना उचित है कि जिस बातसे मनुष्यजातिको लाभ होता हो और मनुष्योंके आपसके प्रेम और सलूकका ढाँचा मजबूत होता हो—वह भलाई है, और जिस बातसे उक्त ढाँचा बिगड़ता हो वह बुराई है ।

इस स्थान पर हम भलाई और बुराईके लिए पुण्य और पाप इन शब्दोंको काममें लाना नहीं चाहते हैं, क्योंकि ये परलोक सुधा-

रनेवाले धर्म्मोंके शब्द है; जिनके लक्षणोंमें खेंचातानी करके दुनियाँके लोग धर्म्मके नामपर गर्दनें कटवाते हैं तथा दूसरोंकी गर्दनें काटकर खूनकी नदियाँ बहाते हैं और इस प्रकार धर्म्मके नामको बदनाम करते हैं। मनुष्यके जीवन-निर्वाहके लिए तो भलाई और बुराई अथवा नेकी और बदी ये साधारण शब्द ही काफी हैं, क्योंकि उपरिलिखित लक्षणोंके अनुसार भलाई करता हुआ और बुराईसे बचता हुआ प्रत्येक मनुष्य इस दुनियाको ही स्वर्गधाम बना सकता है और सब तरफ आनन्द ही आनन्द फैला सकता है। ऐसे ही इसके विपरीत आचरण करके वह इस दुनियाको नरककुंड बना सकता है, और चारों ओरसे 'त्राहि त्राहि' की पुकार मचवा सकता है। सच तो यह है कि ऊपर लिखे अनुसार जीवन बिताये बिना अर्थात् भलाई करने और बुराईसे बचे बिना यह मनुष्य अपने आपको मनुष्य ही नहीं कह सकता है, बल्कि ऐसी दशामें वह पशुओंसे भी नीचे गिरा हुआ है और मनुष्य जातिके लिए वह शेर, भेड़िया, साँप, बिच्छू आदिसे भी अधिक दुखदाई है। अतएव मनुष्यको सबसे पहले मनुष्य बननेकी कोशिश करनी चाहिए और हरवक्त उसके लिए सावधानी रखनी चाहिए।

हमारी समझके अनुसार इसके लिए मनुष्यको निम्नलिखित पाँच नियमोंका पालन अवश्य करना चाहिए। क्योंकि ये नियम उसके मनुष्य बनने और मनुष्यत्व प्राप्त करनेके प्राथमिक नियम हैं। १—मनुष्यमात्रसे प्रीति रखना और सब मनुष्योंको अपना कुटुम्बी या शरीरका अंग समझकर उनकी भलाई करना। इसीको दूसरे शब्दोंमें परोपकार भी कह सकते हैं। २—झूठ, फरेब, छल-कपट आदि बुरे कामोंमें अपनी परम पवित्र वाचाशक्तिको भ्रष्ट न करके सदैव सीधी, सच्ची और दूसरोंके हितकी बात कहना अर्थात् सत्य बोलना। ३—चोरी या जबरदस्ती आदिके द्वारा न तो किसीका माल उड़ाना और न किसी-

का हक छीनना, अर्थात् अपने ही धन, असबाब और अधिकारोंपर संतोष रखना। ४-अपनी स्त्रीके सिवा अन्य किसी स्त्रीसे कामचेष्टा न करना, अर्थात् शील पालना और ५-अपने अधिकारों और अपनी वस्तुओंपर ऐसा विह्वल न होना कि जिससे स्वार्थके वशीभूत होकर सार्वजनिक प्रेम, सहायता और सहानुभूतिके सुनहले नियमको तोड़ना पड़े या परोपकार बुद्धिको त्यागना पड़े। इसे थोड़ेसे शब्दोंमें 'अपरिग्रही वृत्ति' कह सकते हैं। ये पाँच स्थूल नियम ऐसे हैं कि जिनके बिना मनुष्यके मनुष्यपनका ढाँचा ही नहीं बन सकता है। इसकारण ये प्राथमिक नियम तो सभी मनुष्योंको सबसे पहले पालन करने चाहिए। इन नियमोंका पालन करके मनुष्य मनुष्यत्व प्राप्त करता और संसारमें सुख भोगता है, यही नहीं बल्कि वह अपने परलोक सुधारनेके योग्य भी बन जाता है। यही कारण है कि आजकल हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि जितने पारलौकिक धर्म प्रचलित हैं उन सबने दया पालने, सत्य बोलने, चोरी न करने, शील रखने और परिग्रह कम करने अर्थात् संसारकी वस्तुओंमें अधिक आसक्त न होनेको ही सबसे आवश्यकीय नियम ठहराया है और इनके विषयमें यहाँतक जोर दिया है कि इन नियमोंका पालन किये बिना मनुष्यका पूजा-पाठ, जप-तप, व्रत-उपवास, दान और त्याग करना निरर्थक और ढोंग हैं। जो मनुष्य उक्त नियमोंका पालन नहीं करता उसकी प्रार्थना, स्तुति, पूजापाठ और चढ़ावेसे किसी भी धर्मका देवता प्रसन्न नहीं होता है और न वह कोई पुण्य ही सम्पादन कर सकता है। अत एव प्रचलित धर्मोंके सिद्धान्तके अनुसार भी मनुष्यको सबसे पहले मनुष्य बननेकी आवश्यकता है और वह तभी मनुष्य बन सकता है जब कि संसारके सब मनुष्योंकी भलाईकी कोशिश करे, सच बोले, किसीका अधिकार न छीने, शील पाले और अपनी वस्तुओंके मोहमें बेसुध या आसक्त न हो जाय।

यदि सभी धर्म्मोंके मनुष्य अपने अपने धर्मके अनुसार इन पाँचों नियमोंका पालन करना आवश्यक समझ लें, अर्थात् अपने अपने धर्मके अनुसार मनुष्य बननेकी कोशिश करने लगें तो फिर संसारमें कोई भी झगड़ा बाकी न रहे, चारों ओर सुख-शान्ति फैल जावे और सर्वत्र आनंद ही आनंद दृष्टिगोचर होने लगे। फिर वे उपद्रव भी मिट जायें जो प्रतिदिन धर्मके नामसे होते रहते हैं और जिनके कारण मनुष्य जातिमें बड़ी अशान्ति या बदसद्की फैली रहती है। इसके सिवा उन सब धर्म्मोंकी—जो परम पिता परमेश्वरके चलाये हुए बतलाये जाते हैं—बदनामी तभी दूर हो सकती है जब इन पाँचों नियमोंके पालन किये बिना किसी मनुष्यको यह अधिकार न हो कि वह अपनेको किसी धर्म्मका अनुयायी बतला सके। क्यों कि इन नियमोंके पालन किये बिना मनुष्यमें मनुष्यत्व नहीं आता है और बिना मनुष्यत्व प्राप्त किये कोई किसी धर्मका धारण करनेवाला भी नहीं हो सकता है। परन्तु इन नियमोंका पालन होना तभी सम्भव है जब क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि कषायोंको सीमासे बाहर न बढ़ने दिया जाय, अर्थात् उनके वशमें न हो जाय, बल्कि उन्हींको अपने काबूमें रक्खे और उनसे अपनी इच्छानुसार काम ले। अतएव मनुष्यका सबसे पहला कर्त्तव्य यह है कि वह अपने क्रोध आदि कषायोंको इस प्रकार काबूमें कर लेवे जैसे कि गाड़ीमें जोतनेके पहले घोड़े वशमें कर लिये जाते हैं। परन्तु इसके लिए यह जरूरी है कि मनुष्य अपने विचारोंकी पूरी पूरी जाँच अर्थात् देखरेख रक्खे और मनको बुरी वासनाओंकी ओर दौड़नेसे रोकता रहे।

३—मनको अपने अधीन रखना चाहिए।

मनुष्य किसी वस्तुसे तो प्रीति करता है और किसीसे द्वेष, अर्थात् किसी चीजकी ख्वाहिश करता है और किसीसे नफरत। जैसे वह खट्टी और मीठी चीजें तो खाना चाहता है परन्तु कड़वी और कसैली चीजोंसे नाक सिकोड़ता है, सुगन्धके पास जाता है, और दुर्गन्धसे दूर भागता है। मनुष्यके सब प्रकारके काम, सब तरहके उद्यम, श्रम, तदवीरें, आदि सब इसी इच्छा और द्वेषके ही कारण हुआ करते हैं। परन्तु जो यह बात निश्चित होती कि मनुष्यजाति अमुक वस्तुको चाहती है और अमुक वस्तुसे दूर भागती है तो बहुत सुविधा रहती, क्योंकि ऐसी दशामें संसारके सभी मनुष्य सदैव उन चीजोंको बनाने, संग्रह करने और उनकी रक्षा करनेका प्रयत्न किया करते जो मनुष्यजातिको पसंद होती, और उन सब चीजोंको नष्ट कर डालते जो उसके नापसंद होतीं। परंतु यहाँ तो संसारकी समस्त वस्तुओंमेंसे कोई मनुष्य किसीकी चाह करता है और कोई किसीकी, अर्थात् एक मनुष्य जिस चीजकी चाह करता है दूसरा उसीसे घृणा करता है। इसी कारण संसारकी सभी चीजें मनुष्योंकी चाहकी चीजें बन रही हैं और सभी नफरतकी। देखिए, मैला एक ऐसी चीज है कि जिससे सभी लोग अत्यन्त घृणा करते हैं, परंतु किसान लोग उसे बहुत उपयोगी समझते हैं और उसे दाम देकर खरीदते हैं।

यदि यही होता कि एक आदमी सदैव एक ही प्रकारकी चीजोंको पसंद करता और दूसरी प्रकारकी चीजोंसे नफरत करता, तो भी गनीमत थी, क्योंकि ऐसी दशामें प्रत्येक मनुष्यकी कोशिशें सदैव एक ही प्रकारकी रहतीं। परन्तु ऐसा भी नहीं होता है। एक ही

मनुष्य कभी किसी चीजकी इच्छा करता है और कभी किसीकी। पहले जिसकी इच्छा करता है पीछे उसीसे घृणा करने लगता है और पहले जिससे घृणा करता था पीछे उसीकी इच्छा करने लगता है। जैसे कि जिस मनुष्यके शरीरमें कफकी ज्यादती हो जाती है उसको मिठाई खानेकी बहुत इच्छा होती है और खटाईकी तरफसे मन हट जाता है, परन्तु जब उसका पित्त बढ़ता है तब वही मनुष्य खटाई खानेकी इच्छा करता है और मिठाईसे नफरत करने लगता है। इसी प्रकार यह भी नित्य देखनेमें आता है कि यह मनुष्य जिससे प्रथम बहुत प्रीति रखता था, जिसको देखकर उसकी कली कली खिल जाती थी और जिसे एक घड़ीके लिए भी अपने पाससे जुदा नहीं करना चाहता था उसीसे अगर किसी बातमें नाराज हो जाय तो फिर वह उसकी सूरत देखना भी पसद नहीं करता है बल्कि कभी कभी तो वह उसके खूनका प्यासा हो जाता है। गरीबीमें यह मनुष्य जिन चीजोंके लिए तड़फता था, अमीरी आ जाने पर उन्हीं वस्तुओंको देख कर नाक भौं सिकोड़ने लगता है और उन्हें क्षणभर भी अपने सामने नहीं ठहरने देता। जाड़ेमें वह रूई और ऊनके जिन मोटे मोटे कपड़ोंमें लिपटता था, जिन आगकी अँगीठियों पर तापता था, गरमीमें उन्हींसे घबड़ाता है, और गरमीमें जिन शीतल स्थानोंको चाहता था जाड़ेमें उन्हींसे दूर भागता है। गरज यह कि मनुष्यकी इच्छायें और जरूरतें भी सदैव स्थिर नहीं रहती हैं, बल्कि वे क्षण क्षणमें बदलती रहती हैं और मनुष्यसे तरह तरहके नाच नचाती रहती हैं।

मनुष्यकी ये इच्छायें जब प्रबल हो जाती हैं तब वे मनुष्य पर अपना ऐसा प्रभाव जमाती हैं कि वह अपनी हानि लाभको भूल जाता है और इनके फंदेमें फँसकर अपने आप ही अपना नुकसान करने लग जाता है। जैसे कि, बहुधा देखनेमें आता है कि यह निश्चय हो जाने पर भी कि

अमुक वस्तु खानेसे नुकसान पहुँचाती है, बहुतेरे लोग अपनी जीभके स्वादके वशीभूत होकर उस चीजको खा जाते हैं और बीमार पड़ जाते हैं, परन्तु फिर भी वे बाज़ नहीं आते हैं और बीमारीकी हालतमें भी उसे खाते जाते हैं और अपनी बीमारीको बढ़ाते रहते हैं। इसी-प्रकारके ऐसे अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते हैं कि जिनसे सिद्ध हो जाता है कि मनुष्य अपनी इच्छाओंके वशीभूत होकर ऐसे काम करता है कि जिनसे उसको बहुत हानि पहुँचती है।

ऐसी अवस्थामें मनुष्यका यह आवश्यक और मुख्य कर्तव्य है कि वह खूब सावधान रहे और अपनी इच्छाओंको ऐसा प्रबल न होने दे कि जिससे वे उसपर अपना प्रभुत्व करने लगे और उससे जिस तरह चाहें नाच नचावें; बल्कि मनुष्यको ही उनपर अपना आधिपत्य रखना चाहिए, अर्थात् अपनी विचारशक्तिके अनुसार हानिकारक इच्छाओं तथा प्रवृत्तियोंको सदैव दबाते रहना चाहिए।

इसी प्रकार यदि उसकी चाह या इच्छाशक्ति किसी ऐसी चीजसे नफरत रखती हो जो वास्तवमें लाभकारी है तो उसको उचित है कि वह अपनी नफरतको दबावे और उस वस्तुको काममें लावे। मान लो कोई कड़वी दवा किसी बीमारको बतलाई गई परन्तु उसके खानेको उसका जी नहीं चाहता है, तो उसको उचित है कि वह अपने जीको दबावे और उस दवाको खावे। इसी प्रकार यदि बालकोंके साथ खेलमें लगकर किसी विद्यार्थीका मन पाठशाला जानेको नहीं चाहता है तो उसे उचित है कि वह कभी अपने मनकी आज्ञा न माने और खेल छोड़कर तुरंत पाठशालाको चला जाय। इसी प्रकार अन्य सभी बातोंके विषयमें भी समझ लेना चाहिए। क्योंकि इच्छा और द्वेषका उफान सदैव मनुष्यके मनमें उठता रहता है और वह सदैव उसकी विचारशक्तिको दबाता रहता है। इसलिए मनुष्यको सदैव उससे सावधान रहना चाहिए और अपनी विचारशक्तिको प्रबल रखकर

सदैव उसीके अनुसार कार्य्य करना चाहिए। कभी भूलकर भी इच्छा और द्वेषके फंदेमें न आना चाहिए, बल्कि अपनी इच्छा द्वेष अर्थात् चाह-अचाहको ही अपने लाभ हानिके अनुसार बनाना चाहिए। यदि मनुष्य इस प्रकार सावधानीसे काम ले, तो वह अनेक आपत्तियोंसे बच जाय और सुख--शान्तिसे अपना जीवन बितावे।

हम पहले ही कह आये हैं कि पशुपक्षी तो सब कार्य्य अपनी प्रकृतिके ही अनुसार करते हैं–वे उसमें कुछ भी घटा बढ़ा या न्यूनाधिकता नहीं कर सकते। परंतु मनुष्यमें विचारशक्ति है कि जिसके द्वारा वह अपनी सुख-शान्ति बढ़ानेके नये नये उपाय निकालता है और अपनी प्रकृतिको दबाकर उनके अनुसार कार्य्य करता है। इस प्रकार वह उन्नतिपर उन्नति करता जाता है। ऐसा करनेसे ही वह पशुओंसे उत्तम हो सका है और अनेक प्रकारकी आपत्तियोंसे बचकर अपनी सुखशान्तिकी वृद्धि करनेमें समर्थ हुआ है। यह शुभ परिणाम अपनी हानि लाभका ख्याल रखने और अपनी विचारशक्तिसे काम लेनेके कारण ही हुआ है। परन्तु खेदकी बात है कि अनेक मनुष्य अपनी प्रकृतिको दबाने या बदल डालनेमें बहुत लापरवाही करते हैं जिसके उनकी प्रकृति बहुत बिगड़ जाती है और उनकी वासनायें बहुत प्रबल हो जाती हैं। वे उनको कठपुतलीकी तरह नचातीं और भले बुरे सब तरहके काम कराती हैं। इस तरह मनुष्य वासनाओंके वशीभूत होकर पशुश्रेणीसे भी नीचे गिर जाता है, और वह वास्तवमें अपनी वासनाओंके समक्ष काठकी पुतली ही बन जाता है।

देखिए, पशु अपनी प्रकृतिके अनुसार किसी खास ऋतुमे ही कामवासनाकी तृप्ति करते हैं, और इसी लिए उनका वीर्य्यबल इतना बढ़ा चढ़ा होता है कि एकबारके काम-सेवनसे ही गर्भ रह जाता है; परन्तु मनुष्यने अपनी प्रकृतिको एसा विगाड़ रक्खा है कि वह बारहों

इस विषयमें दूसरा दृष्टान्त यह दिया जा सकता है कि खाना खाने पर जब मनुष्यका पेट भर जाता है तब उसका चित उससे हट जाता है, और इतने पर भी वह उसे जबरदस्ती पेटमें ठूंसना चाहता है तो उसे उबकाई आने लगती है और कभी कभी तो कै भी हो जाती है। गोदके बच्चोंको तो अक्सर ऐसा हुआ करता है। जब उनकी माँ उनको अधिक दूध पिला देती है तो वे उसे तुरंत ही उगल देते हैं और अपना पेट हलका कर लेते हैं। इस प्रकार मनुष्यकी प्रकृति स्वतः बहुत सावधानी रखती और होशयारीसे काम लेती है। पेट भर जाने पर वह तुरंत ही सूचना देती है कि अब पेटमें गुंजायशी नहीं है, परन्तु इतने पर भी जब कोई खाता ही जाता है तो वह उसे निकालकर बाहर फेंक देती है। इसी प्रकार अगर किसी कारणसे पहला खाया हुआ भोजन हजम न हो पाया हो और दुबारा खानेका समय आ जाय तो उस समय भी उसे रुचि नहीं रहती है, मानों प्रकृति कहती है कि अभी पेटमें दुबारा खानेको जगह नहीं हुई है। ऐसे ही जब किसी कारणसे पाचनशक्ति बिगड़ जाती है तो फिर कई दिनतक भूख नहीं लगती है। इस प्रकार हर समय मनुष्यकी प्रकृति उसको सावधान करती रहती है, और मानो वह रेलके उस बाबूका काम देती है जिससे लाइन क्लियर मिले बिना-सफेद झंडी दिखाये बिना रेल नहीं चलती है-वहीं पर ठहरी रहती है।

परन्तु शोककी बात है कि मनुष्य अपनी प्रकृतिकी इस रोक या मनाही पर कुछ भी ध्यान नहीं देता है और उसके सुप्रबन्धको तोड़नेके लिए अनेक प्रकारके सुस्वादु भोजन बनाता है, उसके साथ ऐसी खट्टी मीठीं चटनियाँ लगाता है कि प्रकृति भी अपना काम भूल जाती है और जीभका स्वाद लेनेमें लग जाती है। इस प्रकार मनुष्य रिश्वत देकर या फुसलाकर प्रकृतिको अपना काम करनेसे रोकता है और जगह न होने पर भी पेटमें बहुतसा भोजन ठूंस देता है।

इसका परिणाम यह होता है कि उसका बहुतसा हिस्सा बिना पचे ही निकल जाता है और वह शरीरके ढाँचेको बिगाड़ कर अनेक रोग पैदा करता है।

काम-सेवन और भोजन इन दो दृष्टान्तोंसे पाठकोंको यह बात भली भाँति समझमें आ गई होगी कि मनुष्यने अपनी इच्छाओंके दबाने और बदलनेकी महान् शक्तिका दुरुपयोग करके अपनी प्रकृतिके उत्तम रूपको सँभालनेके बदले उसे बिगाड़ डाला है, जिसके कारण वह अनेक बड़ी बड़ी विपत्तियोंमें फँसकर पशुओंसे भी गया बीता बन गया है। विचारनेकी बात है कि छोटा बड़ा, निर्बल, सबल, कोई भी ऐसा पशुपक्षी नहीं है कि जो प्रकृतिविरुद्ध कामक्रीड़ा करता हो, अर्थात् हस्त-मैथुन गुदा-मैथुन आदिके द्वारा अपनी कामाग्निको बुझाता हो। परन्तु दुर्भाग्यवश मनुष्योंमें ये सब दोष उत्पन्न हो गये हैं, और स्त्री-पुरुष दोनों ही इन दोषोंके अपराधी हैं। इसका कारण यही है कि पशुओंको अपनी प्रकृतिके विरुद्ध न तो कोई बात सूझती है और न वे अपनी प्रकृतिके विरुद्ध कोई काम कर ही सकते हैं। परन्तु मनुष्य विचारशक्ति रखता है जिसके द्वारा वह प्रत्येक विषयमें नई नई बातें सोच सकता है और तदनुसार कार्य्य करके अपनी प्रकृतिको बदल भी सकता है। इस लिए जब वह असावधान होकर अपनी विचारशक्तिकी बागडोरको ढीली छोड़ देता है और अपनी हानिलाभके विचारको भूलकर अपनी इच्छाओंके वशमें हो जाता है तथा उनके इशारे पर नाचने लगता है, तब वह अपनी प्रकृतिको ऐसे विपरीत रूपमें भी बदल डालता है कि जिससे उसकी अपरिमित हानि होती है और वह अत्यन्त नीच और पतित बन जाता है।

इस कथनसे हमारा यह मतलब नहीं है कि पशु पक्षियोंकी नाईं मनुष्य भी अपनी प्रकृतिके ही अधीन रहे और अपनी विचारशक्तिके

द्वारा उसमें कुछ भी सुधार या फेरफार न करे, बल्कि हम भी यही कहते हैं कि उसे पशुओंकी नाई सदैव एक लकीर पर न चलना चाहिए, प्रत्युत हर समय अपनी विचारशक्तिसे काम लेकर–जिस समय जैसी जरूरत हो–अपने प्रत्येक काममें नवीनता और रद्दोबदल करते रहना चाहिए और अपनी बुद्धिको बढ़ाना चाहिए, परन्तु असावधान होकर अपनी इच्छाओंको ऐसे उद्धत रूपमें प्रवृत्त न होने देना चाहिए, जिससे मनुष्यके मनुष्यत्वमें बट्टा लगता हो या जो उसे ऊँचे उठानेके बदले नीचे गिरा दें।

समझनेकी बात है कि घोड़ा जब तक खूंटेसे बँधा रहता है तब तक वह उस खूंटेके चारों ओर घूम सकता है और उतनी ही दूर जा सकता है जितनी लम्बी रस्सीसे वह बँधा है। परन्तु बँधा रहनेके कारण वह न तो अधिक उछल कूंद ही कर सकता है और न कहीं भाग ही सकता है। लेकिन खूंटेसे खुल जाने पर उसे इस बातकी आजादी मिल जाती है कि वह दुनिया भरमें जहाँ चाहे जाय और जैसी चाहे उछल-कूंद करे। इस प्रकार पशु तो अपनी प्रकृतिरूपी खूंटेसे बँधे हैं, जिससे वे उसके घेरेके बाहर न तो जा सकते हैं और न कुछ कर ही सकते हैं, परन्तु मनुष्य बिलकुल आजाद है, वह जो चाहे कर सकता और विचार सकता है। हमारा यह कहना नहीं है कि मनुष्य भी अपनी आजादी खो दे और विचारशून्य होकर प्रकृतिरूपी खूंटेसे बँध जावे, बल्कि हमारा यह कहना है कि वह किसी बातमें आँख मीचकर लकीरका फकीर न बने, किन्तु सभी बातोंमें वह अपनी आजादी–स्वतंत्रताको कायम रक्खे और अपनी विचारशक्तिके अनुसार काम करे, और इस प्रकार अपनी आजादीकी बदौलत सदैव आगेको बढ़ता रहे। परन्तु अपनी इस आजादीकी लगामको होशयारीके साथ अपने हाथमें सँभाले रहे और उसे जरा भी विचलित न होने दे, नहीं तो मनुष्यकी यही

आजादी उसे कहींकी कहीं ले जाती है और उसे दुराचरणके गहरे गढेमें गिरा देती है ।

सीधी बात यह है कि घोड़ेको खुंटेसे नहीं बंधा रहने देना चाहिए, किन्तु उस पर सवार होकर उसे अपनी इच्छानुसार-जहाँ चाहे ले जाना चाहिए । परन्तु जो मनुष्य घोड़ेकी सवारी करनेमें पूर्ण होशियार होगा, जो घोड़ेको हाँकने और काबूमें रखनेकी तर्कीब जानता होगा-वही उसे अपनी इच्छानुसार चला सकेगा और अपने इच्छित स्थान पर पहुँच जायगा । परन्तु यदि सवार अनाड़ी होगा, या चलते चलते असावधान हो जायगा, तो उसको उसका घोड़ा न जाने कहाँका कहाँ ले जायगा और मनमानी उछल कूंद करके वह स्वतः ठोकर खायगा और सवारकी भी हड्डी पसली चूर मूर कर देगा । बेचारे पशु तो अपनी प्रकृतिरूपी खूंटेसे बँधे हुए हैं-जिसके बाहर वे कहीं एक कदम भी नहीं रख सकते हैं, परन्तु मनुष्य अपनी विचारशक्तिके द्वारा इस खूंटेको उखाड़ डालता है, और मनमानी करनेके लिए अपनेको आजाद छोड़ देता है । इस कारण यदि मनुष्य अपनी विचारशक्तिसे काम लेता रहे और अपने मनकी बागडोर सावधानीके साथ अपने काबूमें रक्खे, तो वह अवश्य ही परिणाममें सुख पावे और वह अपनेको बहुत शीघ्र उन्नतिके शिखर पर पहुँचा दे । परन्तु जो वह अपनी सावधानीमें तनिक भी चूक करे तो उसका मन उसे कुराहकी ओर ले जावेगा और उसे इधर उधर खूब भटका कर ऐसी जगह पटकेगा जहाँसे निकलना कठिन हो जायगा ।

४–इन्द्रियोंको वशमें रखना ।

छूना, चाखना, सूंघना, देखना और सुनना, इन्द्रियोंके ये पाँचों विषय असावधान मनुष्यको बहुत अधिक सताते हैं और तरह तरहके मज़े चखाकर-प्रलोभन दिखाकर उसे ऐसा बावला बना देते हैं कि वह अपनी सब सुधिबुधि भूलकर उनका गुलाम बन जाता है। यदि मनुष्यको इनमेंसे कोई एक ही विषय होता और असावधान मनुष्य उस एक ही विषयके वशमें होकर उसीकी धुनमें लगा रहता तो शायद उसकी इतनी अधिक फज़ीहत न होती, परन्तु उसके गलेमें तो इन पाँचों विषयोंका जबरदस्त फंदा पड़ा हुआ है, जिससे ये पाँचों विषय उसको अपनी ओर खींच रहे हैं और उसे अपने ही वशमें कर लेनेका प्रयत्न करते रहते हैं। इस कारण इन विषयोंके द्वारा असावधान मनुष्यकी ठीक ऐसी दशा हो जाती है जैसे कि नाटकके तमाशेमें दो जोरूवाले कमजोर मनुष्यकी दिखलाई जाती है। उसकी एक जोरू जो छज्जेपर रहती है उसके दोनों हाथ पकड़ उसे ऊपरको खींचती है, और दूसरी जोरू जो नीचेके मकानमें रहती है टाँगें पकड़कर उसे नीचेकी ओर खींचती है। इससे उसे बेचारेकी जान मुसीबतमें पड़ जाती है और उससे कुछ भी करते धरते नहीं बनता है। यदि वह पुरुष उन दोनों स्त्रियोंमेंसे किसी एकके वशमें हो जाता है और दूसरीको अकेली छोड़ जाता है तो उसकी दूसरी स्त्री भारी उपद्रव मचाती है और सारी रात रोने पीटने और कोसनेमें ही गँवाती है। उसकी इस हरकतसे उस पुरुषकी नाकों-दम आ जाती है और वह अपने विषय-भोगको भूल जाता है। इनके सिवा ये दोनों स्त्रियाँ अपनी अपनी सौत और उसकी संतानको सब

प्रकारसे तंग करने बदनाम करने और यहाँतक कि मार डालनेतकका भी उपाय करती हैं जिससे वास्तवमें उसी पुरुषका नुक़सान होता है। यदि इन दोनों स्त्रियोंमेंसे कोई बहुत उद्धत होकर व्यभिचारणी बन जाती है तो इससे भी उस पुरुषहीकी बदनामी होती है और वह दुनियामें मुंह दिखलानेके योग्य नहीं रहता है।

असावधान मनुष्यकी ये पाँचों इंन्द्रियाँ भी ऐसा ही नाटक रचती हैं और उसे अपनी अपनी ओर खींचकर उसकी खूब दुर्दशा करती हैं। वे उसकी विवेकशक्तिको खोकर, हानिलाभके विचारको भगाकर और उसके सब सुप्रबन्धोंको मिटाकर उसे संकटमें फँसा देती हैं। ऐसी स्थितिमें वह पशुओंसे भी बदतर बन जाता है। परन्तु सावधान मनुष्यके लिए उसकी ये इन्द्रियाँ पाँच प्रकारके उत्तम औजारोंका काम देती हैं कि जिनके द्वारा वह संसारकी वस्तुओंके अनेक गुणोंको पहिचानता है और जरूरतके अनुसार उन गुणोंको अपने काममें लाता है। वह छूने (स्पर्श) के द्वारा खुरदरा चिकना, हलका भारी, नरम कठोर और ठंडा गरम आदि जानता है; चाखने (स्वाद) के द्वारा खट्टा मीठा, कड्वा कसैला आदि स्वाद जानता है; सूंघने (घ्राण) के द्वारा अनेक प्रकारकी गंध पहचानता है; आँखोंके द्वारा काला, पीला आदि रंग देखता है, लम्बा चौड़ा, गोल चौकोर आदि रूप जानता है, नजदीक दूर आदि अन्तर देखता है और ऊँचा नीचा आदि स्थानका ज्ञान करता है; कानोंसे अनेक प्रकारके ताल, स्वर और अनेक प्रकारकी बोलियाँ पहिचानता है। इन सब बातोंकी जानकारी प्राप्त करके वह अपने सुखके अनेक कार्य साधता है और दिन पर दिन उन्नति करता जाता है।

परन्तु इन पाँचों इन्द्रियोंसे काम लेनेमें मनुष्यकी वही दशा होती है जो सरकसके तमाशेमें दो घोड़ोंके सवारकी होती है, जो कभी तो अपना एक पैर एक घोड़ेकी पीठ पर और दूसरा पैर दूसरे घोड़ेकी

पीठ पर रख कर खड़ा हो जाता है और दोनों घोड़ोंको दौड़ाये चला जाता है, और कभी एक घोड़ेकी पीठ पर तो बैठ जाता है और दूसरेकी पीठ पर अपनी टाँगें रख देता है, और कभी किसी दूसरी ही तरहसे बैठता है, परन्तु प्रत्येक अवस्थामें अपने दोनों घोड़ोंको एकहीसी चालमें ले जाता है। सरकसके इस सवारको हर वक्त बड़ी सावधानीसे काम लेना और दोनों घोड़ोंको अपने काबूमें बनाये रखना पड़ता है। क्योंकि अगर एक घोड़ा जरा भी आगे पीछे हो जाय, या दोनों ही घोड़े काबूसे बाहर होकर ऐसी तेजीसे भागने लगें कि सवार सँभल न सके तो सवारकी कमबख्ती आ जाय और उसकी टाँगें चिर जायँ, या वह धड़ामसे नीचे आ गिरे, या अन्य किसी आपत्तिमे फँस जाय। इसी प्रकार मनुष्यको भी अपनी इन्द्रियोंसे काम लेनेमें बड़ी सावधानी रखनेकी आवश्यकता पड़ती है और उनको अच्छी तरह अपने वशमें करना पड़ता है। यदि वह किसी समय जरा भी असावधानी करता है तो ये इन्द्रियाँ उसको धर दबाती हैं और उसे नीचे डालकर मिट्टीमें मिला देती हैं।

सरकसका खिलाड़ी तो दो घोड़ोंपर ही सवार होता है, परन्तु मनुष्यको अपनी पाँचो इन्द्रियोंपर सवार होना पड़ता है जो सरकसके घोड़ोंसे भी अधिक बलवान् और चञ्चल हैं। इस लिए अपनी इन्द्रियोंसे काम लेनेमें मनुष्यको बहुत सावधान रहना चाहिए तथा अपनी पाँचों इन्द्रियोंको भली भाँति वशीभूत करके उनकी चाल-ढाल पर पूरी पूरी देखरेख रखनी चाहिए। इन इन्द्रियोंको काबूमें रखनेके लिए मनुष्यको ऐसी सावधानी रखनी उचित है जैसी कि गोलियाँ उछाल कर तमाशा दिखानेवाला रखता है। वह दस दस, बारह बारह और कभी कभी इससे भी अधिक गोलियाँ ऊपरको उछालने लगता है। वह एकको उछालता है और दूसरीको पकड़ता है, फिर उसको उछालता है और तीसरीको पकड़ता है, इस प्रकार

सभी गोलियोंका एक ऐसा ताँता बँध देता है कि सभी गोलियाँ ऊपरको जाने लगती हैं और उनमेंसे एक-एक गोली क्रमसे उसके हाथमें आती जाती है जिसको वह फिर उछालता जाता है और दूस-रीको पकड़ता जाता है। इस खेलमें उसको आकाशमें उछलती हुई सभी गोलियोंका पूरा पूरा खयाल रखना पड़ता है। वह न तो किसी गोलीको ऐसा बेतौर उछलने देता है कि वह अधिक ऊँची चली जाय, या इधर उधर निकल जाय, और न किसी गोलीको इस तरह उतरने ही देता है कि वह जमीन पर गिर जाय; बल्कि वह सभी गोलियोंको अपने काबूमें रखता है और जिस तरह चाहता है उनको नचाता है।

इसी प्रकार मनुष्यको भी उचित है कि वह अपनी पाँचों इन्द्रि-योंसे काम लेता रहे, परन्तु किसी इन्द्रियको इस प्रकार न उछलने दे कि वह उसकी जरूरतसे बाहर निकल जाय या इधर उधर विचल जाय; बल्कि अपना समय, अपनी अवस्था, अपनी हैसियत, अपनी परस्थिति, अपनी आमदनी और खर्च, अपना आगा पीछा, सुख दुःख, हानि लाभ और सब प्रकारकी जरूरतोंका विचार करके तदनुसार अपनी इन्द्रियोंको चलावे और अपनी सभी इन्द्रियोंका समुचित उपयोग करके उनसे पूरा पूरा आनन्द उठावे। परन्तु कभी भूलकर भी इन्द्रियोंके वशमें न होवे और न कभी किसी इन्द्रियसे जरूरतसे अधिक काम ही लेवे; बल्कि हर समय अपनी विवेकबुद्धिसे काम लेता रहे और जिस समय जैसा उचित समझे वैसा ही करे और अपनी इन्द्रियोंको भी उसी प्रकार परिचालित करता रहे।

५–क्रोधादि कषायोंको वशमें रखना ।

जिस प्रकार ये पाँचों इन्द्रियाँ मनुष्यके पाँच तरहके अद्भुत औजार हैं कि जिनके द्वारा वह संसारकी वस्तुओंके अनेक गुणोंको जानता है और यदि उसकी कोई इन्द्रिय बिगड़ जाती है तो उसका उस इन्द्रियविषयक ज्ञान भी लुप्त हो जाता है और वह कठिनाईमें पड़ जाता है; बल्कि आँख और कान इन दो इन्द्रियोंके बिगड़ जानेसे तो उसका संसारमें विचरना और जीना ही कठिन हो जाता है–इसी प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभ, द्वेष, स्नेह, रंज, खुशी और भय आदि कषाय भी उसकी ऐसी प्रबल शक्तियाँ हैं कि जिनके द्वारा वह संसारके सब कार्य्य करता है। यदि उसमें ये शक्तियाँ न होतीं तो वह कुछ भी न कर सकता, बल्कि निष्क्रिय होकर अंतमें मर जाता। जिस प्रकार इन्द्रियोंसे सावधानीके साथ काम न लेनेपर वे मनुष्योंपर अपना प्रभुत्व जमा लेती हैं और धीरे धीरे उद्धत होकर मनुष्यसे मनचाहा नाच नचाने लगती हैं, उसी प्रकार यदि इन लोभादिक शक्तियोंसे काम लेनेमें असावधानी होती है और उनकी पूरी पूरी चौकसी नहीं की जाती है,तो ये शक्तियाँ भी इन्द्रियोंसे अधिक उद्धत हो जाती हैं–महा भयंकर बन जाती हैं और बहुत उपद्रव मचा देती हैं। इस लिए इन लोभ क्रोधादिक महान् शक्तियों–हृदयके इन जबरदस्त उफानों-को खूब सावधानीके साथ काबूमें रखना, अपनी जरूरतके अनुसार उनसे काम लेना और सीमासे अधिक उभरने न देना बहुत जरूरी है। बल्कि अपने हानि-लाभ और सुख-दुःखके विचारोंके द्वारा इस बातका पूरा पूरा प्रबन्ध कर लेनेकी भी आवश्यकता है कि इन शक्तियोंमेंसे किससे कब कितना काम लिया जावे, अर्थात् हृदयके इन आवेगों या उफानोंमेंसे कब किस उफानको कितना उठाया जाय या कितना कौन दबाया जाय।

मनुष्यक हृदयमें उठनेवाले इन आवेगों या उफानोंकी ठीक ऐसी दशा है जैसी कि किसी कारखानेके एंजिनमें भाफकी होती है। कारखानेमें पीसने, कूटने, दळने, फटकने, बुनने, कातने, औंटने, चीरने, फाड़ने, ठोकने, पीटने आदि अनेक कामोंके लिए अलग अलग कलें लगी हुई होती हैं और ये सब कलें उस एक एंजिनकी भाफकी ताकतसे ही चलती हैं। परन्तु उस कारखानेमें ऐसा प्रबन्ध बँधा रहता है कि कारखानेवाला जिस समय जिस कलको चलाना चाहता है उसीमें भाफकी शक्ति पहुँचा कर उसे चला देता है और जब चाहता है तब उसे बंद कर देता है। बीच बीचमें वह अपनी जरूरतके अनुसार उस कलके वेगको न्यूनाधिक शक्ति पहुँचाकर मंद या तेज भी कर देता है। मतलब यह कि कारखानेकी सब कलें उसके वशमें रहती हैं, वह जब जब जिन जिन कलोंको चाहता है तब तब उन्हें चला लेता है और जब जीमें आता है तब उन्हें बंद कर देता है और अपनी इच्छानुसार उनसे काम लेता है। परन्तु ऐसा उत्तम प्रबन्ध होने पर भी जब वह कारखानेवाला जरा असावधान हो जाता है और किसी कलमें जरूरतसे ज्यादा शक्ति पहुँचा देता है तो वह कल पहले तो उसी कार्य्यको नष्ट भ्रष्ट कर डालती है जो काम उसके द्वारा हो रहा हो, परन्तु जब वह कुछ और भी तेज हो जाती है तब वह अपने ही कल पुर्जे तोड़ने लग जाती है, और यदि बहुत ज्यादह गड़बड़ी मच जाती है तो वह भाफकी शक्ति उस सारे कारखानेको तहस नहस कर डालती है और दूर दूर तक धावा करके आसपासके मकानोंको भी नष्ट कर देती है, और इस तरह सारे नगर भरमें हाहाकार मचा देती है।

इस प्रकार मनुष्य भी एक बड़ा भारी कारखाना है। जीव कारखानेवाला है और मस्तिष्क उसका दफ्तर है, जिसमें बैठकर वह सब कार्य करता है और सबका हिसाब-किताब रखता है। पाँचों इन्द्रियाँ

उसके पाँच जासूस या विशेषज्ञ हैं, जिनके द्वारा वह वस्तुओंके अनेक गुणोंको जानता है और अपनी जरूरतके अनुसार उनको काममें लाता है। हृदय इस कारखानेका बड़ा भारी एंजिन है जिसमें हरवक्त भाफ उत्पन्न होती रहती है और वही भाफ क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, रंज, खुशी, और भय आदि शक्तियोंके रूपमें प्रकट होकर मनुष्यरूपी कारखानेको चलाती है, परन्तु जब जीव गाफिल हो जाता है और मस्तिष्करूपी दफ्तरमें बैठकर पूरी पूरी सावधानीसे काम नहीं लेता, या इन शक्तियोंको अपने काबूमें रखकर जरूरतके अनुसार उन्हें तेज या हल्की नहीं बनाता है और उनको अनियमित या अन्धाधुन्ध चलने देता है, तब ये शक्तियाँ मनुष्यरूपी कारखानेको नष्ट कर डालती हैं और उनके झपेटेमें और भी जो कोई आ जाता है उनको भी वे भारी धक्का पहुँचाती हैं। इस तरह मनुष्यजातिके प्रबन्धमें एक भारी गड़बड़ मच जाती है और संसारमें असंतोष और अशान्ति फैल जाती है।

मनुष्यकी इन क्रोध मान आदि शक्तियोंकी पृथक् पृथक् रीतिसे परीक्षा करने पर जाना जाता है कि ये सभी एक खास हदतक उसका उपकार करनेवाली हैं। सबसे पहले हमे मानके विषयमें विचार करना चाहिए। मनुष्यको यह मान कषाय अनेक प्रकारकी बुराइयोंसे बचाता है, उसके परस्परके व्यवहार चलाता है, आपसमें विश्वास स्थापित करता है, अनेक प्रकारके ज्ञान और कला-कौशल सीखनेको उसे उत्साहित करता है, रात दिन परिश्रम करने और आजीविका बढ़ानेकी ओर लगाता है, उससे बड़े बड़े बहादुरी और चतुराईके काम कराता है और उसे सब तरहकी उन्नतिकी ओर खींच ले जाता है। इसके विपरीत जिस मनुष्यमें स्वाभिमानकी मात्रा कम हो जाती है वह बिलकुल ढीठ और बेशरम बन जाता है और नीचसे नीच कर्म करने तथा कर्महीन बन जानेसे भी नहीं हिच-

कता है। वह दूसरोंका धिक्कार या तिरस्कार सहन करके पराये टुकड़े तोड़नेमें तनिक भी नहीं लजाता है। सच तो यह है कि जिसके हृदयमें अपनी मान-मर्यादाका खयाल नहीं है वह वास्तवमें मनुष्य ही नहीं है; न तो उसपर किसी प्रकारका विश्वास ही किया जा सकता है और न उसका भरोसा ही। सच पूछो तो ऐसे आदमीसे न किसी प्रकारका व्यवहार करना उचित है और न वह पास बिठलानेहीके योग्य है। क्योंकि जिसे अपनी इज्जत आबरूका ख्याल नहीं है—अपनी मान-मर्य्यादाकी सुधि नहीं है, उसे दूसरेकी इज्जत बिगाड़ने या मान-मर्य्यादा भंग करनेमें क्या देर लगती है।

परन्तु इस मानका अधिक बढ़ जाना भी बहुत हानिकारक है। क्योंकि अधिक मानी पुरुष अपनी ऐंठहीमें चलता है, आप तो किसीसे दबना नहीं चाहता है किन्तु दूसरोंको सदैव दबाता रहता है। उसकी इस चालसे अनेक आदमी उसके वैरी बन जाते हैं। इसके सिवा मानी पुरुष अपनी स्थिति, बल, आमदनी और जरूरतोंका ख्याल न करके अपनेसे बड़ोंका अनुकरण करने लग जाता है और अपनेको बड़ा सिद्ध करनेमें अपना सर्वस्व लगा देता है। इसका फल यह होता है कि वह इस बड़प्पनके जालमें फँस कर अपनी असली मान-मर्यादा भी खो देता है, और जब उससे कुछ नहीं बन पड़ता है तब वह दूसरोंसे डाह करने लगता है। अर्थात् स्वयं दूसरोंके बराबर उन्नति न कर सकने पर वह दूसरोंकी बढ़ती देखकर उससे मन-ही-मन जलने लगता है और उसे नीचे गिरानेका नित्य प्रयत्न भी करने लगता है। इतने पर भी जब उसका कोई प्रयत्न नहीं चलता, तब वह मन-ही-मन उसके बर्बाद हो जानेकी भावना करता है और इसके लिए प्रतिदिन परमपिता परमेश्वरकी स्तुति करके उससे यही विनय करता है कि 'हे प्रभो! उसका शीघ्र नाश कर दे'।'

इस मानके बढ़ जानेपर मनुष्य अपनी जाति, घराने और पूर्व अवस्थाके घमंडमें आकर अपनी आजीविकाके बहुत सुलभ और उत्तम उत्तम उपायोंको भी पसन्द नहीं करता है और बेकार बैठकर अपनी पहली पूंजीको खा डालता है। अंतमें बहुत शीघ्र भूखों मरने या भीख माँगनेकी नौबत आ जाती है-जिससे उसकी रही सही मान-मर्यादा भी नष्ट हो जाती है, और वह विवश होकर फिर अपने पेट पालनेके लिए ऐसे ऐसे खोटे काम करने लगता है कि जिसे सुनकर आश्चर्य्य होता है-अर्थात् वह बिलकुल भ्रष्ट और निर्लज्ज बन जाता है। इसी प्रकार जिन लोगोंको अपनी झूठी मान-मर्यादा बढ़ानेकी धुन सवार हो जाती है वे-यह सोचकर कि धनसे ही इज्जत बढ़ती है-धन प्राप्तिके लिए बड़े बड़े अन्याय और कुकर्म करने लगते हैं। परन्तु ऐसा करनेसे वे शीघ्र ही किसी ऐसे झगड़ेमें फँस जाते हैं कि उन्हें जेलकी हवा खानी पड़ती है और उनकी रही सही इज्जत और साख भी धूलमें मिल जाती है। कहनेका मतलब यह है कि झूठे मानके फेरमें पड़कर मनुष्य स्वयं बर्बाद हो जाता है और दूसरोंको भी नुकसान पहुँचाता है। इससे सिद्ध हुआ कि जिस प्रकार मनुष्यको अपने मानका खयाल छोड़ देनेसे हानि होती है, उसी प्रकार उसके जरूरतसे अधिक बढ़ जानेसे भी उसे नुकसान पहुँचता है, अतएव उसे उचित है कि वह सदैव अपनी विवेक-बुद्धिसे मानके सामञ्जस्यको बनाये रक्खे अर्थात् उसकी मर्यादाको न तो जरूरतसे अधिक बढ़ने दे और न घटने दे।

इसी प्रकार यदि मनुष्यके लोभ न हो तो वह न तो संसारकी वस्तुओंकी प्राप्तिके लिए कोई प्रयत्न करे और न किसी वस्तुको सँभालकर रक्खे। मतलब यह कि उसकी गृहस्थीका ढाँचा ही बिगड़ जाय और वह पशु-पक्षियोंकी श्रेणीमें आ जाय। परन्तु लोभकी मात्रा बढ़ जाने पर भी उसकी जो दुर्गति होती है-उसे जो आप-

तियाँ उठानी पड़ती हैं वे किसीसे छिपी नहीं हैं। यह मनुष्य अति लोभमें पड़कर गैरजरूरी वस्तुओंका संचय करता, हजार दुःख झेलता और बड़ी जरूरतके समय भी उनको खर्च नहीं करता है। उनकी रक्षाके लिए अपनी जान निछावर करता और उनकी प्राप्तिके लिए महा अन्याय और नीचसे नीच कर्म करनेसे भी नहीं चूकता है। न तो वह राजदंडसे डरता है और न उचित अनुचितका ही विचार करता है। इस लोभकी प्रबलताने संसारमें ऐसा घोर उपद्रव मचा रक्खा है कि मनुष्य जंगलके हिंस्र पशुओंसे भी अधिक दुष्ट और परापहारक बन गया है—वह दूसरोंको हानि पहुंचाने, दूसरोंके हक छीनने और दूसरोंका माल हड़प जानेमें जरा भी नहीं हिचकता है। मनुष्य जातिमें अशान्ति फैलनेका यह भी एक कारण है। प्रायः सभी मनुष्य अपना अपना स्वार्थ साधने और आपापोखीपनेमें पड़ गये हैं जिससे मनुष्योंके पारस्परिक व्यवहारका ढाँचा बहुत ही बिगड़ गया है। अतएव मनुष्यको उचित है कि वह अपनी लोभवृत्ति पर भी कड़ी निगाह रक्खे और कभी उसे सीमासे ऊपर नीचे न खसकने देवे।

मान और लोभके समान क्रोध भी मनुष्यकी एक बड़े कामकी शक्ति है। इस क्रोधके द्वारा ही वह अपने शत्रुओंको हटाता और अपनी मान-मर्यादा, धन-सम्पत्ति आदिकी रक्षा करता है। परन्तु बात बात पर क्रोध लाना, बिना जरूरतके उसका उपयोग करना और उसकी तेजीमें आकर आपेसे बाहर हो जाना या और अनुचित कार्य्य करने लगना बहुत बुरा है। अतएव क्रोधको भी सदैव अपने वशमें रखना चाहिए। याद रक्खो कि जिस प्रकार घरमें जलाई हुई अग्नि घरकी वायुको शुद्ध कर देती है, शरीरकी अग्नि पसीनेको निकालकर खूनको साफ करती है, उसी प्रकार क्रोधाग्नि भी मनुष्यके वैरियोंको दूर हटाती है और अनेक उपद्रवोंसे बचाकर उसे सुख शान्ति दिलाती है। परन्तु जिस प्रकार घरमें जलाई हुई अग्नि अधिक भड़क जाने

पर बेकाबू होकर घरको ही जला डालती हैं, शरीरकी अग्नि अधिक बढ़ जानेसे खूनको सुखा डालती और अनेक प्रकारकी बीमारियाँ पैदा करती है, उसी प्रकार क्रोधाग्निके अधिक भडक जाने पर भी बहुत बुरा नतीजा निकलता है। इस लिए क्रोधको अपने काबूमें रखना और उसे सीमासे बाहर न बढ़ने देना बहुत लाजिमी है। इसके अतिरिक्त यह भी जान लेना चाहिए कि बात बातमें बिगड़ना, हर समय रूठना, चिढ़चिढ़ा स्वभाव बनाना, सदैव नाक भौं चढ़ाये रहना, रोष भरी बातें करना ये सब कमज़ोरीकी निशानियाँ है। ऐसा करनेसे अपना कुछ भी गौरव नहीं रहता है और छछोरपन ही समझा जाता है। अतएव मनुष्यको हरसमय प्रसन्नचित्त और हँसमुख रहना चाहिए, और बात बातमें क्रोध नहीं दरसाना चाहिए। इसके सिवा अपनी संतानको, शिष्योंको, नौकरोंको या अन्य किसी अपने अधीनको सुधारनेके लिए दंड देनेमें या न्यायाधीश बनकर अपराधीको सजा देनेमें कभी भूलकर भी क्रोध नहीं लाना चाहिए, बल्कि उसके सुधारने और दूसरोंको उत्तम शिक्षा मिलनेके खयालसे यह काम बहुत शान्ति और विवेकके साथ करना चाहिए। ऐसे कामोंका क्रोधसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

कभी कभी मनुष्य ऐसी कठिनाईमें भी फँस जाता है कि सीधेसादे उपायोंसे न वह अपने जान मालकी रक्षा कर सकता है न अपने प्रबल वैरीकी चोटसे बच सकता है और न किसी भारी फितने-फिसादको दबा सकता है। ऐसे कठिन प्रसंगके लिए मनुष्यके पास माया नामक एक शक्ति रहती है कि जिसके द्वारा वह झूटमूठ बातें बनाकर या कुछका कुछ दिखा कर अपनी जान बचा सकता है या किसी भारी फिसाद या उपद्रवको दबा सकता है। परन्तु इस निंद्य शक्तिका उपयोग अत्यन्त लाचारी दरजे या बहुत जरूरी समयके सिवा और कभी न करना चाहिए; बल्कि जहाँतक

झेलनेके लिए तैयार न होना, किसी आपत्तिके आनेपर भयके मारे अपने होश खो देना, भयके समय धीरजको छोड़कर आपत्तिसे बचनेका कोई उपाय न कर सकना, डरके मारे हक्के बक्के हो जाना, या अपनी रक्षाके मार्गको निश्चित न कर सकना और बिना जरूरत भयके सन्मुख जाकर अपना सर्वनाश कर लेना, इत्यादि बातें ऐसी हैं जो भयका दुरुपयोग करने या उसकी मात्राके बढ़ जानेसे होती हैं और जिनके कारण मनुष्य पर भारी विपत्तियाँ आती हैं और दुःखकी भयंकरता बढ़ जाती है। सच तो यह है कि संसारके प्रायः सभी कार्योंमें हानि लाभ, सम्पत्ति विपत्ति और सुख दुःख लगे रहते हैं, अर्थात् यहाँ कोई भी कार्य्य ऐसा दिखाई नहीं देता है कि जिसमें केवल सुख ही सुख हो और दुःख नामको भी न हो, या जिसमें केवल लाभ ही लाभ हो, हानि ज़रा भी न हो। ऐसी अवस्थामें मनुष्योंको उन कामोंसे भय खाना चाहिए जिनमें हानि अधिक हो और लाभ कम हो और अपनी विचारशक्तिसे ऐसे काम चुन लेना चाहिए जिनमें विपत्ति कम हो और लाभ अधिक हो। परन्तु जिन लोगोंमें भयकी मात्रा बढ़ जाती है उनकी विचारशक्ति शिथिल पड़ जाती है, इस कारण वे इस बातका निश्चय नहीं कर सकते हैं कि किस कार्य्यमें अधिक विपत्ति है और किसमें कम। यदि कोई उनको इसका निश्चय भी करावे तो वे भयके मारे कम विपत्तिवाले कामोंको भी करनेका साहस नहीं करते हैं और भय तथा आकुलताहीमें अपना जीवन बितादेते हैं। इस कारण प्रत्येक कार्य्यमें भयसे काम तो अवश्य ही लेना चाहिए, परन्तु उसको जरूरतसे ज्यादः हर्गिज़ न बढ़ने देना चाहिए।

स्नेह और द्वेष, रंज और खुशी भी मनुष्यकी बहुत कामकी चीजें हैं। सच पूछो तो ये चारों शक्तियाँ मनुष्यसे तरह तरहके काम कराती हैं और उसको उन्नतिके मार्गपर चलाती हैं। परन्तु ये चारों

बातें भी तभी तक लाभकारी होती हैं जब वे अपनी उचित मर्यादाके भीतर रहती हैं। मर्यादा उल्लंघन करनेपर तो वे भी बहुत भयंकर हो जाती हैं और मनुष्यको बहुत हानि पहुँचाती हैं। जैसे कि स्नेह या मुहब्बतकी आग बढ़ जानेसे मनुष्य उस स्त्री या पुरुषसे मुहब्बत करने लगता है जिससे मुहब्बत करनेका उसको अधिकार नहीं होता है। फल यह होता है कि उसे धक्के खाने पड़ते हैं और अपमानित होना पड़ता है। वह इस मुहब्बतमें कभी कभी ऐसा विव्हल हो जाता है कि अपने तथा अपने प्रेमपात्रके, दोनोंके हानि लाभको भूल जाता है। जैसा कि इस देशके मातापिता अपनी संतानके स्नेहमें ऐसे बेसुध हो जाते हैं और लाड़-प्यार करके उनको ऐसा बिगाड़ देते हैं कि फिर उनको सारी उम्र धक्के ही खाने पड़ते हैं और अपने माता पिताके वे दुःखदाता बन जाते हैं। स्नेहकी मात्रा बढ़ जानेसे मनुष्यकी विचारशक्ति शिथिल पड़ जाती है और उसे अपने प्रेमपात्रकी बुराइयाँ भी भलाईके रूपमें दिखाई देने लगती हैं। इस तरह उसके प्रति पक्षपातकी मात्रा बढ़ जानेसे वह बिलकुल विचारशून्य हो जाता है। इसी प्रकार नफरत या द्वेषकी मात्रा बढ़ जानेसे भी मनुष्य अपनी विचारशक्तिको खो बैठता है और जिससे द्वेष हो जाता है उसकी भलाई या गुणको भी वह बुराई या दुर्गुण समझने लगता है। वह उसके नामसे नफरत करने लगता है और उसकी शकल देखकर मुंह फेर लेता है। बल्कि कभी कभी तो यहाँतक होता है कि वह जिस वस्तुसे नफरत करता है उसका नाम सुनकर ही उबकाई लेने लग जाता है। इसी प्रकार रंजके बढ़ जानेसे भी मनुष्यकी अकल मारी जाती है और वह पागलों जैसे कार्य्य करने लगता है। वह अपना सिर फोड़ता है, छाती पीटता है, कपड़े फाड़ता है, बाल नोंचता है, जहर खा लेता है, पानीमें डूब मरता है, आत्मघात कर लेता है या ऐसे ऐसे और भी कई तरहके विपरीत

कार्य्य करता है। परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो रंज मनुष्यका ऐसा उत्तम वन्धु है जो किसी कार्य्यके विगड़ जाने पर या इच्छाके विपरीत कार्य्य हो जानेपर उसको समझाता है कि यह कार्य हमें इतना अधिक प्यारा है कि जिसके लिए वारंवार प्रयत्न करने और नवीन नवीन युक्तियोंसे काम लेकर उसे किसी न किसी प्रकार सिद्ध करनेको जी तड़फता है, अर्थात् रंज यही सिखलाता है कि इस कार्य्यके विगड़ जाने पर इससे मुंह नहीं छिपाना चाहिए, बल्कि पहलेसे अधिक साहस करके जिस तरह हो सके इस विगड़े कार्य्यको बनाकर ही छोड़ना चाहिए। परन्तु मूर्ख लोग अधिक रंज करके अपने साहसको खो बैठते हैं और अपनी बुद्धिको भ्रष्ट करके उस कामको ही छोड़ देते हैं, बल्कि रंज मनानेमें लगकर अपने अन्य जरूरी कामोंको भी विगाड़ लेते हैं और इस तरह अपनी हानि पर हानि करते हैं। वे रंज जैसी उत्तम शक्तिको बदनाम करके कहने लग जाते हैं कि क्या करें, हम तो रंजमें पड़े रहनेसे कुछ भी न कर सके और हमारे सभी काम विगड़ गये। अतएव मनुष्यको उचित है कि वह भारीसे भारी विपत्ति आनेपर या अच्छेसे अच्छा काम विगड़ जाने पर भी कभी अधिक रंज न करे और अपनी बुद्धि या साहसको कभी विगड़ने न दे, बल्कि रंज या खेदकी अवस्थामें साहस और बुद्धिसे अधिक काम लेवे और अपने विगड़े हुए कामको सुधारनेका प्रयत्न करे। यदि कोई ऐसी आपत्ति आपड़े कि जिसकी किसी प्रकार पूर्त्ति न हो सकती हो, तो ऐसी अवस्थामें बिलकुल रंज न करे और अपने मनमें संतोष धारण करके उस अवस्थाके अनुकूल किसी ऐसे उत्तम कार्य्यमें लग जावे कि जिससे वह रंज भूल जाय। अर्थात् रंजकी कोई बात हो जानेपर खाली कभी न बैठे, क्योंकि खाली बैठनेसे रंज बढ़ता है और रंजके सिवा और कुछ नहीं सूझता। इस लिए रंजके समय तो अवश्य ही किसी न किसी काममें लग जाना चाहिए और उसे इतनी

तनदेहीके साथ करना चाहिए कि जिससे और कोई खयाल पास न आने पावे।

खुशी या आनन्द भी मनुष्यकी उन्नतिमें बहुत सहायता पहुँचाता है। क्योंकि वह उसे अच्छे अच्छे और लाभकारी कामोंको करनेके लिए उत्तेजित करता है। एक खुशी मनुष्यको दूसरे ऐसे खुशीके कामको करनेके लिए प्रोत्साहन देती है कि जिससे पहलेकी अपेक्षा अधिक खुशी हो। परन्तु खुशीमें आपेसे बाहर हो जाना या खुशीके मारे अन्य आवश्यकीय कामोंको भूल जाना भी बहुत हानिकारक है। इसके सिवा अधिक खुशी मनानेमें सबसे बड़ी बुराई यह होती है कि जिस कामके लिए पहले अत्यधिक खुशी की जाती है उसके बिगड़ जानेपर उतना ही अधिक रंज भी होता है। संसारी कामोंका बनना बिगड़ना अपने हाथमें न रहनेके कारण उनके लिए अधिक खुशी या रंज मनाना बिलकुल व्यर्थ है, क्योंकि ऐसा करनेसे मनुष्यको रंज और खुशीसे कभी छुटकारा ही नहीं मिल सकता है।

गरज यह कि लोभ क्रोधादिक सभी उफान जब तक मनुष्यके वशमें रहते हैं, दबानेसे दबते हैं और उभारनेसे उभरते हैं, और जब तक वह अपनी विवेकबुद्धिसे काम लेकर उनको अपनी इच्छाके अनुसार चलाता रहता है तबतक वे उसके बहुत कार्य्यकारी और सहायक रहते हैं, परन्तु जब वह बेपरवाह हो जाता है और इनकी पूरी पूरी देखभाल नहीं रखता है तब ये ही शक्तियाँ उस पर अपना अधिकार जमा लेती हैं और उसे कठपुतलीकी नाईं नचाकर उसे बरबाद कर डालती हैं। जो मनुष्य यह कहता है कि 'मुझे अमुक आदमीने गुस्सा दिलाया,' या 'क्या कहूँ मुझे गुस्सा आही गया,' समझना चाहिए कि वह अपने गुस्सेको काबूमें नहीं रखता है, बल्कि वही गुस्सेके काबूमें है। इसी प्रकार जो मनुष्य किसीकी खुशामदमें आ जाता है या अपनी बड़ाई सुनकर फूल जाता है, समझना चाहिए कि उसे

अभिमानने ऐसा दबा रक्खा है कि वह अपनी विवेकशक्तिसे भी काम नहीं ले सकता है। इसी प्रकार अन्य सभी बातोंमें समझ लेना चाहिए और क्रोधादिक आवेगों पर अपना पूरा पूरा चौकी पहरा रखना चाहिए। किसी भी शक्ति या उफानको अधिक उभरने या शिथिल न होने देना चाहिए, वरन् उनसे यथोचित काम लेते रहना और उन्हें अपनी जरूरतोंके अनुसार चलाना चाहिए। इस बातका भी हर वक्त ध्यान रखना चाहिए कि जिस प्रकार खीर पकानेके लिए चूल्हेमें आग जलाते रहना जरूरी है, उसी प्रकार सांसारिक कामोंको करनेके लिए मनुष्यके हृदयमें लोभ, क्रोध, मान आदि कषायोंकी आगका रहना भी बहुत जरूरी है। इसी प्रकार जो रसोइया जरूरतके अनुसार चूल्हेकी आगको कमती बढ़ती करता रहता है वह अच्छी रसोई बना लेता है, परंतु जो अनाड़ी पूरी सावधानी नहीं रखता वह चूल्हेकी आगको या तो बिलकुल कम कर देता है जिससे उसकी खीर अधकच्ची ही रह जाती है, या वह उस आगको इतनी तेज कर देता है कि जिससे उफान आकर सारी खीर बाहर निकल जाती है या बर्तनहीमें जल जाती है। इसी प्रकार जो बुद्धिमान् पुरुष अपने हृदयके आवेगोंकी आगको अपने काबूमें रखता है और जरूरतके अनुसार उसे मन्द या तेज करके सावधानीसे काम लेता है वह अपने सब कामोंको उत्तम रीतिसे पूर्ण करके संसारमें यश पाता है, परंतु जो मूर्ख असावधान रह कर अपने कषायोंके सामञ्जस्यको बिगाड़ देता है वह स्वतः बिगड़ जाता है और संसारमें बदनाम होता है। इस लिए मनुष्यको सदैव सावधान रहकर विवेकके साथ काम करना चाहिए, क्योंकि ऐसा किये बिना उसका इस बहुरंगी दुनियामें निस्तार नहीं है।

६—खराब आदतें न पड़ने देना चाहिए।

जिस प्रकार लट्टू पर डोरा लपेटकर घुमानेसे वह लट्टू डोरा अलग हो जाने पर भी बहुत समय तक घूमता रहता है, उसी प्रकार संसारकी सभी वस्तुयें संस्कारोंके अधीन हो जाती हैं, अर्थात् वे अपने अभ्यासके वशीभूत हो जानेपर आपसे आप वैसा ही काम करने लगती हैं और उसके विरुद्ध चलनेमें झिझकती हैं। यही अभ्यास बढ़ते बढ़ते एक प्रकारका स्वभाव बन जाता है और फिर उस अभ्यासका छुटाना या जरूरतके समय उसे दूसरे मार्गपर चलाना कठिन हो जाता है। इसी कारण बहुतसे मनुष्य अपनी आदतसे लाचार होते हैं और मौका बेमौका, समय कुसमय उसी आदतके अनुसार चलकर तकलीफ उठाते हैं, बड़ी बड़ी विपत्तियोंमें पड़ जाते हैं और फिर भी अपनी उस आदतको नहीं छोड़ सकते हैं। इसकारण मनुष्यको उचित है कि वह अपनेमें भली या बुरी किसी प्रकारकी आदत न पड़ने दे, सब तरहसे स्वतंत्र रहे और जब जैसी जरूरत हो उसीके अनुसार चले; परन्तु यदि इतना न हो सके तो कमसे कम बुरी आदतें तो कदापि न पड़ने दे और इसके लिए पूरी पूरी सावधानी रक्खें।

मनुष्यको सबसे जल्दी और सुगमताके साथ उन सब चीजोंके खाने पीने और सूंघने आदिकी आदत पड़ती है—जो नशा करती हैं। नशेकी ये सब चीजें बहुधा बहुत ही बदमजा और दुर्गन्धयुक्त होती हैं कि जिनके खाने या सूंघनेसे कै आती है, या सिरमें चक्कर आकर बेहोशी सी हो जाती है। परन्तु थोड़े ही दिनोंमें जब इन चीजोंकी आदत पड़ जाती है तब इनके कारण शरीरमें बड़े बड़े रोग पैदा हो जाने पर भी इनके छोड़नेको जी नहीं चाहता है, और यदि किसी

प्रकार इनके छोड़नेकी इच्छा भी की जाय तो इनका छोड़ना असम्भवसा हो जाता है। इन नशोंकी शीघ्र आदत पड़ जानेका कारण यह मालूम होता है कि इनसे मनुष्यका दिमाग खराब हो जाता है, विवेकशक्ति शिथिल पड़ जाती है और भले बुरेकी पहिचान घट जाती है। इन नशोंसे शरीरमें थोड़ी देरके लिए गरमी बढ़ जाने और चेतनतासी मालूम होनेपर मनुष्य समझ लेता है कि हमारा बल बढ़ गया है और वह आनंद मनाने लगता है। ये सब नशे किसी प्रकार भी न तो मनुष्यके कुछ काम ही आते हैं और न उसको सुख पहुँचाते हैं, बल्कि उसके शरीरका सत्यानाश करके उसमें अनेक प्रकारके भयंकर रोगोंको पैदा कर देते हैं; और अगर किसी समय नशेके मिलनेमें देरी हो जाती है तो ये उसकी बहुत ही बुरी हालत बना देते हैं। इसीलिए नशेबाज अपने सभी जरूरी कामोंको छोड़कर नशा पूरा करनेकी अधिक फिकर रखते और अपने नशेको ही सबसे मुख्य कार्य समझते हैं। यही कारण है कि उनके जरूरीसे जरूरी काम भी पड़े रहते हैं और उनकी गृहस्थी बिगड़ जाती है। अतएव मनुष्यको इन नशोंको कभी अपने पास नहीं फटकने देना चाहिए और सदैव इनसे दूर रहना चाहिए।

बहुतसे मनुष्य इन बुरी आदतोंसे बचनेके लिए अपने ऊपर एक प्रकारकी जबरदस्तीसी किया करते हैं, अर्थात् वे ऐसी चीजोंके त्यागकी कसम खा लिया करते हैं; परन्तु हमारी समझमें जो मनुष्य इतना कमजोर है कि आगे अपनी विवेकशक्तिसे काम नहीं ले सकता है और बिना कसम खाये बुरी बातोंसे नहीं बच सकता है, उससे इस बातकी क्या आशा की जा सकती है कि वह आगे अपनी कसम कायम रख सकेगा या नहीं। क्योंकि व्यभिचारियों और नशेबाजोंके विषयमें नित्य ही देखनेमें आता है कि वे अपने बुरे व्यसनोंको त्यागनेके लिए दिनमें छह छह बार कसमें खाते हैं और छह छह बार ही

उन्हें तोड़ते हैं। हमारी समझमें तो अगर कसम खिलानेकी अपेक्षा उनको बारंबार इतना समझाया जाय जिससे उस बुरी आदतके दोष उनके हृदयमें जमकर उससे उनको पूरी पूरी ग्लानि हो जाय और साथ ही कई दिनतक उस आदतके छुड़ानेका उनको अभ्यास भी कराया जाय, तो वह बुरी आदत छूट सकती है, नहीं तो केवल कसम खिलानेसे कुछ नहीं होता बल्कि उससे और भी अधिक ढीटपन आ जाता है। इसके सिवा दुनियामें हजारों लाखों ऐसी बातें हैं कि जिनसे बचनेकी मनुष्यको जरूरत पड़ती है। ऐसी हालतमें वह बेचारा किस किसके त्यागकी कसम खाय और किस किसकी याद रखकर उसे निभावे। अतएव मनुष्यको सदैव अपनी विवेकशक्तिसे काम लेना चाहिए कि जिससे वह सदैव सब प्रकारकी बुराइयोंसे बचता रहे। इसके अतिरिक्त बहुतसी बातें ऐसी हैं जो किसी समय, किसी अवस्था और किसी अवसरपर तो बुरी होती हैं, और किसी समय, किसी अवस्था और किसी अवसर पर अच्छीं। इस कारण कसम खानेसे कैसे काम चल सकता है? यही नहीं, वरन् ऐसा करनेसे मनुष्यकी विचारशक्ति भी अपना काम छोड़कर शिथिल और कमजोर बन जाती है।

परन्तु इन नशोंके विषयमें सबसे बड़ी कठिनाई तो यह आ पड़ी है कि हमारे देशके अध्यात्मरसके रसिक योगाभ्यासी और आत्मध्यानी साधु-संत बहुत करके इन नशोंको ही मोक्ष जानेकी सबसे उत्तम सवारी समझते हैं और इसी कारण वे दिन भर भंग पीने और गाँजे या चरसकी दमें उड़ानेमें ही लगे रहते हैं। नशा करनेके सिवा वे अपना और कोई काम ही नहीं समझते हैं। नशेकी घुमेरसे दिमागमें चक्कर आते रहने और घर आसमान सब कुछ घूमता हुआ नजर आनेसे ये अन्तर्यामी और महाज्ञानी लोग यही समझते हैं कि हम बहुत तेजीके साथ मोक्षकी तरफ उड़े जा रहे हैं और

एक एक क्षणमें हज़ारों मीलका सफर तय कर रहे हैं; यह आकाश और धरती हमको ऐसी घूमती हुई नज़र आती हैं जैसे कि रेलमें बैठनेसे आसपासकी धरती और वृक्ष घूमते हुए दिखाई देते हैं। यही कारण है कि गृहस्थ लोग भी इन नशेबाज़ फकीरोंको 'पहुँचा हुआ' समझते हैं, उनसे भूत-भविष्यत्की बातें पूछते और उनके वचनोंको पत्थरकी लकीर समझते हैं। यही नहीं, वे उनकी शक्तिको ईश्वर या प्रकृतिकी शक्तिसे भी अधिक मानकर उनसे ईश्वर या प्रकृतिके विरुद्ध काम करा लेनेकी आशा रखते हैं और इसी लालचसे उन्हे नशेकी चीजें भेंट किया करते हैं।

ये परोपकारी साधु सन्त इन मोक्षदायक नशोंको अकेला ही सेवन करके स्वार्थी नहीं बनना चाहते, बल्कि इनके उत्तम उत्तम गुण बतलाकर, बड़ी बड़ी महिमायें गाकर, बड़े आग्रहके साथ अपने श्रद्धालुओंको भी चखाते हैं और धीरे धीरे उनको भी नशोंका अभ्यास कराके मोक्षपथ पर ले जाते हैं।

इन मोक्षमार्गी साधुओंकी देखादेखी गृहस्थोंके धर्म्मगुरु ब्राह्मण-लोग भी शायद इसी भयसे नित्य भंगका लोटा चढ़ाया करते हैं कि नशा नहीं करेंगे तो मोक्ष तो क्या शायद स्वर्गमें भी घुसनेके अधिकारी नहीं रहेंगे। इसके सिवा वे भंगको अपने महादेव पर भी चढ़ाते हैं और ऐसा करके मानो वे इस बातका डंका बजाते हैं कि जो कोई इस नशेको बुरा कहेगा वह मानो देवताकी प्यारी वस्तुका अपमान करेगा और इस प्रकार देवताका कोप-भाजन बनकर अपना ही सर्वनाश कर लेगा। इसके सिवा अध्यात्मचर्चाके केन्द्रस्थान और मोक्षमार्गके एकमात्र अधिकारी इस परम पवित्र भारतवर्षमें ऐसे देवता भी निवास करते हैं जो शराबसे ही खुश होते हैं और इस लिए उनपर खूब ही शराब चढ़ती है और उनके पुजारियोंको वह कुछ भी नशा नहीं करती है। यही कारण है कि वे उसे पानी-

की तरह पीते हैं और भीतरके कपाट खोलकर भूत-भविष्यत्की सब बातें बतलाने लग जाते हैं।

पाश्चात्यदेशनिवासी यूरोपियन आदि जड़वादी तो शराबके सिवा और कोई दूसरा नशा ही नहीं जानते हैं। वे शराब भी केवल इसी लिए पीते हैं कि उनके अत्यन्त ठंडे देशोंमें—जहाँ बारहों महीना बर्फ जमा करती है और ठंडके कारण हाथ पैर हिलाना भारी हो जाता है—यह शराब बदनमें गरमी लाती, खूनके प्रवाहको तेज करती और मनुष्यके उत्साहको बढ़ाकर उसे कार्यक्षम बनाती है।' परन्तु अध्यात्मरसके रसिक भारतवासियोंने इस विषयमें उनसे विशेष शोध की है। ये कहते हैं कि हिन्दुस्तान जैसे अत्यन्त गरम देशमें इन नशोंके पीनेसे मनुष्यको बहुत दूरकी सूझने लगती है और उसकी आत्मा परम पवित्र होकर शीघ्र ही परमात्म पदको पा लेती है। इसी लिए भारतवर्षके अध्यात्मवादियोंने अपने ज्ञानचक्षुओंसे नशेकी बीसों चीजें ढूंढ़ निकाली हैं, जिनके द्वारा वे शीघ्र ही मोक्षमार्गको तय कर लेते हैं और वहाँ पहुँचकर शीघ्र ही सत् चित् आनन्दमें लय हो जाते हैं—अनन्तकालतक परमानन्दमें मग्न रहते हैं।

इसके अतिरिक्त पाश्चात्य देशोंके जड़वादियोंने जड़ पदार्थोंके गुणोंकी खोजमें नशेको हानिकारक जानकर उसे त्यागना शुरू कर दिया है और अमेरिका जैसे ठंडे देशमें भी शराबका पीना राजाज्ञा द्वारा बन्द कर दिया गया है। परन्तु वे सब म्लेच्छ देश हैं, इस कारण इन अध्यात्मवादियोंके कथनानुसार वहाँ इस प्रकारके जितने उलटे कार्य्य हों—सब थोड़े हैं। परन्तु इस परम पावन भारतदेशमें ऐसा नहीं हो सकता है, बल्कि यहाँ अन्य सब नशोंके साथ साथ शराबका पीना भी हदसे ज्यादह बढ़ता जाता है। पचास वर्ष पहले जिस स्थान पर शराबकी बिक्रीका ठेका सौ रुपयेमें होता था वहाँ अब वह कई कई हजार रुपयोंमें होने लगा है और साल दर साल

बढ़ता ही चला जाता है। हरिद्वार आदि तीर्थोंपर इस शराबकी बिक्री इतनी अधिक होने लगी है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। इसका कारण इसके सिवा और क्या हो सकता है कि शराब जैसे उत्तम पदार्थके गुणोंको पश्चिमके जड़वादी ज़रा भी नहीं पहिचानते हैं, इसीलिए वे इसको अपनी अज्ञानताके कारण त्यागने लगे हैं, परन्तु भारतवर्षके अध्यात्मवादी शराबके आध्यात्मिक गुणोंको भलीभाँति जानते हैं और इसीलिए वे रातदिन इसका प्रचार अधिकाधिक बढ़ाते चले जा रहे हैं।

यह अध्यात्मवादी भारत नशैली चीजोंकी खोजमें इतना निपुण हो गया है कि पश्चिमदेशवासियोंने अपनी जड़बुद्धिसे जो 'कोकेन' नामी एक ऐसी ओषधि निकाली है जिसके लगाते ही शरीर शून्य हो जाता है और इस कारण चीरफाड़में आसानी हो जाती है, उसमें भी उसने अपने ज्ञानचक्षुसे नशेका गुण पहिचान लिया है और उसे नशेके रूपमें इस्तैमाल करना प्रारंभ कर दिया है। यद्यपि गवर्नमेण्टने उसे बहुत हानिकारक और विषाक्त समझकर उसका खाना अपराध ठहराया है और जिसके पास एक रत्ती भर भी कोकेन मिल जाती है उसे दंड दिया जाता है, परन्तु अध्यात्मवादी भारतने इसका जो गुण पहिचाना है वह जड़वादी पश्चिम क्या जाने! इसी लिए भारतवासी अब भी अनेक गुप्त रीतियोंसे इसे मँगाते और लाखों करोड़ों रुपयोंकी (कोकेन) खा जाते है।

ऐसी दशामें बहुत कुछ सोच विचार करनेपर भी अब तक हमारी समझमें यह नहीं आया है कि हिन्दुस्तानमें नशेको बंद करनेका क्या उपाय किया जाय-सिवाय इसके कि जो लोग नशेको बुरा समझते हैं वे ऐसे अध्यात्मवादियोंसे दूर रहकर स्वतः नशा करना छोड़ दें और उसकी बुराइयोंको जोरशोरके साथ लोगोंपर प्रकट करें।

तमाखू खाना, पीना, सूंघना आदि छोटे छोटे नशे यद्यपि मनुष्यको साक्षात् पागल नहीं बनाते हैं तथापि वे शरीरको बहुत अधिक नुकसान पहुंचाते हैं। इसके सिवा इन छोटे नशोंसे भी लाभ तो कुछ होता नहीं है उलटे आदत पड़ जानेपर उनसे बहुत दुःख उठाना पड़ता है। इस लिए छोटा बड़ा कोई भी नशा नहीं करना चाहिए और किसी खास वस्तुकी आदत न डालकर स्वच्छन्दताका उपभोग करना चाहिए।

नशेसे दूसरे दर्जेपर मनुष्यके गले पड़ जानेवाले वे खेल हैं जिनमें हार-जीत होती है या मान कषाय भड़कता है। इन खेलोंमें भी वे खेल अधिक रुचिकर होते है और उनकी आदत भी जल्दी पड़ जाती है जिनमें मेहनत कम करना पड़ती है और बैठे बैठे ही हार-जीत हो जाती है। कुश्ती, कबड्डी, गेंदबल्ला, घुड़दौड़ आदि ऐसे कई प्रकारके खेल हैं कि जिनमें शारीरिक मेहनत भी खूब होती है और हार-जीत भी हो जाती है। यदि मनुष्य इन खेलोंको ऐसी सावधानीके साथ खेले कि जिससे उसके शरीरकी मेहनत तो हो जाया करे परन्तु उनकी अधिक लत न पड़ने पाय, तो ये खेल उसके लिए बहुत लाभकारी हैं। परन्तु मनुष्य यदि इन खेलोंको इतना अधिक खेलने लगे कि जिससे उसके जरूरी कामोंमें विघ्न पड़ने लगें तो ये वर्जिशके खेल भी हानिकारक और त्याज्य हो जाते हैं। रहे वे खेल जिनमें हार-जीत तो होती है परन्तु शरीरको कुछ भी मेहनत नहीं करनी पड़ती—जैसे कि सतरंज, गंजफा, ताश, चौपड़ आदि। सो ये खेल कार्य्यकारी तो कुछ भी नहीं होते, केवल दिल बहलानेके लिए खेले जाते हैं। यदि मनुष्य इनके बजाय अपने खाली समयको नई नई पुस्तकें पढ़ने, नई नई बातें सीखने या नई नई कारीगरीके काम करनेमें लगावे तो उसे अनेक प्रकारके हुनर आ जायँ और उसकी विशेष उन्नति हो जाय। इन कामोंके द्वारा

उसे समय वितानेकी चिन्ता न करना पड़े और कामके साथ साथ उसका दिल-बहलाव भी हो जाया करे। हिन्दुस्तानको तो खास तौरपर इन बातोंकी जरूरत है। क्योंकि यहाँ कारीगरीकी बहुत कमी है और समय भी खूब मिलता है। यदि कभी कभी इन खेलोंके द्वारा अपना दिल बहला लिया जाय तो हर्ज नहीं है; किन्तु इस बातका भय अपने हृदयमें अवश्य रखना चाहिए कि वारवार खेल-नेसे इनकी आदत न पड़ने पावे। क्योंकि आदत पड़ जानेपर उसका पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है और जरूरी कामोंमें बाधा पहुंचने लगती है। यहाँपर एक बड़ीभारी कठिनाई तो यह है कि यहाँके अध्यात्मवादी कारीगरीके कामोंको अत्यन्त नीच समझते हैं, इस लिए वे कारीगरीके कामों द्वारा अपना दिलबहलाव कैसे कर सकते हैं? वे तो ज्ञान-चौसर बिछाते हैं या स्वर्गमोक्षकी बाजी लगाते हैं और इसीतरह अपना सारा समय बिताया करते हैं। यही नही, वे अपने धनको जड़ पदार्थ मानकर कारीगरी करनेवाले देशोंमें पहुंचाते जाते हैं और आप दिनपर दिन अकिञ्चन तथा अपरिग्रही बनकर आनन्दके तार बजाते और जड़वादियोंकी निन्दा करके फूले अंग नहीं समाते हैं।

हार-जीतवाले खेलोंमें वे खेल सबसे बुरे हैं जिनमें जबानी हार-जीत काफी नहीं समझी जाती है, बल्कि हार-जीत होने पर कुछ लिया दिया भी जाता है। ऐसे खेलोंमें मान कषायके साथ साथ लोभ-वृत्ति भी भड़कती है और इसी लिए उनकी आदत भी शीघ्र पड़ जाती है। यह आदत कुछ दृढ़ हो जानेपर फिर टाले नहीं टलती है और दिनपर दिन अधिकाधिक प्रबल होती जाती है। ऐसे ही खेलोंको जुआ कहते हैं। जुआ खेलनेवाले बहुत नीच प्रकृतिके हो जाते हैं और सब तरहके बुरे काम करने लगते हैं, क्योंकि इन खेलोंकी हार-जीतसे कषाय बहुत भड़कता है और उसे एक बार

फिर खेलनेके लिए विवश करता है। कहनेका मतलब यह है कि यह उत्तेजन उसे बावला बना देती है। जब जुआ खेलनेके लिए पासमें द्रव्य नहीं रहता है तब उसकी चाट उसे अनुचित रीतिसे द्रव्य लानेको उसकाती है और जीतमें तो बिना मेहनत किये ही हरामका माल मिल जानेके कारण उसका चित्त उसे बुरे बुरे कामोंकी ओर झुकाता है और उसे नीचातिनीच बना देता है। इस कारण जिस खेलकी हार-जीतमें एक फूटी कौड़ी भी देना पड़ती हो उसे कभी भूलकर भी नहीं खेलना चाहिए। यही कारण है कि सरकारने भी जुएके खेलको अपराध ठहराया है और उसके खेलनेवालेको दण्ड दिया जाता है। परन्तु इसमें भी यह कठिनाई पड़ गई है कि भारतवर्षके अध्यात्मवादी दीवाली आदि त्यौहारोंमें अन्य व्रत उपवासोंके साथ साथ जुएका खेलना भी महा धार्मिक और अत्यावश्यकीय कार्य्य समझते हैं, और इसी लिए वे कानूनकी कुछ भी परवा न करके खूब जुआ खेलते और मोक्ष जानेकी अपनी मंजिलको आसान बनाते हैं। इस परम पावन भारतवर्षके आत्मज्ञानी साधु-संत भी अपने ज्ञानचक्षुके द्वारा सट्टे आदिके अंक बतलाते और इस प्रकार धर्मात्मा गृहस्थोंको जुआ खेलनेमें अनेक सुविधायें पहुँचाते हैं। वे उद्योग धंदेके द्वारा पैसा कमाना जड़वादियोंका कार्य्य बतलाकर उनकी खूब हँसी उड़ाते हैं, साथ ही हिन्दुस्तानियोंको बिलकुल बेकार, महादरिद्री और एक जरासी सुई तकके लिए दूसरोंका गुलाम बनाकर अध्यात्मरस चखानेमें जरा भी नहीं शरमाते हैं।

कठोर हृदयवाले मनुष्योंके लिए शिकार भी ऐसा दिलचस्प [illegible] मनोरंजन है कि जिसकी बहुत शीघ्र लत पड़ जाती है और बहुतसे शौकीन बंदूकको कंधेपर रखकर और बाज़ शकरा आदि बलवान् हिंसक पक्षियों तथा शिकारी कुत्तोंको साथ लेकर जंगलोंमें मारे

फिरते हैं, भूख-प्यास, सर्दी-गरमी सब कुछ सहते हैं, सैकड़ों रुपया खर्च करते हैं और जब दो एक हरिण या दस बीस चिड़ियाँ मार लाते हैं तब बहुत ही खुशी मनाते हैं। उनकी खुशीका कारण यह है कि जब जानवर अपनी जान बचानेके लिए उनके आगेसे भागता है और वे उसका पीछा करके उसे जा दबाते हैं तब वे इसको अपनी भारी विजय समझते हैं। इसके सिवा शिकारीकी गोली लगनेसे जब जानवर तिलमिलाता है, उछल-कूद करता है, भागना चाहता है परन्तु उससे भागा नहीं जाता है, तब वह शिकारी अपनी बहुत भारी फतह मानता है और अपनी शिकारको तड़फते देखकर फूले अंग नहीं समाता है। परन्तु यह दिलबहलाव या मनोरंजन मनुष्यके हृदयको बहुत कठोर बना देता है जिससे उसकी सुख-शान्तिमें बहुत फर्क पड़ जाता है।

जो मनुष्य हैं उनके लिए तो यही उचित है कि वे अपने हृदयको कठोर न बनने दें और सब जीवोंके साथ प्रेमभाव रखकर अपने मनकी सुख-शान्तिको बढ़ावें। क्यों कि ऐसा करनेसे ही परस्पर प्रेम और सहानुभूति बढ़ती है और सर्वत्र आनन्द मंगल फैलता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस समय मनुष्योंका पहले जैसा क्रूर स्वभाव नहीं रहा है। लड़ाईमें हाथ आये हुए शत्रु न तो अब भून भूनकर खाये जाते हैं, न युद्धमें पकड़े हुए या जीते हुए स्त्री-पुरुष गुलाम बनाये जाते हैं और न वे पशुओंकी तरह बाजारोंमें ही बेचे जाते हैं; बल्कि उनके साथ अब दयाका बर्ताव किया जाता है और उनसे किसी प्रकारका अमानुषिक कार्य नहीं लिया जाता है। पहलेके समान अब हाथीके पैरतले दबाकर, किसी ऊँचे मकान या पर्वतसे पटककर, कुत्तोंसे नुचवाकर, कोल्हूमें पेलकर, आरेसे चीरकर, तेलके खौलते हुए कढ़ाहेमें डालकर,

सारे बदनमें सुइयाँ चुभोकर; मिमयाई* बनाकर, जीतेजी खाल खिचवाकर, आँखें निकलवाकर या दीवाल आदिमें चुनवाकर अपराधियोंके प्राण नहीं लिए जाते हैं और न किसी एकके अपराध परसे उसके समस्त कुटुम्ब और बालबच्चोंको ही सजा दी जाती है। शूलीकी सजा भी बंद हो गई है और उसके बजाय फाँसीकी सजा जारी की गई है कि जिसमें दो तीन मिनटमें ही जान निकल जाती है। अब पहलेके समान छोटे छोटे अपराधोंपर न तो फाँसी ही दी जाती है और न हाथ पैर ही कटाये जाते हैं, बल्कि अब जहाँ तक हो सकता है ऐसी कोशिश की जाती है कि जिससे अपराधी थोड़ी सजामें समझ जाय और फिर वह अपराध न करे। इसी लिए आजकल जैलखानोंमें पहलेके समान बेपरवाही और सख्ती नहीं की जाती है, बल्कि कैदियोंकी तनदुरुस्ती और सुविधाओंकी ओर पूरा पूरा खयाल रक्खा जाता है। आजकल किसीको दोषी या निर्दोषी जाननेके लिए उससे धधकती हुई आग या खौलते हुए तेलमें कूद पड़ने या हाथ डालनेके लिए नहीं कहा जाता है। इसी प्रकार अन्य कोई भयंकर अप्राकृतिक परीक्षा भी नहीं की जाती है। अब तो जहाँतक बनता है बिलकुल साधारण रीतिसे अपराधोंके जाँचनेकी चेष्टा की जाती है और इस कामको सम्पन्न करनेके लिए संदिग्धको किसी प्रकारकी तकलीफ या धमकी नहीं दी जाती है।

इसी प्रकार अब इस देशके उच्च जातिके लोग पहलेके समान अपनी कन्याओंको गला घोंटकर नहीं मारते हैं और न विधवा

---

* प्राचीन समयमें अच्छे मोटे ताजे जीवित मनुष्योंको खौलते हुए तेलके कढ़ाहेके ऊपर इस तरह औंधा लटका देते थे कि जिससे किये हुए नस्तरके घावसे एक एक बूंद खूनकी उस कढ़ाहेमें टपकती रहे। इस प्रकार उसके समस्त शरीरका खून टपक कर तेलमें पकनेसे जो वस्तु तैयार होती थी वह 'मिमयाई' कहलाती थी और घाव वगैरह भरनेके काम आती थी।

स्त्रियोंको मृतक पतिके शवके साथ ही जलाते हैं। इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि अब पहलेके समान सुन्दरी स्त्रियों और कन्याओंके छीननेके लिए भारतीय वीरोंके लश्कर नहीं चढ़ते हैं और न अब ऐसी बातोंके लिए हजारों लाखों योद्धाओंके सिर कटाये जाते हैं। प्राचीन समयमें स्वयंवर जैसी पवित्र रीतिसे वर-निर्व्वाचन करनेमें भी तलवारें चलती थीं और जिसके गलेमें कन्या जयमाला पहिनाती थी उसके साथ लड़नेके लिए सब लोग तैयार हो जाते थे। कहनेका मतलब यह है कि पहले बात बात पर खून खराबी होती थी और यही मनुष्यका धर्म्म समझा जाता था।

परन्तु अब मनुष्योंने बहुत कुछ सभ्यता प्राप्त कर ली है, इस लिए अब ऐसी बातोंके लिए लड़ना या युद्ध करना बड़ी शरमकी बात समझी जाती है। इस प्रकार मनुष्यजातिमें बहुत कुछ शान्ति बढ़ती जाती है, तथापि अभी तक मनुष्योंने पूर्णरूपसे मनुष्यत्वको ग्रहण नहीं किया है और न कठोरता तथा निर्दयताको ही पूर्णरूपसे त्यागा है। यही कारण है कि अब भी बहुतसी बातोंमें पहलेकी तरह युद्ध होते हैं और नर-संहारको शीघ्रता तथा दक्षताके साथ करनेके लिए बड़े बड़े भयानक यंत्र निकाले जाते हैं। इस लिए यह संसार अभी तक बहुत दुःखमय बना हुआ है और उसमें पारस्परिक सहानुभूति तथा विश्वबन्धुत्वका प्रचार नहीं हो सका है। इसके विपरीत अभी मनुष्य मनुष्यका शत्रु बनकर खूब उत्पात मचाता है और इसके परिणामसे अनेक प्रकारकी अशान्ति और दुःखोंकी उत्पत्ति होती है।

मनुष्य इसी सहृदयताके अभावके कारण मेंढ़े, मुर्गे, तीतुर, बटेर आदि अनेक पशु-पक्षियोंको आपसमें लड़ाता है और ज्यों ज्यों वे पशु-पक्षी लड़ लड़ कर और नोंच नोंचकर एक दूसरेको घायल करते हैं त्यों त्यों वह खुश होता है। यह सच है कि पहले जमानेमें मनुष्य भी इसी तरह लड़ाये जाते थे और एक दूसरेको घायल करते देख-

कर दर्शकगण बहुत खुश होते थे। उन दोनोंमेंसे जब तक एक मर नहीं जाता था तब तक वे हटने नहीं दिये जाते थे। यद्यपि अब ऐसी कठोरता नहीं की जाती है और न वह राजनियमानुसार ही विधिसंगत समझी जाती है, तो भी मनुष्यमें अब भी इतनी कठोरता अवश्य बाकी है कि वह मनुष्योंका आपसमें वैर करा कर खुश होता है और भाई-भाईमें, बाप-बेटेमें तथा पति-पत्नीमें लड़ाई करा देता है और ज्यों ज्यों लड़ाईकी आग भड़कती है त्यों त्यों वह आनन्द मनाता है। इसी प्रकार अब मोक्ष या स्वर्गप्राप्तिके लिए नदीमें डूब मरने, हिमालयमें जाकर गलने या करौंतसे कटकर मरजानेका उपदेश नहीं दिया जाता है और न देवताओंकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिए नरबलि ही चढाई जाती है, परन्तु देवताओंके नाम पर पशुओंको मारना अभी तक जारी है। आजकल आत्मघात करना पाप समझा जाने लगा है, तो भी महीनों तक भूखे रहना, गरमीके दिनोंमें आग तपना या धूपमें बैठना, जाड़ेमें पानीमें डूबे रहना, औंधा लटकना, निरंतर खड़े रहना, कांटोंपर सोना, समाधि-ले लेना आदि अनेक घोर शारीरिक कष्ट मोक्षप्राप्तिके साधन माने जाते हैं और इन काय-कष्टोंको सहन करनेवाले व्यक्ति खूब ही पूजे जाते हैं।

मनुष्योंका यह कठोर व्यवहार और घोर दुःख तभी दूर हो सकता है जब वे अपने हृदयको नरम बनानेकी कोशिश करें, और उनका हृदय नरम तभी हो सकता है जब वे पशुपक्षियोंसे भी प्रेमका व्यवहार करना सीखें, अर्थात् शिकार आदि निर्दयता-पूर्ण कामोंको छोड़ कर समताका वर्ताव करें।

मनुष्योंको इन्द्रियोंके विषय-भोगकी भी आदत पड़ जाती है जो कि पीछेसे बहुत दुःखदायक प्रतीत होती है। इस लिए मनुष्योंको अपनी इन्द्रियोंकी देखरेख रखनी चाहिए और किसी बातकी आदत

न पड़ने देना चाहिए, बल्कि हर समय अपनी विवेकबुद्धिसे काम लेकर सदैव स्वाधीनतापूर्वक कार्य्य करना चाहिए। इन्द्रियोंके विषय-भोगकी आदतोंमें जीभके चटोरपन और काम सेवनकी आदत बहुत जल्द पड़ जाती है और बहुत कुछ उलटे-पुलटे नाच नचाने लगती है। इस लिए इन दोनों बातोंसे बहुत सावधान रहना चाहिए, अर्थात् इनको कभी सीमाके बाहर न बढ़ने देना चाहिए। चटोरपनकी आदतमें भोजनमें मिरच मसाले आदि डालकर चटपटा बनानेकी आदत भी ऐसी है जो नशेकी तरह दिन पर दिन बढ़ती ही जाती है। यदि किसी समय खानेमें मिरच मसाले न हों तो वह खाना ही नहीं खाया जाता है। मिरच स्वास्थके लिए बहुत हानिकारक है, इस लिए मिरचको कदापि नहीं खाना चाहिए और यदि वह कभी खाई भी जाय तो उसकी आदत हर्गिज न पड़ने देना चाहिए। जिन लोगोंको एकबार भी मांस खानेका मौका मिल जाता है उनकी जीभको इसका बड़ा चसका लग जाता है और फिर उनके लिए इसका पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है। मांस खाना मनुष्यको किसी भी तरह शोभा नहीं देता है। क्योंकि इस मांसको सौम्य हृदयवाले पशुपक्षी भी तो नहीं खाते हैं। इसे शेर भेड़िया आदि वे ही जीव खाते हैं जो महान् क्रूर, निर्दय और हिंस्र स्वभावके होते हैं। ऐसी दशामें यदि मनुष्य मांस खाता है तो यही समझना चाहिए कि वह भी उन्हीं जैसा क्रूर, निर्दय और हिंस्र है। इसमें संदेह नहीं है कि एक समय ऐसा था जब आफ्रिका आदि देशोंके मनुष्य मनुष्यतकको मारकर खा जाते थे और इस पवित्र भारतदेशमें भी नरभक्षक मनुष्य निवास करते थे–जिन्हें राक्षस कहते थे। परन्तु अब सभी देशोंके मनुष्योंने सभ्यतामें इतनी उन्नति कर ली है कि वे नरमांसको खाना अपने मनुष्यत्वके विरुद्ध समझते हैं। परन्तु मनुष्यकी उन्नतिमें अब तक यह कसर बनी हुई है कि वह पशु-

पक्षियोंका मांस खाता है। जब उसके हृदयसे यह कठोरता भी निकल जायगी तभी कहा जा सकेगा कि उसने पूर्ण मनुष्यत्व प्राप्त कर लिया है। ऐसी अवस्थामें ही पूर्णशान्ति स्थापित हो सकेगी और मनुष्य मनुष्यमात्रका बन्धु बनकर सर्वत्र आनन्द फैला सकेगा। यह सच है कि इस समय भी अनेक लोग मांस नहीं खाते हैं और यूरोप आदि देशोंमें भी मांसका खाना कम होता जाता है। मांस खानेसे अनेक प्रकारके रोगोंकी उत्पति होती है और इसी लिए मांसाहारी लोग भी अब उसके दुर्गुणोंसे परिचित होकर उसे त्यागने लगे हैं। परन्तु इस परमपवित्र भारतदेशमें जहाँ देवताओंके लिए मांसका चढ़ाया जाना जरूरी बतलाया जाता है और जहाँ श्राद्ध जीमनेवाले ब्राह्मणोंके लिए इसका खाना लाज़िमी कहा जाता है, वहाँ इसका छूटना बहुत मुश्किल है। अतएव यहाँ पर मांसाहार छुड़ानेके लिए बहुत भारी प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है। परन्तु यह प्रयत्न तभी कार्यकारी हो सकता है जब लोगोंके हृदयसे धार्मिक पक्षपात हट जाय और वास्तविक विचारप्रणाली प्रतिष्ठित हो।

७—काम-वासना।

इन्द्रियोंके विषयभोगोंमें सबसे प्रबल और अधिक उद्धत कामवासना ही है कि जिसकी इच्छा उत्पन्न होते ही मनुष्य अपनी सारी सुधबुध खोकर उन्मत्त बन जाता है। विशेष कर के कमजोर आदमियों पर इसका खूब जोर चलता है और वह उनको अपने काबूमें करके खूब नाच नचाती है। इसी लिए सभ्य मनुष्योंने यह रीति निकाली है कि कामेन्द्रिय सदैव छिपाकर ही रक्खी जावे और उसका नाम भी न लिया जाय, जिससे हरवक्त उसकी याद आकर मनमें भड़क पैदा न हो। विवाहकी प्रथा भी मनुष्योंमें इसी गरजसे जारी की गई है कि अपनी काम-वासना पूर्ण करनेके लिए एक पुरुषके लिए एक स्त्री, और एक स्त्रीके लिए एक पुरुष मुकर्रर हो जाय और एक ही स्त्रीपर अनेक पुरुषोंका झगड़ा होकर खून-खराबा न होने पावे। एक समय था जब विवाह-प्रथा जारी रहने पर भी—इस विषयमें बहुत झगड़े हुआ करते थे और महा अशान्ति छाई रहती थी,

उस समय यह भारतवर्ष हजारों छोटे छोटे राज्योंमें बँटा हुआ था। प्रत्येक राजा हजारों स्त्रियोंके साथ विवाह करता था और अपनी सारी उम्र स्त्रियोंके व्याहनेमें ही गँवाता था। जहाँ कहीं सुन्दरी स्त्रीका नाम सुन पाता था वहीं पर अपनी सारी सेना लेकर चढ़ाई कर देता था और हजारों मनुष्योंके सिर कटवा कर—खूनकी नदियाँ बहाकर जिस तरह हो सकता था उसे लेकर ही आता था। इसी कारण उस समय राजालोग प्रायः ऐसी ही लड़ाइयाँ लड़ते थे और वीर क्षत्रिय भी इसीमें अपनी बहादुरी समझते थे। चाहे कितने ही आदमी घास-फूसकी तरह क्यों न कट जायँ परन्तु अपने स्वामीको

नवीन नवीन सुन्दरी स्त्रियाँ लाकर देना ही चाहिए—यही उस समयकी राजभक्त सेनाकी कर्त्तव्यनिष्ठा थी। यही कारण है कि उस समय बड़ी अशान्ति छाई रहती थी और घरमें कन्याका जन्म होना महान् दुर्भाग्य समझा जाता था। क्योंकि जब एक कन्याको दस बलवान् पुरुष माँगते हों और दसों दलबलसहित उसे लेनेके लिए चढ़ आते हों तो ऐसी हालतमें बेचारे कन्यावालेकी कहाँ तक खैर रह सकती है। उसके सिरपर उस समय महान् विपत्ति आ पड़ती थी और उसके दरवाजेपर सैंकड़ों मनुष्योंके सिर कट जाते थे, तब कहीं वह कन्या किसी एकके हाथ लगती थी और उसीके साथ उसका विवाह होता था। उस समय इन झगड़ोंसे बचनेके लिए लोगोंने स्वयंवरकी प्रथा निकाली थी, अर्थात् कन्या जिसे पसंद करे उसीके साथ उसका विवाह हो जाय। परन्तु उस समयके पराक्रमी पुरुषोंने स्वयंवरमें भी दंगा मचाना शुरू कर दिया और किसी एकके गलेमें जयमाला डाल देने पर भी उस स्त्रीको छीन लेनेके लिए जोर जुल्म होने लगा। इस प्रकार स्वयंवरकी पवित्र भूमि रणचण्डीका क्रीड़ा-स्थल बनने लगी और वहाँ हर्ष तथा मांगलिक कृत्योंकी जगह शोक—विषाद, मार—काट तथा लाशोंका भयंकर दृश्य दिखाई देने लगा। जब इस तरह यह स्वयंवरकी रीति भी कामयाब नहीं हुई तब उच्च जातिके लोगोंने लाचार होकर कन्याओंको पैदा होते ही मार डालनेकी रीति चलाई।

उस समयके राजाओंको नित्य नई नई नवयौवना स्त्रियोंके साथ विवाह करते रहने पर भी वेश्यायें रखनेकी आवश्यकता पड़ती थी। बहुत करके पंखा झलने और चँवर ढोरनेके लिए वेश्याएँ ही रक्खी जाती थीं। वेश्याएँ नित्य दरबारमें आँखोंके सामने रहतीं और युद्धमें भी साथ जाती थीं। इनका काम सदैव मनोरंजन करना था। यह छोटे छोटे राजाओंका हाल था, बड़े बड़े महाराजा तो हजारों रानियाँ

रखते थे और इतने पर भी वेश्याओंसे दिल बहलाते थे। क्या यह आश्चर्यकी बात नहीं है कि जिन शूद्रों और म्लेच्छोंकी परछाईं पड़नेसे भारतके धर्मात्मा अपनेको अपवित्र समझते थे उन्हींकी सुन्दरी कन्याओंको खुशीसे अपने घरमें डाल लेते थे और अपने रनवासकी शोभा बढ़ाते थे*। उस धर्मयुगमें विवाहके सिवा व्यभिचारकी भी बहुत प्रवृत्ति बतलाई जाती है। कहा जाता है कि बलवान् राजा अपने अधीन राजाओंकी सुन्दर रानियों और प्रजाकी खूबसूरत स्त्रियोंको छीन मँगाते थे और बेचारी निर्बल प्रजा चूँतक नहीं करने पाती थी। हिन्दूपुराण तो इस व्यभिचारका यहाँतक पता बतलाते हैं कि बड़े बड़े देवता और ऋषि महर्षि भी इस व्यभिचारसे नहीं बचे थे।

जो हो, परन्तु इस कलियुगमें लोगोंने इस विषयमें बहुत कुछ सुधारणा कर ली है। पाश्चात्य देशोंमें छोटेसे छोटे गरीबसे लेकर बड़ेसे बड़े चक्रवर्ती सम्राट् तक एकाधिक स्त्री नहीं रख सकते हैं। इन्हीं जड़वादी पाश्चात्योंके संसर्गसे कहिए अथवा समयके फेरसे कहिए, भारतके बड़े बड़े सेठ साहूकार और जमीनदार लोग भी अब एक ही एक स्त्रीपर संतोष करने लगे हैं और जो एकाधिक स्त्रियाँ विवाहते हैं वे निन्दाके पात्र बनते हैं। यद्यपि भारतके राजा महाराजा प्राचीन धर्मयुगकी देखादेखी अब भी कई कई विवाह करते हैं और वेश्यायें भी रखते हैं, परन्तु वे पहलेके मुकाबलेमें बहुत थोड़ी होती हैं, और धीरे धीरे उनकी गिनती कम होती जाती है। बल्कि कोई कोई राजा भी अब एकाधिक विवाह करना और वेश्याओंका रखना बुरा समझने लगे हैं। जो राजा महाराजा एकाधिक विवाह करते हैं वे भी पहलेके समान चढ़ाई करके नहीं, किन्तु राजीखुशीसे करते हैं। इस तरह अब काम-

* जैनधर्मके पुराणोंके अनुसार चक्रवर्ती राजाकी रानियोंकी संख्या ९६००० होती थी और उनमें ३२००० म्लेच्छकन्यायें होती थीं।

वासनाकी प्रबलताके कारण पहलेके समान न तो खून-खराबा ही होता है और न अशांति ही फैलती है, परंतु कुछ दूसरे कारणोंसे अब भी लोगोंकी कामतृष्णा दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। इस लिए आज भी सब लोग इसके फंदेमे वैसे ही फँसे हुए हैं जैसे कि पहले फँसे थे और अधिक विषय-भोग, वेश्यागमन, परस्त्री-सेवन, हस्तमैथुन, बच्चेबाज़ी आदि अनेक बुरी लतोंके द्वारा अपनेको बरवाद कर रहे हैं। भारतवर्षके लोग जब तक इन बुरी लतोंको छोड़कर अपने ब्रह्मचर्य्यकी रक्षा नहीं करेंगे, तबतक न तो वे पुरुषार्थी ही बन सकते हैं और न उन्नतिके क्षेत्रमें आगे ही बढ़ सकते हैं। इन बुरी लतोंके कारण वे अपनी विद्याबुद्धि और शारिरिक शक्तिको खोकर दिन पर दिन पतित होते जाते हैं। ऐसी हालतमें सिवा रोने-धोने और दूसरोंकी शिकायत करनेके और वे कर ही क्या सकते हैं ?

कामवासनाकी इन बुरी लतोंसे पीछा छुड़ानेके लिए हमारी समझके अनुसार भारतवासियोंको निम्नलिखित उपाय करने चाहिए। जब तक इस बढ़ती हुई कामवासनाकी लपटको रोकनेका उपाय न किया जायगा—जब तक ब्रह्मचर्य्य और वीर्य्यकी रक्षा न की जायगी तब तक यह भारतवर्ष अन्य उपायोंसे कभी नहीं पनप पायगा।

(१) प्राचीन समयमें कन्याओंके जवान होने पर उनके रूप-लावण्य और यौवनको देखकर बलवान् पुरुष उनकी प्राप्तिके लिए लड़ाई दंगे किया करते थे। इस लिए लोगोंने इन झगड़ोंसे बचनेके लिए बिलकुल छोटी उम्रमें अपनी कन्याओंका विवाह करना शुरू कर दिया। अब यह प्रथा इतनी लोकरूढ़ और दृढ़ हो गई है कि इसके अनुमोदनमें अनेक धार्मिक आज्ञायें तक प्रचलित हो गई हैं। यही कारण है कि यहाँ पर यह प्रथा अब तक चली जा रही है। इस बाल्य-विवाहकी प्रथाके कारण लोगोंका बल-वीर्य्य घट गया है, सब उत्साह और इरादे हवा हो गये हैं, विचारशक्ति मंद पड़ गई है, जीवनशक्ति

नए हो गई है और सब तरहकी उन्नतिका क्रम रुक गया है। छोटी उम्रमें शादी होने और बल-वीर्य्यके घट जानेसे प्रायः सभी स्त्रीपुरुषोंमें प्रदर और प्रेमह आदिकी बीमारियाँ फैल गई हैं। इसी शारीरिक और वीर्यसम्बन्धी निर्बलताके कारण विषयेच्छा बढ़ती जा रही है और वह अनेक निंद्य रीतियोंके द्वारा पूर्ण की जाती है। इन्हीं सब कारणोंसे आजकलकी सन्तान भी अत्यन्त निर्बल और पुरुषार्थहीन उत्पन्न होने लगी है। कहनेका मतलब यह है कि बाल्यविवाह ही इन सब अनर्थोंकी जड़ है–जिसका दूर करना बहुत लाजमी और जरूरी है।

(२) पाश्चात्य देशोंमें व्यभिचारका दोष स्त्री-पुरुष दोनोंको समान रूपसे लगता है और व्यभिचारी पुरुष वैसा ही निंद्य समझा जाता है जैसी कि व्यभिचारिणी स्त्री। इस लिए वहाँ स्त्री भी अपने पतिपर उसी तरह व्यभिचारका दोष लगा सकती है जिस प्रकार पुरुष अपनी स्त्रीपर लगाते हैं। परन्तु इस परम पावन भारतवर्षके ऋषि महर्षियोंने अपने दिव्यज्ञानसे यह एक परम अद्भुत आविष्कार किया है कि पुरुष तो हजारों स्त्रियोंसे विवाह करके, शूद्रों तथा म्लेच्छोंकी कन्याओं ओर स्त्रियोंतकको घरमें डालकर, पराई स्त्रियोंको छीन कर, खुल्लमखुल्ला व्यभिचारी और वेश्यागामी होकर भी दोषी नहीं होता हैं, मोक्षप्राप्तिका पात्र बना रहता है; परन्तु स्त्रियाँ एकके सिवा दूसरा पति नहीं कर सकती हैं। वे अपने ऐसे पतिकी भी भक्त बनी रहनेके लिए बाध्य हैं जो उक्त सब दोषोंसे परिपूर्ण होकर उसका नाम भी न लेता हो और वेश्याओं तथा परस्त्रियोंसे अनुरक्त रहता हो। यही नहीं, उन्हें चाहिए कि वे ऐसे कुकर्मी पतिके मरने पर भी उसके साथ जीतेजी जल मरें या उसके नामपर धूनी रमाकर जन्म भर रँड़ापा काटें। ऐसी सहनशील स्त्रीजाति उक्त महर्षियोंकी दृष्टिसे अत्यन्त पतित और मोक्षको अनधिकारिणी है।

उन्हें इतने पर भी संतोष नहीं हुआ, उन्होंने यहाँतक लिख दिया है कि 'स्त्रीचरित्रम् पुरुषस्य भाग्यम् देवो न जानाति कुतो मनुष्यः' अर्थात् स्त्रीके चरित्र और पुरुषके भाग्यको देवता भी नहीं जान सकते हैं, फिर मनुष्योंकी तो मजाल ही क्या है।

यही कारण है कि आजकल भी इस देशके उच्च जातीय मोक्ष-गामी पुरुष यद्यपि पहलेके समान शूद्र तथा म्लेच्छोंकी स्त्रियोंको अपने घरमें नहीं डालते हैं, परन्तु राह चलती चमारियोंको छेड़कर और उनसे माँ-बहिनोंकी गंदी गालियाँ सुनकर भी उच्च ही बने रहते हैं और नीच जातीय वेश्याओंके साथ खुल्लमखुल्ला व्यभिचार करके भी दोषी नहीं होते हैं। वे अपनी पतिव्रता स्त्रीका सारा गहना उतार उतार कर वेश्याओंको अर्पण कर आते हैं और इतने पर भी त्रिया-चरित्रकी कथायें सुना सुना कर उसके प्रति अपनी घृणा प्रकट करते हैं। इस विषयमें एक तमाशा यह है कि ये पुरुष परमव्यभि-चारिणी स्त्रियों अर्थात् वेश्याओंको बिलकुल दोषी नहीं समझते हैं। वे उन्हें द्रव्यादि देकर अपने मांगलिक कामोंमें बुलाते और छोटे बड़ों, बूढ़े स्यानों, बिरादरीके मुखियाओं, गुरुजनों, धर्मात्माओं और पंडि-तोंको इकट्ठा करके उनके मुंहसे व्यभिचारका उपदेश सुनवाते हैं। व्यभिचारकी अग्निको पूर्णरूपसे प्रज्वलित करनेके लिए इस वैश्या-नृत्यके सिवा और दूसरा कोई उत्तम साधन नहीं है। इसी तरह अनेक मनुष्य व्याह-शादियों, मेलों-ठेलों और तीर्थस्थानोंमें पराई स्त्रियोंको घूरने और उनकी चर्चा करनेमें कुछ भी बुराई नहीं समझते हैं, बल्कि उनको अपने काबूमें लाने और उन्हें व्यभिचारिणी बनानेके लिए तरह तरहके प्रयत्न करते हैं। इस तरह जो स्त्रियाँ उनके काबूमें आ जाती हैं उनकी वे बहुत कदर करते हैं और उनपर आपनी जान-माल निछावर करनेको तैयार हो जाते हैं। हाँ, अपने घरकी स्त्रियोंका बेशक किसीको पल्ला भी नहीं दिखाया चाहते हैं और इसीलिए

उनपर बहुत कड़ा पहरा रखते हैं। उनके इस व्यवहारका यह मतलब निकलता है कि पुरुषजाति व्यभिचारको बिलकुल बुरा तो नहीं समझती है, परन्तु स्वार्थवश वह इतना अवश्य चाहती है कि हमारी स्त्रियाँ हमारे ही काम आवें। अर्थात् वे चोरोंकी तरह चोरीको तो बुरा नहीं समझते हैं, परन्तु यह जरूर चाहते हैं कि हम तो सबका माल चुरावें परन्तु हमारा कोई न चुरावे।

पाठकगण समझ गये होंगे कि इस आपापोखीपनसे कैसी गड़बड़ी मचती है, कैसी अशान्ति फैलती है, व्यभिचारकी कितनी वृद्धि होती है और पारस्परिक बुराई फैलकर मनुष्य जातिके सुप्रबन्धमें कितना धक्का लगता है। अतएव मनुष्यजातिकी सुखशान्ति और उन्नतिके लिए यह जरूरी है कि अपनी एक विवाहिता स्त्रीके सिवा अन्य किसी स्त्रीकी ओर कुदृष्टिसे देखने या उससे अनुचित सम्बन्ध रखने पर पुरुष भी उतना ही दोषी समझा जाय जितनी कि स्त्री समझी जाती है और वेश्यानृत्य करानेमें पुरुषजातिपर उतना ही लांछन लगाया जाय जितना कि उस स्त्रीपर लगाया जा सकता है जो स्त्रियोंकी सभा जोड़कर उसमें किसी महाव्यभिचारी पुरुषको नचावे और उससे व्यभिचारके गीत गवाकर आनंद मनावे।[1]

(३) एक पुरुषकी अनेक स्त्रियाँ होनेसे वह न तो सब पर सच्ची प्रीति ही रख सकता है और न सबको अपना हृदय ही दे सकता है। क्योंकि अगर वह ऐसा करना भी चाहे तो एक दिलके टुकड़े नहीं किये जा सकते हैं। वास्तवमें वह अपनी पाशविक लालसाको पूर्ण करनेके लिए बाहरसे तो सब पर बनावटी प्रीति दिखलाता है परन्तु सच्ची प्रीति एक पर भी नहीं रखता है। इसी तरह उसकी स्त्रियाँ भी उसपर बाह्य प्रेम रखती हैं। चाहे वे लोकलज्जाके कारण उसके मरनेपर उसकी लाशके साथ सती भले ही हो जायँ, परन्तु उस पर उनकी सच्ची प्रीति होना एक तरहसे असंभव ही

है। इसी लिए यह पुरानी कहावत प्रसिद्ध है कि ' त्रियाचरित जाने नहिं कोई, खसम मारकर सत्ती होई।' इसके सिवा एक पुरुष अनेक स्त्रियोंकी कामतृष्णाको पूर्ण भी नहीं कर सकता है। इसी लिए प्राचीन समयमें जब एक एक पुरुष सैकड़ों-हजारों स्त्रियाँ रखता था, तब उन स्त्रियोंको अनेक कुकर्म करने पड़ते थे और अनेक मायाचार रचने पड़ते थे। ऐसी हालतमें नौकर चाकर, ऊँच नीच जो कोई मिल जाता था उन्हींके द्वारा वे अपनी कामाग्नि शान्त किया करती थीं। यही कारण है कि उस समयके लेखकोंने स्त्रीजतिको यहाँतक बदनाम किया है कि व्यभिचार, मायाचार और नीच पुरुषोंसे स्नेह करना उनका स्वाभाविक धर्म ठहरा दिया है।

इन सब बातोंके अतिरिक्त एक पुरुषकी अनेक स्त्रियाँ होनेसे उनमें कलह और मनमुटाव भी बहुत ज्यादह रहता है और उनकी सौतेली संतान तो प्रायः लड़लड़कर ही मरती है। इसलिए एक पुरुषको अनेक स्त्रियाँ होना अनुचित है। जिस प्रकार स्त्रीको एक पतिके सिवा स्वप्नमें भी दूसरे पुरुषको खयालमें लानेका अधिकार नहीं है, उसी प्रकार पुरुषको भी एक स्त्रीके सिवा दूसरी स्त्रीका खयाल दिलमें लानेका अधिकार न होना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मनुष्योंने इस विषयमें पहलेकी अपेक्षा बहुत उन्नति कर ली है और अब बहुधा एक एक स्त्री रखना ही पसंद किया जाने लगा है; परन्तु अब भी इतनी कसर अवश्य बाकी है कि जिस प्रकार एक स्त्री दो पति रखनेका खयाल करनेसे ही महान् पापिनी समझी जाती है उसी प्रकार पुरुष दोषी नहीं समझा जाता है। यही कारण है कि आजकल भी अनेक पुरुष एकाधिक स्त्रियोंसे विवाह कर लेते हैं और इस प्रकार वे एकपत्नीव्रतको भंग करते हैं। अतएव स्त्रियोंके समान पुरुषोंके लिए भी ऐसा ही कड़ा नियम बनानेकी आवश्यकता है, जिससे वे एकाधिक स्त्री न रख सकें और एकपत्नी-

व्रतको निबाहें। इसीसे दाम्पत्यप्रेमकी उन्नति हो सकती है और सामाजिक शान्ति बढ़ सकती है।

(४) भारतवर्षकी उच्च जातियोंने अपनी जबरदस्तीसे यह उल्टी और एकपक्षी रीति जारी कर रक्खी है कि पुरुष चाहे सैकड़ों विवाह कर ले, एक अथवा अधिक स्त्रियोंके मौजूद रहने पर भी नित्य नई नई स्त्रियोंको ला लाकर घर भरे, परन्तु स्त्री अपने पतिके मर जानेपर भी दूसरा पति न करने पावे। इसका भयंकर परिणाम यह हुआ है कि देशमें लाखों-करोड़ों विधवायें हो गई हैं, जिनमेंसे अधिकांश ऐसी हैं कि वे पूर्णरूपसे अपने ब्रह्मचर्य्यका पालन नहीं कर सकती हैं। इस लिए वे स्वयं व्यभिचारिणी बनती हैं और पुरुषोंको व्यभिचारी बनाती हैं। इस तरह व्यभिचारकी खूब वृद्धि होती है। विधवाओंकी देखादेखी सधवायें भी व्यभिचारिणी बन जाती हैं और अनेक अनर्थोंका कारण बनती हैं। इसके सिवा जब इन विधवाओंके गर्भ रह जाते हैं तब वे लोक-लाजके कारण गर्भपात करके भ्रूणहत्या जैसे भयंकर पाप करती हैं। ऐसे-ऐसे दुष्कृत्य करनेसे उनका हृदय महान् कठोर बन जाता है जिससे वे और भी ऐसे अनेक दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाती हैं। किसी विधवाके गर्भ रह जाने पर उसके घरके सब आदमी इस बदनामीसे बचनेके लिए गर्भ गिरानेमें उसे सहायता पहुँचाते हैं। अतः जिस विधवाको एक बार गर्भ गिरानेका अवसर मिल जाता है या जिसकी एक बार कुछ बदनामी फैल जाती है वह खुल्लमखुल्ला व्यभिचारिणी बन जाती है। उसकी देखादेखी घरकी अन्य स्त्रियाँ भी ऐसा साहस करने लगती हैं और कुमार्गकी ओर कदम बढ़ाती हैं। ऐसा होनेसे घरका सब प्रबन्ध बिगड़ जाता है और खराबी होने लगती है।

विधवाओंका दूसरा विवाह न होनेके कारण एक और बड़ी खराबी होती है। संसारमें स्त्रीपुरुष प्रायः समान संख्यामें उत्पन्न

हुआ करते हैं, अर्थात् कुंवारी लड़कियाँ भी उतनी ही होती हैं जितने कि कुंवारे लड़के। अगर ये सब कंवारी-कन्यायें कुंवारे लड़कोंको व्याह दी जायँ तो रँडुए खाली रह जाते हैं और वे विधवाओंको व्यभिचारिणी बनानेके लिए बड़ी बड़ी कोशिशें करते हैं। यदि कोई विधवा हाथ नहीं आती है तो वे सधवाओंको ही बहकाते हैं और इस प्रकार अनेक प्रकारके उत्पात मचाते हैं। यदि वे कुंवारी कन्यायें इन रँडुओंको व्याह दी जाती हैं तो उतने ही कुंवारे लड़के सदाके लिए विना व्याहे रह जाते हैं और वे भी जवान होकर इसी प्रकार खराबी करते हैं। रँडुओंका विवाह हो जानेकी हालतमें एक खराबी यह होती है कि रँडुए तो बड़ी उम्रके होते हैं और उनके साथ व्याही जानेवाली कुंवारी कन्यायें बहुत छोटी उम्रकी होती हैं, इस कारण उनका जोड़ा ठीक नहीं मिलता है और ऐसे अनमेल विवाहसे सुफल फलनेकी आशा बहुत कम रहती है। बुड्ढोंकी नव-विवाहिता स्त्रियाँ उनकी पोतियोंके बराबर होती हैं। भला ऐसे पितृतुल्य पतिराज पर उनकी प्रीति कैसे हो सकती है और किस प्रकार वे अपने धर्मको निभा सकती हैं। मतलब यह है कि विधवाओंका विवाह न होनेसे बहुत अव्यवस्था हो गई है, मनुष्य-जातिके सुख-शांतिके अनेक नियम टूट गये हैं और इस प्रकार अशान्तिका विस्तार होकर सारा कारबार तितर-वितर हो गया है।

इन सब बुराइयोंको दूर करने और व्यभिचारको रोकनेके लिए विधवा-विवाहका जारी होना बहुत जरूरी है। ऐसा होनेसे रँडुए और कुंवारे सभी अपनी अपनी योग्यताकी विधवाओंसे विवाह कर सकेंगे—कोई अनव्याहा न रहने पावेगा और सब स्त्रीपुरुष अपनी अपनी राह चलकर संसारकी सुखशांति बढ़ावेंगे। यदि किसी धार्मिक आज्ञाके कारण ये सब बुराइयाँ सहना ही मंजूर हों तो वही धार्मिक आज्ञा पुरुषों पर भी चलानी चाहिए, अर्थात् स्त्रियोंकी तरह उनका भी

दुबारा विवाह होना पापजनक ठहराकर बंद कर देना चाहिए। इससे कमसे कम इतना फायदा तो अवश्य होगा कि कुंवारी कन्यायें रँडुओंको न ब्याही जाकर कुंवारोंको ही ब्याही जाया करेंगी, बूढ़े बाबा भी अपनी पोतियोंके समान छोटी छोटी छोकरियोंको ब्याह कर उच्च जातिके मुंहमें कालिमा न पोत सकेंगे और न विवाहके दूसरे दिन ही बुड्ढे बाबाकी अर्थी निकल कर उसकी नई दुलहिन सदाके लिए विधवा ही बना करेगी।

८—पारस्परिक सहायता।

पहले कई अध्यायोंमें हम यह बतला चुके हैं कि मनुष्यका जीवन-निर्वाह परस्परके व्यवहारसे ही होता है और जितनी उत्तम रीतिसे यह पारस्परिक व्यवहार चलाया जाता है उतना ही मनुष्यका जीवन सुखमय बनता है। अब हम यह दिखलाना चाहते हैं कि यह व्यवहार किस तरह किया जाना चाहिए कि जिससे हमारा जीवन सुखमय हो जावे। इसमें सबसे पहली बात समझनेके योग्य यह है कि परस्परका व्यवहार तो साधारण रीतिसे ऐसा ही होता है कि जो कुछ हम किसीको दें उसका पूरा बदला ले लें। जैसे कि एक पैसा देकर एक पैसे मूल्यकी चीज़ ले लेना, या किसीका एक पैसेका काम करके उससे एक पैसा नकद ले लेना, अथवा जितना किसीका काम किया जाय उतना ही उससे करा लेना। परन्तु मनुष्यका जीवन-निर्वाह केवल ऐसी ही तौल-जोखकी अदला-बदलीसे नहीं चल सकता है, वरन् उसको बहुतसी बातोंमें अपना परस्परका व्यवहार ऐसा रखना पड़ता है कि जिसमें पूरे बावन तोले पाव रत्तीके बदलेका ख्याल हर्गिज़ नहीं हो सकता है, बल्कि उसे केवल यही ख्याल रखना पड़ता है कि जब जब जरूरत पड़े तब तब वह उसके काम आ जाय। जैसे कि जब एक घरमें इकट्ठे रहनेवाले पति-पत्नी या दो भाइयोंमेंसे एक बीमार हो जाता है तब दूसरा उसकी दवा-दारू और सेवा-शुश्रूषा करता है और ऐसी परस्परकी सहायतासे उस कुटुम्बका जीवन-निर्वाह होता है। इस प्रकारकी पारस्परिक सहायतामें पूरे पूरे बदलेकी बात कभी नहीं निभ सकती है। क्यों कि अगर घरके चार आदमियोंमेंसे सबसे पहले एक आदमी बीमार हो जाय और उस समय घरके तीनों आदमी यह सोचने लगें कि हमको तो कभी

बीमार पड़कर इससे सेवा-शुश्रूषा करानेकी जरूरत नहीं पड़ी है, फिर हमीं क्यों इसकी सेवा-शुश्रूषा करें, तो ऐसी स्थितिमें बेचारे उस बीमार पर बुरी बीतेगी। इसी प्रकार जब कभी उन तीनोंमेंसे कोई बीमार होगा तो वह भी अलग पड़ा पड़ा दुःख भोगेगा और कोई उसके पास न जायगा। सारांश, इस प्रकार कभी न कभी सबको दुःख उठाना पड़ेगा।

इसके सिवा यदि इन चारोंमेंसे एकको बीमारी बारंबार सताती है और बाकी तीनोंको कभी कभी इत्तफाकसे ही हुआ करती है तो पूरा पूरा बदला चुकानेकी सूरतमें तो वे तीनों आदमी उसकी सेवा-शुश्रूषा यदा कदा ही किया करेंगे, बारंबार हर्गिज न करेंगे। यदि किसी कारणसे ये तीनों भी बारंबार बीमार होने लगें तो वह चौथा भी उनकी बारंबार सेवा न करेगा, बल्कि जितनी बार उन्होंने इसकी सेवा की होगी उतनी ही बार यह भी उनकी कर देगा और बाकी समय वे भी यों ही पड़े पड़े सड़ेंगे। इसके सिवा किसीको किसी प्रकारकी बीमारी होती है और किसीको किसी तरहकी। कोई तो एक प्रकारकी सेवा चाहता है और कोई दूसरे प्रकारकी। तब पूरे पूरे बदलेका खयाल रखनेकी हालतमें एक आदमी उसकी वैसी ही सेवा करनेको तैयार होगा जैसी कि उसने उसके द्वारा कराई होगी। परन्तु दूसरेको वैसी ही सेवाकी जरूरत नहीं पड़ती, इस लिए कोई किसीके काम न आ सकेगा और पशुओंकी तरह सबको अलग अलग दुःख उठाना पड़ेगा। अतएव मनुष्योंको अपनी सुख-शांतिके लिए पारस्परिक सहायताका यही नियम चलाना चाहिए और इसीसे उनका जीवन-निर्वाह हो सकता है कि एकके बीमार पड़नेपर घरके सभी आदमी उसकी सेवा-शुश्रूषा करें, उसके काम आवें, और मनमें बदले-बदलेका कुछ भी खयाल न लाकर जरूरतके अनुसार उसकी टहल करें। आपसमें ऐसा उदार व्यवहार करनेसे ही घरके सब

-बदला हुआ करता है, तथापि इसमें बदलेकी तौल-जोख करने और इस बातका खयाल करनेसे काम नहीं चल सकता है कि हमारे घर चोर आने या अन्य आपत्ति पड़ने पर जो जो लोग हमारी रक्षाके लिए आये थे हम भी उन्हीं उन्हींके घर जायँगे । क्योंकि ऐसा करनेसे बदला चुकानेके लिए हमको उम्र भर अपने मकान पर ही रहना पड़ेगा–एक दिनके लिए भी हम बाहर न जा सकेंगे । क्योंकि न मालूम किस दिन उन लोगोंके यहाँ चोर आ जायँगे जो हमारी रक्षा करनेके लिए आये थे और हमको भी उनकी रक्षा करनेके लिए जाना पड़ेगा । इसी प्रकार जिन जिन लोगोंकी रक्षाके लिए हम पहले जा चुके हैं उनको भी हम सदैव घर पर ही रहनेके लिए मजबूर करेंगे और उनको एक दिनके लिए भी बाहर न जाने देंगे, क्योंकि न मालूम किस दिन हमारे यहाँ चोर आ जायँ और बदलेमें उन लोगोंको सहायताके लिए बुलाना पड़े । इसके सिवा हमको सारी उम्र मजबूत और तनदुरुस्त भी रहना पड़ेगा, जिससे हम चोर आनेपर उनकी सहायताके लिए जा सकें जो हमारे यहाँ आये थे । इसी तरह जिनकी सहायताको हम पहले जा चुके हैं उनको भी मजबूर करें कि वे कभी बीमार न पड़ें और सदैव तनदुरुस्त रहें जिससे वे हमारे घर चोर आनेके दिन हमारी सहायताके लिए आ सकें । परन्तु ऐसा होना बिलकुल असम्भव है । अतएव ऐसी पारस्परिक सहायतामें बदलेकी तौल-जोख करना अनुचित है, बल्कि इसमें तो इस उदार नियमसे हो काम लेना उचित होगा कि जब किसी भी व्यक्तिके घर चोर आवें या उस पर ऐसी ही कोई अन्य विपत्ति पड़े तब सभी लोग–जो उस समय मौजूद हों और उसे सहायता दे सकते हों–उसकी रक्षाके लिए दौड़े जावें और कभी इस बातका खयाल अपने मनमें न लावें कि उससे हमको कभी सहायता मिली है या नहीं, या आगे उससे मिलनेकी आशा है या नहीं । इस

उदार भावके अनुसार व्यवहार करनेसे ही सबकी रक्षा होती है और किसीको कुछ भी दिक्कत नहीं उठानी पड़ती है।

बल्कि ऐसा करनेसे उन अबला स्त्रियों, निर्बल बच्चों, बीमारों और अपाहिजोंकी भी रक्षा हो जाती हैं जो दूसरोंकी सहायताके लिए बिलकुल नहीं जा सकते हैं। परन्तु इनकी रक्षा करनेमें भी किसी प्रकारका परोपकार नहीं है, वरन् यह भी एक प्रकारका अदला-बदला ही है। क्योंकि कौन कह सकता है कि मैं सदा बलवान् ही बना रहूँगा और कभी अपाहिज या बीमार न बनूंगा, अथवा असमयमें मरकर अपनी अबला स्त्री और बच्चोंको ऐसी अवस्थामें न छोड़ जाऊँगा जिसमें हर हालतमें दूसरोंकी सहायताका मुहताज बनना पड़ता है। इस लिए अबला स्त्रियों, बच्चों, बीमारों और अपाहिजोंकी सहायता करना भी एक तरहका बदला ही है; क्यों कि ऐसा करनेसे सबको इस बातका पूरा पूरा भरोसा रहता है कि किसी कारणसे या भाग्यवशात् अगर हम भी ऐसी ही स्थितिमें पहुँच जायँ तो उस समय हमारी और हमारे बालबच्चोंकी रक्षा अवश्य हो जायगी। इस लिए जो मनुष्य स्त्रियों, [illegible] रक्षा और सहायता जितनी अच्छी तरहसे करता है, [illegible] उसे उतनी ही अच्छी रीतिसे सहायता मिलनेकी [illegible] है।

सुना जाता है कि एक समय किसी [illegible] था कि इनमेंसे जब कोई मनुष्य [illegible] सब लोग एक एक रुपया और [illegible] गिनतीमें एक लाख थे, इस [illegible] नेके लिए एक लाख रुपया [illegible] जमा हो जाती थी और [illegible] इस प्रकार उस जातिमें [illegible] उनमेंसे किसीके दिलमें [illegible]

रहता था। परन्तु यह पारस्परिक सहायता उसी समय तक चल सकती है जब तक कि बदलेकी पूरी पूरी तौल-जोख न की जावे और न कोई अपनी सहायताको परोपकार बतलाकर अहसान ही करे। क्योंकि ऐसे व्यवहारमें सम्भव है कि किसीको सात पीढ़ीतक भी सहायता न लेनी पड़े और हजारों बार सहायता देनी पड़े, या अनेक बार सहायता लेनी पड़े और बहुत कम बार दूसरोंको सहायता देनेका मौका आवे।

शोक है कि आजकल भारतवर्षमें किसी भी जातिमें इस प्रकारकी सहायता नहीं की जाती है, इसी लिए बड़ी बड़ी धनाढ्य जातियोंके लोग भी कंगाल होकर मुट्ठी मुट्ठीभर अनाजके लिए तरसते दिखाई देते हैं। इस तरह बारी बारीसे प्रायः सबकी संतानोंको कभी न कभी यह दिन देखना पड़ता है और सहायताके बिना धीरे धीरे सभी खाकमें मिलते जाते हैं। सहायता करनेकी यह सुंदर प्रथा मिट जाने-पर भी अब भी कई बातोंमें जातीय सहायताकी कुछ रीतियाँ दिखाई देती हैं। जैसे कि किसीके घर मौत हो जाने पर सब बिरादरीके लोग एकत्रित होकर उसकी अन्त्येष्टि क्रिया करते हैं और इस कार्य्यमें कभी अदले-बदलेका खयाल मनमें नहीं लाते हैं।

इस प्रकारकी सहायताको निःस्वार्थ सेवा कहते हैं और यद्यपि यह सेवा निःस्वार्थ ही नजर आती है और निःस्वार्थ भावसे की भी जाती है, परन्तु वास्तवमें इससे हमारा पूरा पूरा स्वार्थ सधता है। क्योंकि इस सहायताके प्रचलित रहनेके कारण जरूरत पड़नेपर हमको भी बिरादरीके लोगों और पुरा-पड़ौसियोंसे इसी प्रकार सहायता मिल जाया करती है। इसी तरह किसी व्यक्तिके मर जानेपर उसके सम्बन्धी और बिरादरीके लोग उसकी स्त्री तथा बच्चोंको कुछ नकदी भी देते हैं, परन्तु वे इस बातका हिसाब नहीं लगाते हैं कि हमको इससे कितनी बार लेना पड़ा है और कितनी बार देना पड़ा है।

बल्कि उस समय उसे कुछ न कुछ देना ही अपना कर्तव्य समझते हैं और इस प्रकार बारी बारीसे सबको सहायता मिल जाया करती है। यह निःस्वार्थ सहायता सबकी भलाई करती है। परन्तु खेद है कि अब यह सहायता नाममात्रको रह गई है और लोगोंकी मूर्खताने इसकी मिट्टी पलीद कर दी है। क्योंकि इस सहायताका बदला उसे तुरंत ही चुकाना पड़ता है, बल्कि सहायतासे भी दुगुना चौगुना खर्च करके बिरादरीके लोगोंको खूब तरमाल खिलाना पड़ता है और उसे मृतकके शोकके साथ साथ धनका भी शोक मनाना पड़ता है। प्राचीन समयमें इसी प्रकार बिरादरीके लोग विवाहके समय भी सहायता किया करते थे और अदले-बदले अथवा तौल-जोखका कुछ भी विचार नहीं रखते थे। ऐसा करनेसे जरूरतके समय सबको भर पूर सहायता मिल जाया करती थी और इसके लिए किसीको अधिक चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। परन्तु अब इस प्रथामें भी फरक पड़ गया है। इस सहायताको लोगोंने व्यवहार बना लिया है, अर्थात् विवाहके समय जो कुछ सहायता दी जाती है वह व्यवहारके नामसे पुकारी जाती है और बिना सूदकी साहूकारी समझी जाती है। यही नहीं, इस सहायताका बदला चुकानेके लिए उसे तुरंत बिरादरीवालों तथा व्यवहारी लोगोंको बढ़िया बढ़िया खाना खिलाना पड़ता है; जिससे बेचारे विवाहवालेको अपने विवाहके आवश्यक कामोंकी फिकर तो पीछे डाल देनी पड़ती है, परन्तु बिरादरी तथा व्यवहारियोंको खिलाने-पिलानेकी चिन्ता आगे रखनी पड़ती है। यदि इस कार्य्यमें जरा भी कसर रह जाती है तो ये सब लोग मिल कर उस बेचारेका सिर खा जाते हैं और उसकी नाकोंदम कर डालते हैं।

पहले इस पारस्परिक सहायताकी एक और उत्तम प्रथा प्रचलित थी जिसका किञ्चित् आभास इस समय भी गाँववालोंमें पाया जाता है। वह यह कि जो आदमी अपने गाँवमें आता था, या राह

चलता हुआ मुसाफिर ठहर जाता था, वह चाहे पहिचानका हो या गैर पहिचानका, जातिका हो या गैर जातिका, दूरका हो या नजदीकका, गरज यह कि कोई भी हो उसे मकान, चारपाई, खाना आदि सब कुछ दिया जाता था और उसकी सब प्रकारसे सेवा की जाती थी—उसे सब तरहसे आराम पहुँचाया जाता था। इस प्रकारकी सेवा भी यद्यपि निष्काम सेवा थी, परन्तु इसका बदला उनको अवश्य मिल जाता था। क्योंकि जब वे बाहर जाते थे तब उनको भी इसी प्रकारका आराम मिलता था और उन्हें किसीतरहकी दिक्कत नहीं उठानी पड़ती थी। हाँ, यह अवश्य होता था कि ये तो किसी अन्य गाँवमें जाते थे और इनके यहाँ अन्य गाँवके लोग आते थे, अर्थात् सेवा तो इनको किसी गाँववालोंकी करनी पड़ती थी और अपनी सेवा किसी दूसरे गाँववालोंसे करानी पड़ती थी। परंतु इस उदार व्यवहारसे सफर करनेमें सभीको आराम मिलता था और यही उनकी सेवाका बदला था। परंतु अत्यन्त खेदकी बात है कि अब भारतीय मनुष्योंके हृदयसे उनकी कमजोरी और अज्ञानताके कारण मनुष्यमात्रकी सेवाका उदार भाव निकल गया है और अब वे सभी बातोंमें तुरन्त बदला पानेकी आशा करने लगे हैं। इससे मुसाफिरोंको आराम मिलनेका उक्त सहज मार्ग बंद होगया है। इसी प्रकार और भी कई तरहकी सहायताओंके तरीके भी बिगड़ गये हैं कि जिनके कारण कई तरहकी अड़चनें और तकलीफें बढ़ गई हैं।

मनुष्योंको ऐसी बहुतसी चीजोंकी जरूरत पड़ती है जो एक एक दो दो ही सारे गाँवके लिए काफी हो सकती हैं, परंतु जिनको गाँवका प्रत्येक मनुष्य अपने लिये अलग अलग नहीं रख सकता है। इस लिए उनमेंसे किसीको तो गाँवके सब लोग साझी होकर बनवा लिया करते थे और किसी किसीको एक एक आदमी ही बनवा लेता था। इस प्रकार सभी चीजें बन जातीं थीं और सबके काम आती

थीं। जैसे कोई तो गाँववालोंके बैठने और मुसाफिरोंके ठहरनेके लिए मकान बनवा देता था, कोई कुँआ खुदवा देता था, कोई देव-मन्दिर बनवा देता था, कोई गऊओंके गाभिन होनेके लिए साँड़ छोड़ देता था, कोई भैंसोंके लिए भैंसा दे देता था, कोई ढोरोंको पानी पिलानेके वास्ते कच्चे पक्के तालाब बनवाता था, कोई दवा बाँटता था, कोई पाठशाला खुलवाता था, कोई ढोरोंके चरनेके लिए गोचर-भूमि छोड़ देता था, कोई बड़े बड़े शामियाने फर्श और टोकने कढ़ाहे आदि बनवाता था कि जिनकी विवाह बरातों अथवा ज्यो-नारोंमें जरूरत पड़ती है और कोई स्मशानके लिए जमीन दे देता था। गरीब लोग अपने गाँवकी रक्षा करते थे और बीमारी आदि जरू-रतोंके समय रोगियोंकी सेवा—शुश्रूषाके काम आते थे। इस प्रकार यद्यपि सभी लोग सबकी सहायता करते थे परन्तु वे अपने दिलमें कभी बदलेका खयाल नहीं लाते थे और गाँवकी सेवा करना अपना परम कर्तव्य समझते थे।

इन सार्वजनिक हितकी चीजोंको—फिर वे किसीकी बनवाई क्यों न हों—उपयोगमें लानेका अधिकार सब लोगोंको होता था और इसमें किसीपर किसीका अहसान नहीं समझा जाता था। सब गाँववालोंका परस्पर ऐसा व्यवहार होता था जैसा कि एक घरमें इकट्ठे रहनेवाले चार आदमियोंका होता है। उनमें अपनी अपनी योग्यताके अनु-सार कोई कुछ काम करता है और कोई कुछ, और इस प्रकार उनके सब कार्य मिलकर ही घरका प्रबंध बँध जाता है और सबको आराम पहुंचने लगता है। इन घरवालोंमें यह विचार तो अवश्य होता है कि सबने अपनी अपनी योग्यताके अनुसार पूरा पूरा कार्य किया या नहीं, परन्तु यह ख़याल हर्गिज़ नहीं होता है कि किसका कार्य अधिक मोलका हुआ और किसका कमका। और जब ऐसा खयाल आने लगता है तब उनमें फूट पैदा हो जाती है और [illegible]

लोग अपने अपने अपने स्वार्थोंकी ओर खिचकर सम्मिलित प्रबंधका ढाँचा तोड़ बैठते है। ऐसा होनेसे सभी भारी दिक्कतमें फँस जाते हैं और कोई अपना कार्य पूरा नहीं कर पाता है। इसी प्रकार गाँववालोंमें भी जबतक यह बात रहती है कि यदि किसी-के काममें किसी लखपतीने सौ रुपया लगाया हो, हजारपतिने एक ही रुपया दिया हो, सौ रुपयाकी हैसियतवालेने दो आनेका काम बनाया हो, दशपाँच रुपयेकी हैसियतवालेने एक पैसेका काम किया हो, तो यही समझा जावेगा कि सबने अपनी अपनी योग्यताके अनुसार पूरा पूरा काम कर दिया है और उस वस्तुपर सबका समा-नाधिकार है, तब तक उस गाँववाले एक कुटुम्बकी नाईं हिलमिल-कर रहते और परस्परकी पूरी पूरी सहायता पाते हैं, परन्तु जब उनमें बदलेका तौल-जोख होने लगता है तब सब अपनी अपनी तरफसे खिंच जाते हैं और सभीको बड़े बड़े संकटोंका सामना करना पड़ता है।

जिस प्रकार कुटुम्बमें छोटे छोटे बच्चों, बीमारों और उन अपाहि-जोंकी भी पालना की जाती है जिनसे किसी प्रकारके कामकी आशा नहीं की जाती है, उसी प्रकार गाँवके कंगालों और अपाहि-जोंका पालन पोषण करना और उनको किसी प्रकारका दुःख न होने देना भी गाँववालोंका धर्म है। ये अपाहिज लोग अन्य धनवानों तथा बलवानोंके समान समस्त गाँववालोंको प्रिय होते हैं और सब लोग उनकी पूरी पूरी खबर रखते हैं। क्योंकि यदि ऐसा न किया जाय तो मनुष्यजाति बहुत संकटमें फँस जाय। कारण कि जो मनुष्य आज लखपती या बलवान् बने फिरते हैं, कौन कह सकता है कि कल उनकी क्या दशा होगी। बहुत संभव है कि वे भी कल ऐसे ही कंगाल अथवा अपाहिज हो जायँ। यदि इन अपाहिजोंके पालन-पोषणकी प्रथा उठा दी जाय तो उनको अथवा उनकी संता-

९—मनुष्यमात्रकी सहायता करना।

अधिकाधिक सुखकी प्राप्ति और सहज ही अनेक कार्य्य सिद्ध होनेके लिए मनुष्यको ऐसे बहुतसे कामोंकी जरूरत पड़ती है जो एक एक गाँवके लोगों द्वारा भी सम्पन्न नहीं हो सकते हैं, बल्कि जिनके बनानेमें सारे देश भरको अथवा सारे संसारको जुटना पड़ता है। यथा—सड़कें बनवाना, बड़ी बड़ी नदियोंके घाट चिनवाना, पुल बँधवाना,, मार्गोंपर जगह जगह कुंए खुदवाना, पानीकी पौ बिठाना, बड़े बड़े स्कूल, कालेज अथवा विश्वविद्यालय स्थापित कराना, वैद्यक, शिल्पकारी तथा कृषिसम्बन्धी कलाकौशल सिखानेके लिए अनेक प्रकारके स्कूल खुलवाना, देशके नामीनामी विद्वानोंको सहायता देकर और उनके लिए वृत्तियाँ नियत करके उनसे उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिखवाना, उन्हें सब प्रकारका खर्च देकर विदेशोंमें भेजना जिससे वे अन्य देशोंके कला-कौशल सीख आवें और उनका अपने देशमें प्रचार करें, उनसे तरह तरहके आविष्कार कराना, मनुष्यों और पशुओंके लिए बहुत ऊँचे दर्जेके अस्पताल खुलवाना, बड़े बड़े पुस्तकालय स्थापित करना, विविध वस्तुओंकी प्रदर्शिनियाँ खोलनीं, अजायबघर बनाना, सभायें चलाना, उपदेशक घुमाना, अनाथालय, औषधालय, कुष्ठालय चलाना, समाचारपत्र निकालना इत्यादि। इनमेंसे बहुतसे कार्य्य तो सारे देशवासियोंके चंदेसे हो जाते हैं और बहुतसे कार्य्य धनवानोंके द्वारा हो जाते हैं। इस प्रकार ये बड़े बड़े कार्य्य चलते हैं और इनसे सभीको लाभ पहुँचता है।

जिस प्रकार कि चार आदमियोंके कुटुम्बमें रोटी बनानेवाली घरकी स्त्री सिर्फ अपने ही वास्ते रोटी नहीं बनाती, बल्कि चारोंकेवास्ते

बनाती है और जिस रोज़ उसे स्वतः नहीं खानी होती है उस दिन भी वह शेष तीनों आदमियोंको बनाती है और उसके बनानेमें प्रतिदिनके समान सावधानी रखती है। इसी प्रकार जो व्यक्ति सार्वजनिक हितकी वस्तुएँ बनवाते हैं वे केवल वही चीज़ें नहीं बनवाते हैं जिनकी कि उनको ज़रूरत रहती है, बल्कि वे ऐसी चीजे बनवाते हैं कि जिनसे बहुतोंको लाभ पहुँचता है। क्योंकि यदि अपनी अपनी जरूरतके अनुसार ही सब कार्य किये जायँ तो दुनियाके बहुतसे भारी भारी काम रुक जायँ और सार्वजनिक हितके कामोंमें भारी विघ्न उपस्थित हो जाय। उपरिलिखित चार आदमियोंके कुटुम्बमें यदि घरकी स्त्री उस दिन रोटी न बनावे जिस दिन उसे न खाना हो, तो बेचारे शेष तीनों आदमियोंको भारी दिक़्क़त उठानी पड़े, फिर उनमेंसे जो रोज़ी कमानेवाला है वह भी उस दिन रोजी कमाने नहीं जायगा जिस दिन कि उसे किसी कारणसे भोजन नहीं करना होगा और इस तरह वह शेष तीनों आदमियोंको भूखा रक्खेगा। इसी प्रकार बाकी दो आदमी भी उस दिन अपने जिम्मेका काम नहीं करेंगे जिस दिन कि उनको स्वयं उन कामोंकी जरूरत न होगी। ग़रज़ यह कि ऐसा होनेसे सारा खेल ही बिगड़ जायगा और पारस्परिक सहायताका क्रम भंग हो जायगा। परस्परकी सहायताका यह क्रम तभी चल सकता है जब घरके सब आदमी अपने साथियोंके लिए भी उसीतरह काम किया करें जिसतरह कि वे अपने लिए किया करते हैं। ऐसे ही सर्वहितके वे सब कार्य्य भी किये जाने चाहिएँ जिनकी कि गाँववालों, देशवासियों अथवा मनुष्यमात्रको जरूरत हो। स्वयं अपनेको उनकी ज़रूरत हो या न हो, परन्तु सबके हितके लिए उन कामोंका करना मनुष्यमात्रका धर्म होना चाहिए। ऐसा करनेसे ही सब काम बन सकते हैं और उनसे सबको यथोचित लाभ पहुँच सकता है।

प्रत्येक मनुष्यको सोचना चाहिए कि मैं दूसरोंके बनाये हुए कुंएका पानी पीता हूँ। यदि अपने गाँवमें अपना ही खुदाया कुंआ है तो जब सफरको जाता हूँ तब अवश्य ही दूसरोंके कुंएका पानी पीता हूँ; दूसरोंकी धरती पर चलता हूँ और अन्य कई प्रकारकी सहायतायें अपने गाँववालो या दूसरे गाँववालोंकी बनाई हुई चीजोंसे पाता हूँ। यदि मैं दूसरोंसे यह सहायता न पा सकता तो मेरा सारा कार्य्य डूब जाता। मान लो, यदि प्रत्येक गाँवके लोग दूसरे गाँवके लोगोंको न तो अपने कुंएसे पानी देते और न अपनी धरती परसे चलने देते तो दुनियाके लोगोंका अपने गाँवसे बाहर निकलना ही बंद हो जाता और ऐसी चीजें जो प्रत्येक गाँवमें पैदा नहीं होती हैं बाहरसे न आनेसे सभी लोगोंको बड़े भारी संकटका सामना करना पड़ता। दुनियाके सारे कारबार बंद हो जाते और यहाँ तक कि मनुष्यका जीवन-निर्वाह बिलकुल असंभव हो जाता। अतएव मनुष्योंका कार्य्य पारस्परिक सहायतासे ही चल सकता है और यह सहायता इस प्रकार दी जा सकती है कि सार्वजनिक हितके कामोंमेंसे कोई तो किसी कामको बनवा देवे और कोई किसीको; परन्तु उन कामोंसे लाभ सभी उठावें और इसके लिए कभी भूलकर भी बदलेका खयाल मनमें न लावें। इनका बदला हमें इस प्रकार मिल जाता है कि हमारे बनाये हुए कामोंसे सारी दुनिया लाभ उठावे और दुनिया भरके कामोंसे हम लाभ उठावें। अर्थात् सारी दुनिया एक कुटुम्ब हो जाय और अपनी अपनी योग्यताके अनुसार सभी आदमी समस्त कुटुम्बके हितकारी कामोंको करने लग जावें।

सार्वजनिक हितके कार्य्य करते समय मनुष्यको यह विचार नहीं करना चाहिए कि इस कार्य्यका फल मुझे मेरे जीवनमें ही मिल जावेगा या नहीं, प्रत्युत उस कार्य्यका फल चाहे कितने ही दिनमें क्यों न मिले, या अपने जीवन भरमें भी उसके मिलनेकी आशा न

हो तो भी जनहितकारी कामोंको करनेमें कभी कुंठित नहीं होना चाहिए। क्योंकि संसारमें बहुतसे कार्य्य ऐसे हैं कि जिनका फल बहुत देरमें मिलता हैं और उन कार्य्योंको करनेवाला मनुष्य, प्रायः उनका फल या नतीजा देखे बिना ही चल बसता है। बहुतसे वृक्ष ऐसे हैं कि जिनमें बीसों या पचासों वर्षके बाद फल लगते हैं, या उनकी छाया ऐसी हो पाती है कि जिसके नीचे मनुष्य विश्राम कर सकें। अतएव ऐसे वृक्ष इसी खयालसे लगाये जाते हैं कि जो वृक्ष हमारे पूर्वजोंने लगाये थे उनके फल हम खा रहे हैं और जो हम लगावेंगे, उनके फल हमारी आगामी संतान खायगी। क्यों कि अपने पूर्वजोंकी जिस उदारताके कारण हमको इन वृक्षोंके फल खाना या इस छायामें बैठना नसीब हुआ है उसी उदारतासे हमको भी काम लेना चाहिए और अपनी आगामी संतानके लिए ऐसे ही सुखप्रद कामोंकी जड़ जमा जानी चाहिए। सारांश यह है कि मनुष्य-मात्रकी सहायतामें जितनी अधिक उदारता दिखलाई जायगी, जितनी ही निष्काम सेवा की जायगी, उतना ही मनुष्य-जातिका कल्याण होगा और वह सुखसम्पन्न होकर उत्कृष्ट बनती जायगी।

किसी समय इस भारतवर्षमें यह निष्काम सेवा या मनुष्यजातिकी हितैषिणा बहुत ऊँचे आसनपर विराजमान थी और सारा संसार एक कुटुम्बके समान समझा जाता था, जिसके परिणामसे जहाँ दृष्टि डालो तहाँ सुख ही सुख दिखाई देता था, दुःख दर्दका कहीं नाम नहीं था और सर्वत्र निर्भयता, निःशंकता तथा पारस्परिक सहा-नुभूति और सहायताका भाव लक्षित होता था। परन्तु खेदके साथ लिखना पड़ता है कि अब ये सब बातें केवल किस्सा कहानी ही रह गई हैं। हाँ, दूसरे देशोंमें अवश्य ऐसी बहुत कुछ बातें सुननेमें आती हैं। कहा जाता है कि जिस समय रूस और जापानके मध्य युद्ध चल रहा था उस समय जापानके दो फौजी अफसर रूसके

बंदी हुए थे। उनके पास दो हजार रुपयोंके नोट थे। जब उनको प्राणदंडकी आज्ञा दी गई, तब उनसे पूछा गया कि तुम अपने बाल-बच्चोंका पता बतलाओ जिससे ये नोट उनके पास भेज दिये जायँ। इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि "हमारे बालबच्चोंकी पालनाके लिए तो सारा देश (जापान) मौजूद है जो उनको हमसे भी अच्छी-तरह पालन करेगा, और अपनी ही औलादके समान जानेगा; परन्तु हमको अपने उन जापानी भाइयोंकी फिकर है जो तुम्हारी कैदमें फँसे हुए हैं और देशकी गोदसे अलग हो गये हैं। अतएव अगर आप स्वीकार करें तो हमारे इन रुपयोंको उन्हींकी टहल-सेवामें खर्च कर दीजिए।"

पाठकगण इस एक ही दृष्टान्तसे भलीभाँति समझ सकते हैं कि जिस देशमें पारस्परिक सहायताका व्यवहार होता है, अनाथों तथा अपाहिजोंकी उदारताके साथ पालना होती है, वहाँ सब आदमियोंको कैसा भरोसा रहता है और कैसी निश्चिन्तता रहती है कि यदि हम किसी समय बिलकुल ही दरिद्री और अपाहिज हो जायँगे तो भी कुछ दुःख न पायँगे और यदि असमयमें मर जायँगे और अपने बाल-बच्चोंको बिलकुल ही अनाथ छोड़ जायँगे तो उनकी पालनामें भी किसी प्रकारकी बाधा न आयगी। क्योंकि उस समय तो उनपर सारे ही देशकी छत्रछाया हो जायगी। परन्तु खेद है कि भारतवर्षमें आजकल जब किसीको इतना इत्मीनान नहीं होता है कि मेरे अपाहिज हो जानेपर मेरा सगा भाई भी मेरी सहायता करेगा और मुझे पड़े पड़े खिलायगा, तब यह खयाल ही कैसे किया जा सकता है कि मेरे मरनेके पश्चात् कोई मेरी संतानका पालन-पोषण करेगा। इसका कारण यही है कि हम स्वयं ऐसे स्वार्थी हो गये हैं कि दूसरोंकी सहायता करनेको अपना कर्त्तव्य समझनेके बदले उसे एक बोझा समझने लग गये हैं, और जहाँतक हमसे बनता है इस बोझेको दूर

फेंक देने, या दूसरोंकी सहायतासे दूर भागनेकी चेष्टा करते हैं। इस तरह हम मनुष्यका रूप धारण करके भी पशुओंके समान कर्त्तव्यहीन या स्वार्थी बन गये हैं, इसी लिए दूसरोंकी सहायतासे वंचित रहकर नाना प्रकारके दुःख सहते हैं और किसी प्रकारकी उन्नति नहीं कर पाते हैं। परन्तु पाश्चात्य लोगोंने जिनको कि हम जड़वादी कहकर तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते हैं, आजकल इस पारस्परिक सहायतामें खूब उन्नति की है और इसी लिए सुख-सम्पत्ति उनके घरकी चेरी बन गई है। यही कारण है कि वे स्वर्गसुख भोग रहे हैं और हम जैसोंके भाग्य-विधाता बनकर देवताके समान पूजे जा रहे हैं।

पाश्चात्य देशोंके पादरी लोग हिन्दुस्तानकी दुर्देशा दिखलाकर यूरोप और अमेरिकासे लाखों करोड़ों रुपया माँगमाँग कर लाते हैं और अकालके समय यहाँके गरीबोंको खिलाकर उनका पालन–पोषण करते हैं। यही नहीं, वे उन्हें अनेक प्रकारके काम सिखाकर और पढ़ा लिखाकर योग्य बनाते हैं। भारतके अध्यात्मवादी दूसरे देशके निवासियोंपर तो क्या दया दिखलावेंगे,अपने ही देशके अनाथोंकी पालना इन विदेशी–विधर्मी पादरियोंके हाथसे होते देखकर ज़रा भी नहीं लजाते हैं। हाँ, उन अनाथोंके धर्मभ्रष्ट हो जानेके कारण उनसे घृणा अवश्य करने लगते हैं और ऐसे कठोर हृदयके बन जाते हैं कि यदि उनमेंसे कोई फिर हिन्दू होना चाहे तो उसे नहीं बनाते हैं और उसकी संतानको हमेशा धर्मभ्रष्ट रहनेके लिए लाचार करते हैं।

जिस समय भारतवासी सारे संसारको कुटुम्ब तुल्य मानते थे और मनुष्य मात्रकी रक्षा, शिक्षा तथा पालनाको अपना कर्त्तव्य समझते थे, उस समय भारतके उपदेशक संसारके समस्त देशोंमें जाते और समझा बुझाकर सबको सत्य मार्गपर आरूढ़ कराते थे। परन्तु क्या यह लज्जाकी बात नहीं है कि अभारतवासी अपने पूर्वजोंके इन सब-

सद्गुणोंके गीत गागाकर तो फूले अंग नहीं समाते हैं परन्तु अपने लिए ऐसा करना महा पाप समझते हैं। यही नहीं, आजकल इस देशके अनेक धर्मात्मा पुरुष अपनेमेंसे ही बहुतोंको धर्म्मसाधन और धर्म्म-ग्रन्थ पढ़नेके अयोग्य समझते हैं और जिन्हें योग्य भी समझते हैं उनको भी धर्ममार्ग बतलानेमें नाकोंचने चबवाते हैं। सच तो यह है कि जो उदारता किसी समय भारतवासियोंमें थी वही अब पाश्चात्योंमें दिखाई देने लगी है। इसी कारण अब वे सारी दुनियाके प्रभु बन रहे हैं और इतने सभ्य बन गये हैं कि सब लोग उनसे तमीज सीखते हैं। यही नहीं, वे लोग हथेलीपर जान रखकर और भारी भारी जोखिमे उठाकर आफ्रिका आदि देशोंके हबशियोंतकमें विद्या-तथा धर्म्मका संदेशा पहुंचाते हैं। ऐसे परोपकारी कामोंके लिए यूरोप अमेरिकाके उदार पुरुषोंसे लाखों करोड़ों रुपयोंका चन्दा मिलता है जिस-मेसे वे कई करोड़ रुपया तो केवल भारतवर्षमें ही खर्च कर डालते हैं। भारतवर्षके धर्म्मात्मा इनके प्रति तिरस्कार प्रकट करते हुए और इन्हें म्लेच्छ तथा जड़वादी कहते हुए भी इनके दानको लेनेके लिए पल्ला पसारकर खड़े हो जाते हैं और अपने मनमें इतना भी विचार नहीं करते हैं कि अगर हम अब इस योग्य नहीं रहे हैं कि दूसरे देशोंका उपकार कर सकें तो क्या यहाँतक भी डूब गये हैं कि अपने बालक-बालिकाओंके लिए काफी स्कूल भी नहीं बनवा सकते है? इस कार्य्यमें विदेशियोंका मुंह ताकते हैं और उनके स्कूलों तथा कालेजोंमें अपने बालकोंको ईसाई धर्मकी पुस्तकें पढ़ने और ईसाई धर्मकी प्रार्थनामें शामिल होनेके लिए *बाध्य करते हैं।*

संसार भरके मनुष्योंको एक कुटुम्ब मानने और निराश्रितों तथा रोगियोंकी सहायता करनेमें पाश्चात्योंने ऐसी उदारता दिखलाई है कि वे अपने देशसे पैसा पैसा माँगकर भारतके उन कोढ़ियोंके लिए आश्रम बनवाते हैं जिनको देखकर कि हम नाक भौं चढ़ाते हैं, छिः

छिः करने लगते है और इस बातका जरा भी विचार नहीं करते है कि ये हमारे ही देशवासी हैं–हमारे ही आश्रित हैं। यदि हमारे भारतवासी इन पादरियोंके वनवाये हुए कोढ़ियोंके आश्रम जाकर देखें और यदि वहाँ जानेमें घृणा आती हो तो कमसे कम वहाँकी रिपोर्टें पढ़कर ही देखें, तो उन्हें मालूम होगा कि ये विदेशी पादरी उन कोढ़ियोंकी मरहमपट्टी करते हैं, घंटों उनके समीप बैठकर उनको आश्वासन देते हैं और सब प्रकारसे उनकी सेवा-शुश्रूषा तथा पालन-पोषण करते हैं। इसी प्रकार ये पादरी लोग इस भारतवर्षमें उन मनुष्योंकी शिक्षाके लिए भी आश्रम खोलते हैं कि जिनके बापदादे सैकड़ों पीढ़ियोंसे चोरी या डकैतीका पेशा करते चले आये है। ऐसे कई सहस्र लोगोंको इन पादरियोंने अपने आश्रममें भरती किया है और उनको खेती कारीगरी आदि अनेक प्रकारके हुनर सिखलाकर अपने पुरुषार्थके बल खाने कमाने योग्य बनाकर उनका दुष्ट पेशा छुड़ा दिया है और उन्हें बहुत कुछ सभ्य बना दिया है।

हमारे अध्यात्मवादी भारतवासी तो शायद फिरंगियोंके इस कृत्यसे नाराज़ ही हों और बापदादोंका पेशा छुड़ाकर दूसरे पेशोंमें लगानेको जातिभ्रष्ट होना मानकर महापाप ही गिनते हों; परन्तु खेद है कि भारतवासी अपने पूर्वजोंकी रीस भी तो नहीं करते हैं। वे उनके अच्छे अच्छे कामोंको तो धर्मयुगके काम मानकर और अपनेको कलियुगी बतला कर उन कामोंसे अपना पीछा छुड़ा लेते हैं, तथा खोटे कृत्योंको–जो थोड़े दिनोंसे चल पड़े हैं–अपने बापदादोंकी रीति बतलाकर उन्हें गले लगा रहे हैं। भारतके पूर्व पुरुष संसार भरको अपना कुटुम्ब समझते और सबकी भलाई करते थे। इस उत्तम कृत्यको तो हम लोगोंने छोड़ दिया है और आपसकी फूटको जो थोड़े दिनसे चल पड़ी है दृढ़ताके साथ पकड़ लिया है। इसी तरह हमारे पूर्व पुरुष मातापिताको देवतुल्य पूजनीय समझते थे और

उनकी पूरी पूरी सेवा-शुश्रूषा करते थे। सो इस बातको तो हम लोगोंने छोड़ दिया, परन्तु कुछ दिनोंसे जो यह रीति चल पड़ी है कि जीते जी तो मातापिताको पानी तकके लिए तरसाना-कपड़ेलत्तोंके लिए मुहताज रखना, परन्तु मरने पर परलोकमें उनकी सुखप्राप्तिकी कामनासे दुशाले उढ़ाने, पैसे लुटाने और नगर निवासियोंको अच्छे अच्छे माल खिलानेकी प्रथाको पकड़ लिया है। इन सब बातोंसे यह सिद्ध होता है कि भारतवासी भले बुरेका ज्ञान छोड़कर जड़बुद्धि हो गये हैं; और स्वार्थकी प्रबलताके कारण उनकी पारस्परिक सहायताका क्रम भी रुक गया है। अर्थात् वे मनुष्यत्वसे हीन हो गये हैं और इसीलिए नानाप्रकारके दुःख भोग रहे हैं।

१०–जातिभेद और दानधर्मकी अंधश्रद्धा ।

भारतवर्षमें पारस्परिक सहायताके घट जानेके मुख्य कारण दो ही मालूम होते हैं, एक तो जातिभेद, और दूसरा धर्मके विषयमें विचारशून्यता या अन्धश्रद्धाका होना । इनके सिवा फिजूलखर्ची और बलवीर्य्यकी घटी आदि भी अनेक कारण हैं कि जिनसे पारस्परिक सहायताका मार्ग बंद हो गया है और स्वार्थका साम्राज्य फैल गया है । भारतके हिन्दू इस समय करीब तीन हजार जातियोंमें बँटे हुए हैं और प्रत्येक जातिके लोग अपनी ही अपनी जातिके अन्तर्गत खान-पान तथा विवाह–शादियाँ किया करते हैं–दूसरी जातिसे खान-पान या विवाह-शादी करना वे इतना गुरुतर पाप समझते हैं कि भूलसे भी किसी दूसरी जातिवालेके हाथकी रोटी खालेनेवालेको जातिसे बाहर निकाल देनेके सिवा और कुछ उपाय ही नहीं समझते हैं । मानो प्रत्येक जातिके लोग दूसरी जातिके मनुष्योंको मनुष्य ही नहीं समझते हैं, और इसी कारण उनसे इतनी घृणा करते हैं कि यदि वे हमारे चौकेको धरतीको छू दें तो हमारी सारी रसोई ही बिगड़ जाय और अगर हम ऐसी बिगड़ी हुई रसोई खा लें तो हम भी ऐसे भ्रष्ट हो जायँ कि कोई हमारे हाथके छुए चने भी न खाय । जातिभेदकी इस खींचतानसे अन्य जातिके मनुष्योंसे एक प्रकारका द्वेषभाव हो जाता है और यदि द्वेष भाव न भी हो तो घृणा अवश्य ही हो जाती है । ऐसी दशामें परस्पर सहानुभूति रखना, सहायता करना और एक दूसरेके काम आना प्रायः असंभवसा हो जाता है । यहाँ प्रत्येक जातिका पेशा जुदा जुदा रहता है, इस कारण प्रत्येक नगर और ग्राममें अनेक जातियोंका

होना जरूरी हो गया है। इनसे परस्पर काम तो सब लेते हैं, परन्तु जातिभेदके कारण एक दूसरेको बिलकुल ही गैर समझते हैं और इसीलिए उनमें पारस्परिक सहानुभूति तथा सहायताका व्यवहार नहीं रहता है,-सब लोग अपना अपना काम निकालने और अपना अपना स्वार्थ साधनेकी ही फिकरमें मस्त रहते हैं।

इस जातिभेदने भारतको पारस्परिक सहायतासे ही वञ्चित नहीं कर दिया है, बल्कि विचारशून्यता और आपसके कलहको भी उत्तेजन दिया है। इसके फलसे उच्च जातीय हिन्दू चमार प्रभृति नीच जातीय किन्तु प्रतिदिन काममें आनेवाली हिन्दूजातियोंसे यहाँतक द्वेष करते हैं कि उनको अपने कुओंसे पानी तक नहीं भरने देते हैं परन्तु जब वे ही लोग हिन्दूधर्म्म छोड़कर मुसलमान या ईसाई बन जाते हैं तो फिर चाहे वे अपना पहला पेशा करते रहें या उससे भी अधिक घृणित धंधा करने लगें तो भी हमारे हिन्दूभाई उनसे उतना द्वेष नहीं रखते हैं, अर्थात् इस दशामें उनको कुंएसे पानी भर लेने देते हैं और उनको अपने पास भी बिठाने लगते हैं। फल इसका यह हुआ है कि इन नीच जातियोंके लाखों-करोड़ों आदमी ईसाई तथा मुसलमान हो जाते हैं और इस प्रकार वे पशुओंसे गई बीती दशासे मुक्त होकर मनुष्यकोटिमें आ जाते हैं। सच तो यह है कि भारतको इस जातिभेदने ही गारत किया है और उसे एक एक सुईके लिए दूसरोंका मुहताज बना दिया है। यही नहीं उसने पारस्परिक सहानुभूति और साहाय्यरूपी रत्नको छीनकर भारतवासियोंको पशुकोटिमें लाकर खड़ा कर दिया है। अतएव जब तक यह जातिभेद दूर न होगा तब तक न तो यहाँ पूर्णोन्नति ही हो सकती है और न पारस्परिक सहायता या आपसमें मिलजुल कर काम करनेकी प्रवृत्ति ही पैदा हो सकती है।

क्योंकि हम दुनियाके ठेकदार तो हैं ही नहीं, जो इन वार्तोंको देखें और उनके सुकर्मों अथवा कुकर्मोंका पता लगाते फिरें।" इन लोगोंके इस प्रकारके जवाबसे साफ जाहिर होता है कि दानके द्वारा पुण्य-प्राप्तिके शौक या लालचन इनके हृदयसे दया धर्म और परोपकारके भावको बिलकुल निकाल डाला है और उन्हें ऐसा कठोर बना दिया है कि चाहे सारी दुनिया डूब जाय, या कैसी ही खराबी फैल जाय परन्तु उन्हें पुण्यकी प्राप्ति हो जाय, जो कि ऐसी अवस्थामें होना बिलकुल असंभव है। पुण्य पापके स्वरूप और उसकी प्राप्तिके कारणोंको जरा भी न समझकर ये अंधश्रद्धालु कभी कभी दानका ढोंग भी किया करते हैं, अर्थात् जब कोई बीमार हो जाता है या भारी संकटमें फँस जाता है तब उसके हाथका स्पर्श कराके उसके नामसे कुछ अनाज या द्रव्य बँटवाते हैं और ऐसा करके वे उस बीमारी या संकटके हट जानेकी आशा करने-लगते हैं। इसी प्रकार कई अन्य अवसरोंपर भी दानका ढोंग रचकर उससे अपनेको महान् पुन्यशाली जानते या उससे बड़े बड़े कामोंकी सिद्धिकी बाट जोहने लगते हैं।

दान देनेके ऐसे ऐसे अनोखे व्यवहारोंसे परमार्थ, परोपकार, दयालुता, निष्कामसेवा और पारस्परिक सहानुभूति तथा सहायताका खयाल भारतवासियोंके हृदयसे हट गया है और उसकी जगह स्वार्थने अपना अड्डा जमा लिया है। उक्त सिद्धान्तोंके माननेवाले अंधश्रद्धालु अपने सुख-शान्तिके दिनोंमें एक पैसा भी दानमें नहीं देते हैं, और यही समझे बैठे रहते हैं कि जरूरत पड़नेपर हम सब कुछ दान कर लेंगे। इसके सिवा जब कभी इन लोगोंके मनमें आगेके लिए पुण्य-संचयका खयाल आता है और वे कुंआ, बावड़ी, धर्मशाला या देवमन्दिर आदि सार्वजनिक कामोंमें द्रव्य लगाते हैं तो उससमय भी उनक हृदयम सार्वजनिक हित या परोपकारका खयाल नाम

मात्रको भी नहीं रहता है, वरन् ऐसे कामोंको वे पुण्य-प्राप्तिका जरिया समझकर ही किया करते हैं। ये लोग विना जरूरतके भी इन कामोंको बनवाते और उनपर चूनेका प्लास्टर करानेमें और रंगबिरंगे बेल-बूटे खिचवानेमें लाखों रुपया उड़ा देते हैं। यदि इन लोगोंसे कहा जाय कि आप जिस ग्राम, नगर, गली या मुहल्लेमें यह धर्मशाला, मन्दिर अथवा कुंआ बनवा रहे हैं वहाँ तो पहले ही जरूरतसे ज्यादह बने हुए हैं और जितना रुपया आप प्लास्टर और पच्चीकारीमें लगा रहे हैं उनसे और भी कई उत्तम कार्य्य हो सकते हैं, तो वे निःसंकोच उत्तर दे देते हैं कि हमको जरूरत गैरजरूरत या उपकार अपकारसे क्या मतलब है? हमें तो पुण्य चाहिए, सो इस मन्दिरके बनवाने या कुंएके खुदवानेसे मिल जायगा—जितना रुपया लगावेंगे उतना ही पुण्य मिलेगा। ऐसी अंधश्रद्धासे बड़ा अनर्थ हो रहा है। यद्यपि इस समय भी लाखों—करोड़ों रुपयोंका दान होता है, परन्तु विचार-शून्यताके कारण वह प्रायः व्यर्थ ही जाता है। आजकल इन महादानी धनाढ्योंके कोषमें न तो देशके अनाथों तथा अपाहिजोंके लिए ही कुछ रहता है और न अपने देशके बच्चोंके पढ़ाने लिखानेके लिए ही। ये सब कार्य्य इस देशमें प्रायः विदेशियों द्वारा ही सम्पन्न हुआ करते हैं। यदि भारतके इन पुण्यात्मा अंधश्रद्धालुओंको ऐसी श्रद्धा हो जाय कि इन कार्योंके करनेसे भी पुण्यकी प्राप्ति होती है तो वे दानके लिए निकाला हुआ रुपया आँख मीचकर इन्हीं कामोंमें खर्च करने लगें और जरूरत बेजरूरत गली गली अनाथालय, स्कूल, कालेज आदि बनवाकर इन कामोंकी भी मिट्टी खराब कर दें। कहनेका मतलब यह है कि जबतक विचारसे काम नहीं लिया जायगा और कार्य-कारणके सम्बन्धको खोजे बिना ही आँख मीचकर किसी सिद्धान्तपर विश्वास कर लिया जायगा, तब तक पारस्परिक सहायता और सहानुभूतिका खयाल हृदयमें नहीं आयगा, और जब तक स्वार्थका

भूत हमारे सिरपर सवार रहकर हमसे उल्टे सुल्टे कार्य्य कराता रहेगा तब तक हमको दुःख ही दुःख मिलता रहेगा—सुखप्राप्तिकी कुछ भी आशा न बँध सकेगी।

हरिद्वारके पास जो ऋषिकेश तीर्थस्थान है वहाँ सदैव हज़ारों साधु और भिक्षुक आते जाते रहते हैं और महीनों वहीं निवास करते हैं। भारतके धनाढ्योंकी तरफ़से वहाँ अनेक दानशालायें बनी हुई हैं जो छेत्र (अन्नसत्र) के नामसे प्रसिद्ध है। सुना जाता है कि किसी छेत्रसे चार चार और किसीसे दो दो रोटियाँ प्रत्येक साधुको मिलती हैं और इस प्रकार इनके पास प्रतिदिन इतनी रोटियाँ जमा हो जाती हैं कि ये उन्हें किसी प्रकार नहीं खा सकते हैं अतः शेष रोटियोंको अपनी गौओं और कुत्तोंको खिलाते हैं और यदि उनसे भी बच रहती हैं तो मछलियोंको खिला देते हैं। रोटियोंकी ऐसी दुर्दशा होनेपर भी सुना गया है कि वहाँ और भी कई छेत्र खुलनेवाले हैं, जिनके द्वारा और भी अधिक रोटियाँ उनको मिलने लगेंगी। जो अन्न भारतके लाखों करोड़ों मनुष्योंको पेट भरनेके लिए नहीं मिलता है वही इन धर्मछेत्रोंमें मारा मारा फिरता और पशुओंको खिलाया जाता है। इन सब बातोंसे साफ़ जाहिर होता है कि भारतके ये दानी लोग उपकारके लिए ये छेत्र नहीं खोलते हैं। अगर गरीबोंके हितके लिए खोलते तो जब वहाँ इतने छेत्र खुल चुके हैं कि जिनसे साधुओंको भरपेट भोजन मिलनेके सिवा बहुतसा पड़ा रहता है तो वहाँ बेज़रूरत और छेत्र खुलवा कर अन्नको बरबाद करके अन्य मनुष्योंको भूखों न मारते। किन्तु इनको न तो इन साधुओंके हितका खयाल है और न भारतके अन्य मनुष्योंकी ही परवा है, वरन् इनको तो यही विश्वास है कि ऋषिकेशमें छेत्र चलानेसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। इसी लिए वे वहाँ आँख मीचकर रोटियाँ बँटवाते हैं और पुण्य कमाते है। चाहे किसीको रोटियोंकी ज़रूरत

हो या न हो, चाहे ये रोटियाँ साधुओंके पेटमें जायँ या कुत्ते बिल्लियाँ खायँ, इसका उन्हें कुछ खयाल नहीं है। देशमें सदा अकाल पड़ा रहता है, अन्नके अभावसे लाखों करोड़ों आदमी भूखों मरते हैं, ऐसी हालतमें उक्त क्षेत्रमें जरूरतसे ज्यादह अन्न क्यों खर्च किया जाय, इसकी उन्हें कुछ परवा नहीं है। उन्हे तो केवल अपनी अंधश्रद्धा और पुण्य-सञ्चयसे काम है, न कि देशहित या परोपकारसे।

इस प्रकार इन अन्धश्रद्धालु भारतवासियोंकी कृपासे इस समय ६० लाख साधु मौज उड़ाते फिरते हैं, मिश्री बादाम घुटवाते हैं, भंग छनवाते हैं, गाँजेका दम उड़ाते हैं, हलुवा और मालपुए बनवाते हैं, गद्दी तकिया लगाते हैं, साहूकारी करते हैं, हाथी घोड़े रखते हैं और सब तरहके कुकर्मोंके ठेकेदार बने हुए हैं। यद्यपि ये अंधश्रद्धालु इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि इन ६० लाख साधुओंमें बहुतसे महा पाखंडी और ठग भी शामिल हैं, तो भी आँख मीचकर इनकी सेवा किया करते हैं और उन्हें खूब मेवा मिष्टान्न खिलाते हैं। क्योंकि उनको साधुओंका उपकार नहीं करना है, जो वे भले बुरे और सच्चे झूठे साधुकी पहिचान करते फिरें, बल्कि वे साधुवेशकी पूजा करनेमें ही पुण्य समझते हैं, इस लिए जो कोई साधु सामने आजाता है उसीकी पूजा और आव-भगत करके पुण्य कमा लेते है। क्योंकि वे समझते हैं कि साधुओंकी अशीषसे गृहस्थके सब कार्य्य सिद्ध हो जाते हैं और उनकी शापसे सर्वनाश हो जाता है। इसी लिए ये साधुमात्रकी सेवा करते हैं और भंग चरस आदि भेंट देकर उनसे आशीर्वाद ग्रहण करते हैं। यद्यपि इन चीजोंका सेवन करना वे स्वतः बुरा और हानिकारक समझते हैं परन्तु उनको भय लगा रहा है कि कहीं ऐसा न हो कि इन्कार करनेसे महात्माजी नाराज़ हो जावें और हमारी शामत आ जावे।

मतलब यह है कि इन साधु-संतोंकी सेवा करनेमें भी उक्त दाताओंके हृदयमें स्वार्थके सिवा परोपकारका भाव जागरित नहीं होता है। पुराणोंसे पता चलता है कि अनेक राजालोग अच्छे साधुओंको भोजन-दान देनेसे अधिक पुण्य मिलनेकी आशासे ऐसा प्रबन्ध करते थे जिससे उनके सिवा और कोई मनुष्य उस साधुको भोजन न दे सके और वह लाचार होकर भोजन करनेके लिए राजाहीके दरवाजेपर आवे। यद्यपि ऐसे प्रबन्धसे साधुओंको बहुत कष्ट उठाना पड़ता था, परन्तु इससे राजाको अधिक पुण्य मिलनेकी सुविधा हो जाती थी और इसी लिए वह इस पुण्यप्राप्तिकी छीना-झपटीमें बलात्कारसे भी काम लेनेमें नहीं चूकता था। इस प्रकार इस पुण्यप्राप्तिकी अंध-श्रद्धाने दयाधर्म, परोपकार, निष्कामसेवा और पारस्परिक सहायताकी जड़ उखाड़ डाली है। अब भारतवासियोंकी बात बातमें स्वार्थ घुस गया है, जिसका दूर होना मनुष्य-सुखके लिए बहुत जरूरी है। क्योंकि पारस्परिक सहायता और निष्काम सेवाके विना न तो मनुष्यका जीवन-निर्वाह ही हो सकता है और न वह वास्तवमें मनुष्य ही बन सकता है।
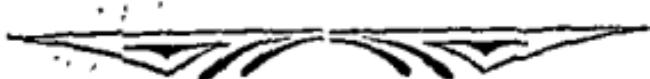
११–दुष्टोंका दमन।

सुखशान्तिकी प्राप्ति और जीवन-निर्वाहके लिए जिस प्रकार पारस्परिक सहायताकी जरूरत है उसी प्रकार मनुष्योंको दुःख देनेवाले और उत्तम नियमोंको तोड़नेवाले दुष्टोंके दमनकी भी आवश्यकता है। अर्थात् ऐसे मनुष्य इन खोटे कामोंसे हटाये जावें, उनसे भले कामोंका अभ्यास कराया जावे और आपसके तिरस्कार तथा राज्यदण्डद्वारा वे पूरी तरह दबाये जावें। ऐसा करना भी मानो मनुष्यजातिकी सहायता करना है। क्योंकि ऐसा किये बिना मनुष्यजातिकी अशान्ति तथा संकट दूर नहीं हो सकता है। परन्तु शोक है कि जातिभेद और अनेक धर्मोंके पक्षपातने इस कार्य्यमें पूर्ण बाधा डाल रक्खी है। प्रत्येक जातिवाले अपनी जातिके दुष्टसे दुष्ट मनुष्योंके पकड़े जाने, राज्यद्वारा दंडित होने या दूसरी जातिवालोंसे तिरस्कृत होनेमें अपनी बदनामी समझते हैं, इसलिए उनसे जहाँतक हो सकता है वे उनकी तरफदारी करते हैं–उन्हें बचाते हैं। परिणाम इसका यह होता है कि सभी जातियोंमें दुष्ट लोगोंकी संख्या बढ़ती जाती है, जो सब प्रकारके उपद्रव मचाते हैं, मनुष्योंको सताते हैं और मूछोंपर ताव देकर बेखटके फिरा करते हैं।

यही हाल धर्म्मपंथोंका हो रहा है। हिन्दुस्तानमें हिन्दू, जैन, सिक्ख, आर्य्यसमाज, कबीरपंथ, दादूपंथ, वल्लभपंथ (श्रीवैष्णव), राधास्वामीपन्थ, मुसलमान, ईसाई आदि अनेक धर्म्म प्रचलित हैं। एक एक धर्मके अनेकानेक पंथ होकर सैकड़ों हजारों पंथ बन गये हैं। प्रत्येक पंथवाला अपने अपने पंथका पक्षपात करने, अपने अपने पंथवालोंकी बुराइयोंको छिपाने और भयंकर दुष्टोंको अपनी शरण

देनेमें ही अपने पंथकी रक्षा समझता है; विशेष करके अपने पंथके साधुओं, गुरुओं और धर्मोपदेशकोंकी बुराइयोंको तो वह अवश्य ही छिपाता है और अपने पन्थकी बदनामीके भयसे बड़े बड़े कुकर्मियोंको भी निभाता है। यहाँतक कि अगर कोई दुष्ट उनके धर्मके साधु, धर्मगुरु आदिका वेश धारण करके अपनेको पुजवाता है और उनको खूब ठगने लगता है, तो भी, भेद खुलने पर भी, ऐसे दुष्टोंको पकड़वाकर राज्यदंड दिलानेमें वह अपने धर्मकी बदनामी समझता है। इसका फल यह हो रहा है कि सभी धर्मोंमें पाखंडी साधु और धर्मगुरु बढ़ते जा रहे हैं जो कि बिलकुल निर्लज्जता और ढिठाईके साथ लोगोंको लूटते और बेधड़क होकर नानाप्रकारके कुकर्म करते हैं।

एक समय भारतवर्षमें यह प्रथा चल पड़ी थी कि राजालोग अपने अपने राज्योंमें बड़े बड़े जबरदस्त चोर और डाकुओंको बसाते थे और उनसे यह शर्त कर लेते थे कि ये न तो उनके राज्यमें कहीं चोरी, डकैती या लूटमार करेंगे और न दूसरे राज्योंके लुटेरोंको ही उनके राज्यको लूटने देंगे, परन्तु दूसरे राज्योंको खूब लूट लूट कर लावेंगे। पहले तो एक दो राजाओंने ही इस प्रकारके लुटेरोंको अपने राज्यमें बसाया होगा, परन्तु धीरे धीरे सभी राजाओंने अपने अपने राज्योंमें ऐसे लोगोंको बसा लिया और इस तरह अन्य राज्योंके लुटेरोंसे अपने राज्यकी रक्षाका प्रबन्ध कर लिया। ये राजा लोग अपने अपने राज्योंके लुटेरोंकी तरफ़दारी किया करते थे और जब ये दूसरे राज्योंको लूटकर आते थे तब उनकी रक्षा करते थे। मनुष्योंके हृदयमें ऐसे घृणित स्वार्थके आनेसे मानवजातिकी सुख-शान्तिमें कितनी बाधा पड़ सकती है इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इस देशमें जब इस प्रकार लुटेरोंको रखनेका रिवाज़ चला था तब प्रत्येक राज्यपर उस राज्यके लुटेरोंके सिवा

अन्य सब राज्योंके लुटेरोंकी चढ़ाइयाँ हुआ करती थीं और प्रजा दिन दहाड़े लुटा करती थी। कभी कभी तो इन लुटेरोंकी तरफ़दारी करनेके कारण राजाओंमें भी लड़ाई छिड़ जाती थी और लाखों मनुष्योंकी गर्दनें कट जाती थीं। परन्तु इस प्रकारके स्वार्थी लोगोंका राज्य बहुत समयतक कायम नहीं रह सका। शीघ्र ही देशमें एक छोरसे दूसरे छोरतक मुसलमानोंका राज्य फैल गया और इन लुटेरोंके बसानेकी प्रथा नष्ट हो गई। परन्तु इतना दस्तूर फिर भी जारी रहा कि प्रत्येक ग्रामके लोग अपने अपने ग्राममें लुटेरोंको बसाते रहे और उनकी सब प्रकारसे तरफ़दारी करते रहे। क्योंकि ऐसा करनेसे ये लुटेरे अपने ग्राममें लूट मार नहीं करते थे और दूसरे गाँवके लुटेरोंसे भी अपने ग्रामकी हमेशा रक्षा करते थे। इसका फल भी यही हुआ कि कोई भी ग्राम लुटेरोंसे खाली नहीं बचा। प्रत्येक ग्राम अपने ग्रामके लुटेरोंके सिवा अन्य सब ग्रामोंके लुटेरोंसे लूटा जाता था, रातदिन लूटमार मची रहती थी और मनुष्योंको जीना भारी हो गया था। अंतमें अँगरेजी राज्यके उदयसे इन सब लुटेरों तथा डाकुओंका उपद्रव मिट गया और दयालु पादरियोंके प्रयत्नसे उक्त लुटेरे अपने बापदादाओंका पेशा छोड़कर खेती कारीगिरी आदि अच्छे अच्छे धन्धे करते हुए सुख चैनसे रहने लगे। इसी लिए अब भारतीय मनुष्योंका जीवन बहुत शान्तिके साथ व्यतीत होने लगा है और लूटमार तथा छीना-झपटी बहुत ही घट गई है।

परन्तु अब भी इतनी बात अवश्य बाकी रह गई है कि बहुतसे अमीर लोग अपने नगरके दो चार बदमाशोंकी खातिरदारी किया करते हैं। ऐसा करनेसे वे उनसे अपनी रक्षा समझते हैं और जरूरत पड़ने पर उनके द्वारा लोगोंको दबाकर अपना काम भी निकाल लेते हैं। परन्तु बदमाशोंका इस प्रकार पालन होने और उन्हें प्रश्रय

मिलनेसे दिनपर दिन उनकी संख्या बढ़ती ही चली जाती है। ये लोग शहर भरको सताते और मौका मिलने पर बारी बारीसे उन अमीरोंकी भी दुर्गति बनाते हैं। वे एकको सताकर दूसरेकी शरणमें पहुँच जाते हैं और अपना मतलब गाँठकर आनंदके तार बजाया करते हैं। इसके सिवा आजकल इतना स्वार्थ तो सभी दिखलाते हैं कि नगरके बदमाशोंके दमन करनेकी कोशिशमें शामिल न होकर उनको अपना वैरी नहीं बनाते हैं, वल्कि खुशामदसे नमस्कार, पालागन, राम राम करके या थोड़ी बहुत भेंट पूजा देकर यही कोशिश करते रहते हैं कि ये बदमाश लोग शहर भरको चाहे जितना सतावें, परन्तु हम पर मेहरबानी रक्खें। इसका फल यह होता है कि ये बदमाश लोग बारी बारीसे सबको ही सताते हैं और जब जिसको सताते हैं तब उसके सिवा दूसरोंको अपना सहायक बना लेते हैं। गरज़ इस प्रकारका स्वार्थ वास्तवमें स्वार्थ नहीं, उलटा अपना ही घातक होता है।

अतएव मनुष्यको अपनी रक्षा करनेके लिए यह जरूरी है कि वह कभी बदमाशोंका साथ न दे, बल्कि जहाँ तक हो सके उनका दमन करता रहे और किसीके विरुद्ध बदमाशी करनेका उनका हौसला न बढ़ने दे। ऐसा करनेसे उसका स्वार्थ भी सध सकता है और उसकी रक्षा भी हो सकती है। परन्तु बदमाशोंकी रिआयत या तरफदारी करनेसे सबका स्वार्थ बिगड़ता है और सभीको कभी न कभी इन बदमाशोंके हाथसे नुकसान उठाना पड़ता है। हाँ, अगर हो सके तो इन बदमाशोंको कुमार्गसे हटाकर सुमार्ग पर लानेकी, काम धंधा सिखानेकी या नीतिवान् बनानेकी कोशिश अवश्य करनी चाहिए। प्रेमसे या भयसे, दमननीतिसे या उपदेश द्वारा, जिस तरह हो सके उनको बुरे क़ामोंसे विरत करके मनुष्य बनाना चाहिए

और मनुष्यमात्रकी कुशल-क्षेमका प्रयत्न करते हुए ही जीवन व्यतीत करना चाहिए। ऐसा जीवन ही आनंदका जीवन कहा जा सकता है। केवल अपना आनंद चाहने और दूसरोंके आनंदकी परवा न करनेमें किसी प्रकार आनंद नहीं मिल सकता है--उसमे तो उलटा घोर दुःखमे फँसना पड़ता है।

१२—'बलवानोंको जीवित रहनेका अधिकार है, निर्बलोंको नहीं' इस सिद्धान्तका खण्डन।

पशुपक्षियोंमें बहुधा बलवान् पशुपक्षी अपनेसे निर्बलोंको खा जाते हैं और अन्य प्रकारसे भी उनको नुकसान पहुँचाते हैं। यह देखकर स्वार्थी लोग भी इसी पटरी पर चलते हैं, अर्थात् वे भी अपनेसे निर्बल मनुष्योंको सताते हैं, गुलाम बनाते हैं और उनके समस्त स्वत्वों तथा सुविधाओंको छीन लेते हैं। वे *Survival of the fittest* (सर्वाइवल आफ दि फिटैस्ट) अर्थात् "जो सबसे अधिक योग्य होगा वही जीवित रहेगा" के सिद्धान्तकी दुहाई देते हैं। परन्तु हमारा इन लोगोंसे यह कहना है कि प्रथम तो तुम पशुपक्षियोंसे अधिक बुद्धिमान् हो, अपनी बुराई भलाई और हानि लाभको पहिचानते हो और इसी लिए तुमने अपने सुखके लिए अनेक प्रकारकी वस्तुएँ बना ली हैं, और नित्य नई नई बनाते जाते हो; परंतु बेचारे पशुपक्षी तो प्रकृतिके अधीन हैं, वे न तो कोई नवीन बात ही निकाल सकते हैं और न अपने जीवनको किसी प्रकार सुधार ही सकते हैं। इस लिए तुमको उनकी रीस करना तथा उनके अधम जीवनको ग्रहण करना कदापि शोभा नहीं देता है। इसके सिवा पशुपक्षी तो अपने पेट भरनेके सिवा और कुछ नहीं चाहते हैं, इस लिए वे एक दूसरेकी कुछ भी परवा नहीं करते हैं; तथा अलग अलग ही अपना गुजारा कर लेते हैं; परन्तु मनुष्योंने तो ऐसा भारी आडम्बर बना लिया है कि उनका पारस्परिक सहायताके बिना क्षणभर भी काम नहीं चल सकता है। इस लिए मनुष्योंके बीचमें यह महाभयंकर पाशविक सिद्धान्त चलाना किसी प्रकार उचित नहीं

कहा जा सकता है। यह सिद्धान्त तो खुल्लमखुल्ला मनुष्यको मनुष्यत्वसे गिराता है। इसके सिवाय यदि मनुष्यत्वको छोड़कर पशु बनना ही स्वीकार हो और उनकी रीस करना ही पसंद हो, तो भी कमसे कम इतना तो अवश्य विचार कर लेना चाहिए कि प्रथम तो पशु भी दो प्रकारके होते हैं, अर्थात् एक तो क्रूर स्वभाववाले या हिंसक, जो दूसरे जीवोंको मारकर अपना पेट भरते हैं जैसे—शेर, भेड़िया, बाज, तीतर आदि, और दूसरे सौम्य स्वभाववाले जो किसी भी जीवको नहीं सताते हैं और घास-पात खाकर ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। अब कहिए कि आप इन दोनों प्रकारके जीवोंमेंसे किसके आगे पगड़ी रखना चाहते हैं और किसको अपना गुरु बनाते हैं? अर्थात् पशुओंमें भी क्रूरस्वभाववाले हिंसक पशु बनना चाहते है, या घास-पात खानेवाले सौम्यस्वभाव पशु।

यदि किसी कारणवश आप क्रूरस्वभाव हिंसक पशु ही बनना चाहें तो इसमें भी आपको इतना विचार अवश्य कर लेना चाहिए कि ये हिंसक पशु अपने जातिके जीवोंको कभी नहीं सताते हैं, अन्य जातीय जीवोंको ही मारकर खाते हैं। इनकी रीस करने पर भी मनुष्य अपनी मनुष्यजातिका विध्वंस कदापि नहीं कर सकेगा, बल्कि वह अन्यजातीय जीवों अर्थात् पशुपक्षियोंपर ही अपनी क्रूरता दिखा सकेगा। अतएव यह सिद्धान्त मनुष्योंके ग्रहण करने योग्य नहीं है, बल्कि इसके विपरीत परस्पर सबकी सहायता करके, सब मनुष्योंको अपना एक कुटुंब समझकर, सबकी सुखशांति और उन्नतिके लिए प्रयासी बनकर ही इस मनुष्य-जीवनका निर्वाह उत्तमतापूर्वक किया जा सकता है।

निस्संदेह प्राचीन समयमें मनुष्यने मनुष्योंपर बड़े बड़े अत्याचार किये हैं। आफ्रिका, फिजी आदि देशोंके रहनेवाले जंगली लोग मनुष्योंको मारकर खा जाते थे। हमारे हिन्दुस्तानमें भी कुछ ऐसे

-मनुष्य थे जो राक्षस कहलाते थे और यहाँ भी बहुतसे लोग देवताओंके आगे मनुष्योंको मारकर चढ़ाया करते थे। इसके सिवाय आर्य्यलोगोंने इस देशमें आकर यहाँके मूलनिवासियोंका–गोंड, भील, संथाल आदि लोगोंका–दमन किया, उनका जबरदस्ती राज्य छीन लिया, उनको पहाड़ोंमें मार भगाया, लाखोंका खून बहाया और जो अवशेष रहे उनको अपना गुलाम बना लिया। इन गुलामोंसे अत्यन्त घृणित सेवा ली गई और वे अछूत ठहराये जाकर मनुष्योचित सभी अधिकारोंसे वंचित कर दिये गये। वे दस्यु, शूद्र, चाण्डाल आदि नामोंसे पुकारे गये, धर्मपुस्तकोंके पढ़ने और धर्मसाधन करनेके लिए अनधिकारी ठहराये गये और उनकी उन्नति तथा सब तरहकी सुविधाओंको रोकनेके लिए ऐसे ऐसे कठोर नियम बनाये गये कि जिनके रहते हुए कभी कोई जाति न तो अपनी उन्नति ही कर सकती है और न अधिक समय तक अपना अस्तित्व ही रख सकती है।

इसी प्रकार अभी कुछ शताब्दी पहले यूरोपवासियोंने भी अमेरिका आफ्रिका आदि देशोंके जंगली मनुष्योंपर जो भीषण अत्याचार किये थे, वे अवर्णनीय हैं। आफ्रिकाके नीग्रोलोग मानों उनकी समझमें मनुष्य ही नहीं थे। वे ढोरोंकी तरह लाकर बाजारमें बेंचे जाते, ढोरोंके समान रक्खे जाते, और कोड़ोंसे पीटे जाते थे। सुनते हैं कि कई शौकीन लोग तो उनकी शिकार तक खेलते थे! इसी प्रकार इसके पहले सारे यूरोप भरमें अपनी ही जातिके असंख्य लोगोंपर 'विच' या 'डाकिनी' होनेका अभियोग लगाकर जो जो दारूण जुल्म किये जाते थे, उन्हें जो जो भयंकर यातनायें दी जाती थीं उनका वर्णन पढ़नेसे हृदय काँप उठता है। इस तरह प्राचीन समयमें प्रायः सभी बलवान् जातियोंने अपनेसे हीन तथा निर्बलजातिके मनुष्योंके प्रति अपना क्रूर स्वभाव प्रदर्शित करके "जिसकी लाठी उसकी भैंस" की कहावतको चरितार्थ किया है।

परन्तु इस समय मनुष्योंने बहुत कुछ सभ्यता सीख ली है और इसी लिए वे मनुष्यमात्रके साथ सहानुभूति और समानताका व्यवहार करने लगे हैं। इसी लिए वे न तो अब किसी जातिके मनुष्योंको अपना गुलाम बनाते हैं और न उनसे पशुवत् व्यवहार ही करते हैं। बल्कि अब वे आज़ाद कर दिये गये हैं और आफ्रिका देशके उन जंगली लोगोंकी संतानें भी उन्नति करने लगी हैं जो किसी समय अमेरिकामें पहुँचाई जाकर ढोरोंके समान बेची गई थीं। इन लोगोंमेंसे किसी किसीने तो अपनी विद्याबुद्धिके द्वारा यहाँ तक उन्नति कर ली है कि वे अमरिकाके राजकार्य्यमें ऊँचेसे ऊँचे पदोंको प्राप्त करने लगे हैं और उनमेंसे कई एक तो वहाँके प्रजातंत्र राज्योंके प्रेसीडेंट तक भी चुने गये हैं। इसी प्रकार भारतवर्षके अछूत शूद्र भी जो किसी समय उन्नतिमात्रके अनधिकारी और हेय समझे जाते थे अब ईसाई होकर और विद्या पढ़कर योग्य बन जाते हैं और हाकिम बनकर उच्च जातियोंपर भी शासन करते हैं तथा स्कूल मास्टर बनकर उनको शिक्षा देते हैं।

कहनेका अभिप्राय यह है कि अब मनुष्य पहलेके समान क्रूर पशु नहीं रहा है और न वह क्रूर पशुओंसे अधिक नृशंस बनकर अपनी ही जातिके जीवों अर्थात् मनुष्योंका विध्वंस करना पसंद करता है। इसके विपरीत अब वह मनुष्यमात्रकी भलाईमें ही अपनी भलाई समझने लगा है। भला ऐसी स्थितीमें अब Survival of the fittest का सिद्धान्त कैसे माना जा सकता है? अब तो मनुष्यकी शोभा इसी बातमें है कि वह अपनी सभ्यतामें कुछ कदम और आगे बढ़कर मनुष्यमात्रको एक समान समझने और मनुष्यमात्रको उन्नत बनानेका प्रयास करे। जिस प्रकार आजकल मनुष्योंने गुलाम बनानेकी प्रथा बंद कर दी है उसी प्रकार उन्हें कोई ऐसा प्रबंध भी कर देना चाहिए कि कोई मनुष्य किसी मनुष्यको न तो सता सके,

और न कोई राजा ही युद्ध करके मनुष्योंका खून बहा सके, बल्कि सब मनुष्य आपसमें भ्रातृभाव रखकर–एक दूसरेके सहायक बनकर-आनंदमे अपना जीवन वितावें।

इस स्थल पर यह कह देना भी जरूरी है कि आपसमें प्रीति हो जानेसे पारस्पारिक प्रतिद्वंद्वता या उन्नतिमें एक दूसरसे चढ़ाऊपरी करनेकी अत्यन्त लाभकारी अभिलाषामें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पहुँचती है, वरन् यह प्रतिद्वंद्वता पारस्पारिक सहानुभूति और सहायताके रहते हुए ही मनुष्यको वास्तविक उन्नतिके प्रदेशमें पहुँचाती है। क्यों कि दूसरोंकी उन्नतिको रोककर अपनी उन्नति करना वास्तविक उन्नति नहीं, बल्कि उन्नतिका आभास या भ्रममात्र है। जैसे कोई दो आदमी है। दोनोंके पास एक एक हजार रुपये है। अब उनमेंसे एक आदमी दूसरेके सब रुपये चोरोंसे लुटवाकर उसे कंगाल बना दे और फिर अपने मनमें हर्ष मनावे कि मेरे पास तो एक हजार रुपये है और मेरे साथीके पास एक भी नहीं है, इस लिए मैं अब अपने साथीसे हजार गुना धनवान् हो गया हूँ, तो उसका ऐसा खयाल करना निरी मूर्खता है। उन्नतिके ऐसे झूठे खयालसे उसकी वास्तविक उन्नति न होगी, बल्कि वह उसके झूठे खयालमें भूल कर अपनी वर्तमान स्थितिसे भी नीचे गिर जायगा। उसकी वास्तविक उन्नति तो तभी हो सकेगी जब कि दोनों आदमी एक दूसरेको उन्नति करनेका पूरा पूरा अवसर दे और आपसमें एक दूसरेसे सहानुभूत रखते हुए तथा सहायता देते हुए अधिकाधिक पुरुषार्थ और चतुराई द्वारा एक दूसरेसे आगे निकल जानेकी कोशिश करते रहें। ऐसा करनेसे कुछ ही समयमें वे अपने एक एक हजार रुपयोंकी जगह कई कई हजार रुपये कमा डालेंगे।

या ऐसे ही, दो विद्यार्थी जो एक ही कक्षामें पढ़ते हों और परीक्षामें एक दूसरेसे अधिक नम्बर प्राप्त करना चाहते हों, यदि

यह कोशिश करने लगें कि मेरा दूसरा साथी बीमार पड़ जाय या उसकी पुस्तक जल जाय जिससे मैं अभ्यासमें आगे निकल जाऊँ और अधिक नम्बर प्राप्त कर लूं तो इसे कदापि उन्नतिकी प्रतिस्पर्धा नहीं कह सकते हैं–वरन् यह निरी शैतानी और राक्षसी दुराकांक्षा है कि जिससे दोनोंको हानि पहुँचने और दोनोंकी उन्नतिमें बाधा पड़नेके सिवा और कुछ लाभ नहीं हो सकता है। इसके विपरीत उनकी उन्नति तभी हो सकेगी जब वे परस्पर स्नेहपूर्वक एक दूसरेकी सहायता और मंगलाकांक्षा करते हुए एक दूसरेसे अधिक परिश्रम और अध्ययन करेंगे। ऐसा करनेसे ही उनकी सच्ची उन्नति हो सकेगी और यही मानवी प्रतिद्वंद्वताका उत्तम तरीका है।

१३--सहनशीलताका अभाव।

जिस प्रकार इस संसारमें मनुष्योंकी सूरत शक्ल और रंगरूपमें भेद है, उसी प्रकार उनके स्वभाव, आदतों, विचारों, इच्छाओं, जरूरतों और चाल-ढालमें भी भेद है। यही कारण है कि कोई नमकीन या चटपटी चीजें खाना पसंद करता है और कोई मीठी या खट्टी, कोई खेती करना पसंद करता है और कोई व्यापार, कोई कारीगरी करता है और कोई नौकरी, कोई तड़क-भड़ककी पोशाक पहिनता है और कोई सीधी सादी, कोई अकड़कर चलता है और कोई नम्रतासे। परन्तु प्रत्येक बातमें इतना अंतर रहने पर भी मनुष्यका काम आपसके मेल-जोल और पारस्परिक सहायताके बिना नहीं चल सकता है, इस लिए भिन्न भिन्न प्रकृति और भिन्न भिन्न विचारके मनुष्योंको सब प्रकारके कामों और सब प्रकारकी बातोंको हर्षके साथ सहन करना पड़ता है और इसी सहनशीलतासे उनका मेल-जोल निभता है।

देखिए, एक दुधमुंहा बच्चा जो न तो समझ ही रखता है और न शक्ति, अपनी माताकी गोद या उसके बिस्तरोंमें मल-मूत्र कर देता है और उसकी माता इस बात पर जरा भी बुरा नहीं मानती है; बल्कि वह खुशीके साथ उसके मलमूत्रको साफ कर देती है। क्योंकि यदि माता अपने बच्चेके मलमूत्र करनेको सहन न कर सके तो न तो वह उसे अपने पास रख सके और न उसका पालन ही कर सके। इसी प्रकार यदि एक घरमें दो भाई रहते हों और एक भाईको खाना खाकर दोपहरके समय गाने बजाने और दिल बहलानेका शौक हो और दूसरेको उसी समय थोड़ी देर सोनेकी आदत हो, तो दोनों भाइयोंका उस घरमें रहना तभी निभ सकता है जब कि न तो सोनेवाला अपने भाईके गाने-बजानेको बुरा समझे

और न गाने-बजानेवाला अपने भाईके सोनेसे घृणा करे, बल्कि गाने-बजानेवाला अपने भाईके सोनेके समयको बचा कर गावे बजावे और सोनेवाला अपने भाईके गाने बजानेके समयको टाल कर सोवे; यही नहीं, दोनों अपने अपने शौकोंको एक दूसरेके सुखके लिए न्योछावर कर दें, अर्थात् एक दूसरेके सुखका इतना ज्यादह खयाल रक्खें कि यदि एक भाईके गाते बजाते रहनेके कारण दूसरे भाईको किसी दिन बिलकुल सोनेका मौका न मिले, या एक भाईके सोते रहनेकी वजहसे दूसरे भाईको किसी दिन बिलकुल गाने बजानेका अवसर न मिले तो वे कुछ भी बुरा न मानें।

इसी प्रकार यदि एक भाईको अरहरकी दाल खानेका शौक हो और दूसरेको उड़दकी दालका, तो उनकी रसोईमें दोनों प्रकारकी दालें बननी चाहिए; किन्तु यदि वे ऐसे गरीब हों कि दोनों प्रकारकी दाल न बनवा सकते हों तो किसी दिन अरहरकी दाल बननी चाहिए और किसी दिन उड़दकी। ऐसा करनेसे जिस दिन जिसे अपनी रुचिके विरुद्ध दाल खानी पड़े उस दिन उसे बुरा नहीं मानना चाहिए बल्कि प्रत्येकको यही प्रयत्न करना चाहिए कि चाहे मेरे शौकके अनुसार चीज बने या न बने, परन्तु मेरे साथीके शौकमें फरक न पड़ने पावे। ऐसा करनेसे ही उनका मेल-जोल सदा निभता जावेगा, अन्यथा नहीं। इसी प्रकार यदि एक पड़ौसीके यहाँ मौतके हो जानेसे शोक छा रहा हो और दूसरेके यहाँ बेटेके विवाहकी खुशी मनाई जा रही हो तो दोनोंको बुरा नहीं मानना चाहिए; बल्कि शोकवालेको चाहिए कि वह अपने पड़ौसीकी खुशीमें विघ्न न पड़ने देनेके लिए अपने शोकको यहाँ तक कम कर दे कि अपने पड़ौसीको मालूम भी न हो कि पड़ौसमें शोक हो रहा है। इसी तरह विवाहकी खुशी मनानेवालेको भी चाहिए कि वह अपनी खुशी बिलकुल चुपचाप ही मना ले। इसी

प्रकार यदि बाज़ारमें किसीके विवाहका जुलूस निकल रहा हो और चलने फिरनेवालोंको कुछ समयके लिए रुक जाना पड़ा हो, तो इसमें उनको जरा भी बुरा नहीं मानना चाहिए और मनमें ऐसा विचार नहीं लाना चाहिए कि किसी तरह यह बला टले तो हम आगे बढ़ें; बल्कि जो खुशीका भाव अपनी बारातका जुलूस निकालते समय होता है वही दूसरोंकी बारात निकलते समय भी होना चाहिए। इसी प्रकार और भी हजारों बातोंको समझ लेना चाहिए कि जिनमें मिल-जुलकर रहनेके कारण बहुत कुछ सहन करना पड़ता है। परन्तु इस प्रकार सहनशीलतामें जो कष्ट उठाना पड़ता है वह उस सुखका हजारवाँ हिस्सा भी नहीं है जो इसके बदलेमें मिल-जुलकर रहनेसे मिलता है। इसी कारण मनुष्य बहुधा इस प्रकारके कष्ट सहन किया करते हैं और अपनी इस सहनशीलतासे बहुत कुछ मेल-जोल भी पैदा कर लेते है। परन्तु आश्चर्यका विषय है कि धर्मके मामलेमें यह उत्तम नियम न जाने क्यों टूट जाता है और धर्मका नाम आते ही सब मनुष्य अन्य धर्मवालोंसे न जाने क्यों ऐसे बागी हो जाते हैं कि मानों इनका आपसमें न कभी मेलजोल हुआ है और न आगे होनेकी आशा है। इसी कारण धार्मिक पर्वों या जुलूसोंके समय मनुष्यके सिरपर ऐसा जबरदस्त भूत सवार हो जाता है जो अगले पिछले सभी सलूकों और सद्भावोंको तोड़ डालता है और आँखों पर ऐसी चर्बी चढ़ा देता है कि जिससे अन्य धर्मी बिलकुल गैर और ऐसे घृणित नज़र आने लगते हैं कि मानों विधाताने किसी समय उनको भूलसे बना दिया है और भूलसे ही उनको अबतक जीवित रख छोड़ा है।

यद्यपि धार्मिक उत्तेजनाका वह समय निकल जाने पर धर्मका भूत भी सिरपरसे उतर जाता है और लोग फिर आपसमें मेल-जोल करनेकी कोशिश करने लगते हैं; परन्तु जिस प्रकार कि टूटा

हुआ हीरा नहीं जुड़ता है, उसी प्रकार ठेंस खाया हुआ मन भी फिर नहीं मिलता है। यद्यपि भिन्न भिन्न धर्मोंके ये लोग ज़ाहिर तौर पर फिर मिलने जुलते लगते हैं, परन्तु वह मिलना बिलकुल बनावटी या दिखाऊ होता है। इस धार्मिक द्वेषके कारण हमेशा खटपट बनी रहती है और समय समय पर दोनों धर्मवालोंको हानि उठानी पड़ती है।

जिस प्रकार खाने पीने, पहिरने ओढ़ने, और संसारके सब व्यवहारोंमें मनुष्यकी रुचि भिन्न भिन्न प्रकारकी होती है और अपनी अपनी रुचिके अनुसार उनके भिन्न भिन्न व्यवहारोंसे किसीको कुछ हानि नहीं होती है, बल्कि इससे इस विचित्र संसारकी शोभा ही बढ़ती है और विचित्र प्रकारकी प्रवृत्तियोंको देख कर मनुष्यकी विचारशक्ति बहुत कुछ उन्नति करती जाती है; साथ ही लोगोंको सहज ही बहुतसी बातोंका अनुभव प्राप्त होता जाता है और उनको अपनी सुख-शान्तिके नवीन नवीन उपाय निकालने और अधिकाधिक आगे बढ़ते जानेका अवसर मिलता जाता है, उसी प्रकार यदि परलोक-सम्बन्धी कामोंमें भी मनुष्योंके भिन्न भिन्न मत और भिन्न भिन्न प्रवृत्तियाँ रहें तो इसमें कोई हानि नहीं है। बल्कि धर्मसंबंधी और विचार-सम्बन्धी स्वाधीनता मिलनेसे उनमे अधिकाधिक खोज होने, नई नई बातोंके निकलने और दिन परदिन उन्नति होनेकी संभावना रहती है। यदि धर्मके विषयमें भी सब लोग इसी प्रकारकी स्वाधीनता मान लें, अर्थात् जिसके मनमें जो आवे वही धर्म माने और जिसे जो धर्म पसंद न हो वह न माने, तो इससे धर्मसे उत्पन्न होनेवाले वे सब झगड़े मिट जायँ जो आये दिन हुआ करते हैं और जिनके कारण भिन्न भिन्नधर्मवालोंमें मनमुटाव होकर सदाके लिए वे एक दूसरेके दुश्मन बने रहते हैं।

परंतु इस प्रकारकी धार्मिक स्वतंत्रता मिलनेका यह अर्थ नहीं है कि एक धर्मवाला दूसरे धर्मवालेको अपने धर्मकी महत्ता और

सत्यता न समझाये, या अन्य धर्मकी त्रुटियाँ प्रकट न करे। अवश्य करे, परन्तु प्रेम और मुहब्बतसे करे। जैसे कि उड़दकी दाल खानेवाला एक भाई अरहरकी दाल खानेवाले दूसरे भाईको उड़दकी दालकी बड़ाई और अरहरकी दालकी बुराई समझाता है; या जिसप्रकार देशी वैद्योंसे इलाज करानेवाला एक बीमार अँगरेजी डाक्टरसे इलाज करानेवाले दूसरे बीमारको देशी ओषधियोंके गुण और अँगरेजी ओषधियोंके अवगुण बतलाता है, और जिस प्रकार इन सांसारिक विषयोंमें एक दूसरेकी बात न मानने पर दोनोंमेंसे कोई भी बुरा नहीं मानता है और न उसके लिए लड़ने झगड़ने या जबर्दस्ती करनेको ही तैयार होता है, उसी प्रकार धार्मिक विषयोंमें भी एक दूसरेकी बात न मानने पर कुछ बुरा नहीं मानना चाहिए और न इस विषयमें किसी प्रकारकी जबर्दस्ती ही करनी चाहिए। परन्तु धर्मके विषयमें इससे बिलकुल उल्टी बात नज़र आती है, अर्थात् सांसारिक बातोंमें तो भिन्न भिन्न रुचि और भिन्न भिन्न प्रवृत्तिके मनुष्य एक दूसरेको समझाते हैं, अपनी अपनी रुचि और प्रवृत्तिके हानि लाभ पर प्रेमके साथ बहस करते हैं और न मानने पर कुछ बुरा नहीं मानते हैं, परंतु धर्मके विषयमें बात करनेसे भी डरते हैं। सोचते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि कोई किसी बातका बुरा मान जाय और बैठे बिठाये आपसमें रंज बढ़ जाय या लड़ाई ठन जाय। इस कारण सब लोग इसीमें कुशल समझते हैं कि भिन्न भिन्न धर्मवालोंके बीचमें धर्मकी कोई बात ही न छिड़ने पावे। यही कारण है कि बहुधा सब लोग धार्मिक बातोंके छेड़नेमें हिचकते हैं और यदि किसी कारणवश कभी भिन्न भिन्न धर्मावलम्बियोंके बीचमें कोई धर्मसंबंधी बात छेड़ी भी जाती है तो सरल भावसे सत्यताके निर्णय करनेकी कोशिश नहीं की जाती है, बल्कि अपनी बुद्धिका सारा ज़ोर लगाकर और सब प्रकारका मायाजाल फैलाकर अपने अपने

धर्मकी वातको ऊँची रखनेका प्रयत्न किया जाता है, और ऐसी खींचातानी की जाती है कि मानो स्कूलके विद्यार्थी दो दल बनकर और आपसमें हार जीतकी बाजी लगाकर रस्सेको अपनी अपनी तरफ खींचनेकी कोशिश कर रहे हों। फल इसका यह होता है कि यदि भाग्यवशात् आपसमें मनमुटाव और लड़ाई दंगा न भी हुआ, तो भी एक दूसरेके धर्म्मसे कुछ न कुछ द्वेष तो अवश्य ही बढ़ जाता है।

अभिप्राय यह है कि इस संसारव्यापी धर्म्मयुद्धने केवल मनुष्योंके मेलजोलके शुभ प्रबन्धमें ही अंतर नहीं डाल रक्खा है, बल्कि धर्मविषयक बातोंके निर्णय करने और उसे एक दूसरेको समझनेके अत्युत्तम मार्गको भी बंद कर दिया है। ऐसी दशामें मनुष्योंमें ये अनेक धर्म्म क्यों फैले, किन किन कारणोंसे यह धर्मयुद्ध जारी हुआ तथा किन किन उपायोंसे यह महायुद्ध शान्त होकर मानवजातिमें सुख-शांतिकी प्रतिष्ठा की जा सकती है, इत्यादि प्रश्नोंका निर्णय करना मनुष्यके लिए अत्यावश्यक है।

१४—अन्धश्रद्धा और धार्मिक द्वेषकी उत्पत्ति।

सांसारिक वस्तुओंकी तनिक भी जाँच करनेसे सहज ही जाना जा सकता है कि संसारका सारा खेल वस्तु-स्वभावके अटल नियमोंपर चल रहा है और संसारकी वस्तुओंका स्वभाव अटल होनेके कारण ही हम उनको व्यवहारमें ला सकते हैं। इस समय अग्निका जो स्वभाव है, अर्थात् आज वह जिस प्रकार जलाती, पकाती, उजेला करती और गरमी पहुँचाती है, लाखों-करोड़ों वर्ष पहले भी उसका यही स्वभाव था और आगे भी यही रहेगा। इसी दृढ़ विश्वासपर हम अग्निको जलाने, पकाने, उजेला करने और गरमी पहुँचाने आदिके काममें लाते हैं। यदि अग्निका यह स्वभाव अटल न होता, अदलता बदलता रहता, अर्थात् कभी तो यह अग्नि वर्फके समान ठंडी हो जाती और कभी बिजलीकी नाईं गरम, कभी इससे साँप बिच्छू निकला करते और कभी अंगारे, या कभी इसमेंसे आम, अंगूर, नारंगी, सेव आदि मेवे पैदा हुआ करते और कभी शेर चीते आदि, तो यह मनुष्य आगके पास कभी फटकता भी नहीं। परन्तु ऐसा नहीं होता है। मनुष्यको दृढ़विश्वास है कि आगका जो स्वभाव आज है वही कल था और वही आगे भी रहेगा। इसी लिए वह बेफिकरीके साथ उसे काममें लाता है। इसी प्रकार यदि खेतमें गेहूँ बोनेपर कभी तो उससे कंकर पत्थर पैदा हुआ करते और कभी बर्र ततैये आदि, कभी तरह तरहके अनाज पैदा हुआ करते और कभी हीरे जवाहरात आदि, तो मनुष्य कभी गेहूँ बोनेका साहस न करता। क्योंकि ऐसी दशामें मनुष्यको यही संदेह रहता कि न जाने कौन वस्तु पैदा हो और उसका क्या परिणाम निकले। परन्तु गेहूँ बोनेसे सदैव गेहूँ ही पैदा हुआ करता है, यहाँ तक कि लाल गेहूँ बोनेसे लाल पैदा होता है और सफेद बोनेसे सफेद। इस लिए मनुष्य बेखटके

गेहूँ बोता है और गेहूँ ही काटता है। इसी प्रकार संसारकी प्रत्येक वस्तुको हम इसी लिए बर्तावमें ला रहे हैं कि प्रत्येक वस्तुका जो स्वभाव आज है वही लाख वर्ष पहले था, और वही आगे भी बना रहेगा।

इसी आधारपर मनुष्य वस्तु-स्वभावकी खोज करके वस्तुओंके स्वभावोंके अनुसार उनको अपने कामोंमें लाता है। लोहे और पीतलके टुकड़ोंसे बनी हुई घड़ी टक् टक् करती हुई चलती है। यह शक्ति किसी मनुष्यने नई पैदा नहीं की है, वरन् लोहे और पीतलमें यह शक्ति सदासे थी और सदा ही रहेगी। हाँ, जबसे मनुष्यने यह बात खोज निकाली है कि लोहे और पीतलके टुकड़ोंमें यह शक्ति है कि उनको विशेष प्रकारसे बनाने और जोड़नेसे घड़ी बन जाती है तभीसे वह घड़ी बनाने लगा है। इसी प्रकार एंजिन, तारबर्की, फोनोग्राफ, बायस्कोप आदि अद्भुत अद्भुत चीजें जिन वस्तुओंसे बनती हैं उन वस्तुओंको मनुष्य कहीं स्वर्गसे उठाकर नहीं लाया है और न वहाँके देवता ही आकर उनमें यह शक्ति पैदा कर गये हैं, बल्कि ये सब वस्तुयें पृथ्वीपर सदासे थीं और सदासे ही इनमें फोनोग्राफ और बायस्कोप आदि बनानेकी शक्ति मौजूद थी; परन्तु मनुष्यको यह मालूम नहीं था कि किस वस्तुको कितने परिमाणमें और किस रीतिसे जोड़नेसे एंजिन, तारबर्की, फोनोग्राफ आदि बनते हैं, इसी लिए पहले ये चीजें नहीं बनती थीं, परंतु जब खोजी मनुष्योंने ये बातें मालूम कर लीं तब ये चीजें भी बनने लगीं।

संसारकी वस्तुओंमें इनसे भी अधिक आश्चर्यजनक और अद्भुत रूप बन जानेकी शक्ति है, इस कारण मनुष्य ज्यों ज्यों संसारकी वस्तुओंकी शक्तियोंको जानता जावेगा त्यों त्यों वह अनेक नई नई वस्तुयें बनाता जावेगा। संसारकी वस्तुयें अनन्त हैं और उनकी शक्तियाँ भी अनन्त हैं, इस लिए मनुष्यको सांसारिक वस्तुओंकी नई

नई शक्तियाँ खोजने और नई नई वस्तुयें बनानेका मौका सदा ही मिलता रहेगा।

परन्तु संसारके सभी मनुष्योंमें एकसी बुद्धि नहीं रहती है—किसीमें थोड़ी और किसीमें बहुत हुआ करती है। यही कारण है कि एक मनुष्य तो अपनी बुद्धिसे नवीन वस्तु बनाता है और दूसरा देखकर आश्चर्य्य करने लगता है। इसी प्रकार सब देशोंके मनुष्योंमें भी एक समान विद्याका प्रचार नहीं हुआ करता है। यही कारण है कि आजकल यूरोप और अमेरिकाके लोग तो नई नई चीजें निकालते हैं, परन्तु हिन्दुस्तानके लोग उनको देखकर भी वैसी नहीं बना सकते हैं; और आफ्रिकाके हबशी तो ऐसे मूर्ख हैं कि वे उनकी बनाई हुई चीजोंको उपयोगमें भी नहीं ला सकते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक समय भी एकसी बुद्धिवाले मनुष्य नहीं होते हैं। इसी यूरोपके लोग, जो अबसे दो चार हज़ार वर्ष पहले बिलकुल मूर्ख और जंगली अवस्थामें थे, आज अपने बुद्धिबलसे सारे संसारको चकित कर रहे हैं और वही हिन्दुस्तानी जो अबसे दो चार हज़ार वर्ष पहले अपने बुद्धिबलके कारण संसारके शिरोमणि बने हुए थे आजकल हाथ पर हाथ रक्खे हुए बैठे हैं और एक ज़रासी सुई तकके लिए विदेशियोंके मोहताज हो रहे हैं।

इस अन्तरका कारण यही है कि जो गेंहूँ बोवेगा वह गेंहूँ बटोरेगा और जो काँटे बोवेगा वह काँटे पायगा। अर्थात् जो मनुष्य अपनी बुद्धिको जिस काममें लगावेगा वह उसी कार्य्यमें उन्नति कर सकेगा। मतलब यह है कि जो लोग संसारकी वस्तुओंकी शक्तियाँ ढूंढ़ ढूंढ़कर उनसे नई नई वस्तुयें बनानेकी कोशिश करेंगे वे नई नई वस्तुयें बनाकर स्वयं सुख लूटावेंगे और दूसरोंको भी सुख पहुँचावेंगे। यही नहीं, वे अपनेसे हीनबल और हीनबुद्धि लोगोंके प्रभु भी बन जावेंगे; और जो लोग घमंडमें आकर, सुस्त पड़े रहकर, या

विलासितामें फँसकर इन नवीन नवीन वस्तुओंके खोजने और बनानेके कामको व्यर्थ खटराग समझेंगे वे महामूर्ख रहकर अन्य देशवासियोंके गुलाम बन जायँगे। इसी प्रकार जो देश नवीन नवीन खोजों और नवीन नवीन वस्तुओंको बनानेके कारण सबका शिरोमणि हो गया है वह जब इन बातोंकी ओर उदासीनता प्रकट करने लगेगा या इन सब कामोंको छोड़ बैठेगा तब वह भी अवनत होकर दूसरोंका गुलाम बन जायगा। ठीक ऐसी ही दशा आज कल हिन्दुस्तानकी हो रही है। एक समय जो अपनी विद्या बुद्धिके कारण बहुत ऊँचे चढ़ गया था, वही आज अपनी अकर्मण्यताके कारण नीचे गिर गया है और पुनः ऊपर उठनेकी सुधि भी नहीं करता है।

इस कथनका तात्पर्य्य यह है कि इस संसारमें अपनी अपनी करनीके अनुसार कभी किसी देशके मनुष्य बुद्धिमान् बन जाते हैं और कभी बुद्धिहीन, कभी संसार-शिरोमणि बन जाते हैं और कभी कुली–गुलाम, कभी वे विद्याके स्वामी समझे जाते हैं और कभी महामूर्ख। एक बार बिलकुल नीचे गिरकर जब उनका फिर उत्थान होता है तब वह बिलकुल आहिस्ता आहिस्ता उसी क्रमसे होता है जिस क्रमसे कि मनुष्यत्वकी प्राप्तिके अध्यायमें कहा गया है।

संसारकी वस्तुयें अनन्त हैं और एक एक वस्तुकी शक्तियाँ भी अनन्त हैं। इस लिए संसारकी इन सब वस्तुओंकी मिलावटसे जो अनन्तानन्त प्रकारके कार्य उत्पन्न होते हैं उन सभीके कारणोंको समझना मनुष्यशक्तिसे परे है। बेचारे साधारण लोग तो यह मोटा सिद्धान्त भी नहीं समझ सकते हैं कि कोई कार्य बिना कारणके नहीं हुआ करता है और प्रत्येक कार्य्यका कारण संसारकी इन वस्तुओंमें ही मौजूद रहता है। अर्थात् वस्तु-स्वभावके अनुसार ही संसारके सब कार्य्य बनते हैं। वस्तु-स्वभावके विरुद्ध न तो कभी कोई कार्य्य हुआ है और न हो सकता है। इस लिए जब मनुष्य ऐसे कामोंको देखते हैं कि जिनका वे कारण

नहीं जान सकते हैं तब यही समझ लिया करते हैं कि ऐसी कोई गुप्त शक्ति अवश्य है जिसने वस्तुस्वभावके विरुद्ध यह कार्य्य किया है। यहाँतक कि नजरबन्दीका तमाशा करनेवाले अर्थात् अपने हाथकी चालाकीसे अद्भुत अद्भुत खेल दिखाकर पैसा माँगनेवाले मदारियों और जादूगरोंका तमाशा देखकर भी वे लोग यही कहा करते हैं कि कोई जादू-मंतर सिद्ध करके या किसी भूतप्रेतादिको वशमें करके उसकी शक्तिसे ही ये लोग ऐसे असंभव कार्य्य कर दिखलाते हैं। यही कारण है कि आफ्रिकादेशके हवशी आदि मूर्ख और जंगली मनुष्य मृत्यु तथा बीमारी आदिके भी देवता मान बैठे हैं और बलवान् मनुष्योंको खुशामद या भेट आदिसे राजी होता हुआ देखकर उक्त देवताओंको भी खुशामद तथा भेट आदिके द्वारा खुश करनेका प्रयत्न किया करते हैं।

ये जंगली मनुष्य जबतक रसोई बनाना, खेती करना आदि काम नहीं सीख जाते हैं और पशुओंकी तरह प्रकृतिसे पैदा हुई वस्तुओं पर ही अपना जीवन-निर्वाह करते हैं, तबतक तो केवल मृत्यु और बीमारीके देवताओंको ही मानते हैं, परन्तु जब थोड़ीसी उन्नति करके खेती आदि करने लगते हैं तब मृत्यु और बीमारीके देवताओंके सिवा अन्य कई प्रकारसे हानि पहुँचानेवाले और और देवताओंको भी मानने लगते हैं। जैसे कि जंगलमें आग लगकर सर्वनाश हो जानेके भयसे वे अग्निको एक भयानक देवता मानकर पूजने लगते हैं, फिर आँधीसे छप्पर आदिके गिर पड़ने और ओलोंसे खेती बर्बाद हो जानेपर आँधी और ओलोंके देवता भी मान लेते हैं। टिड्डियोंके आने और सारी खेतीके चर जानेपर वे टिड्डीदल भेजनेवाला एक देवता मान बैठते हैं और इसी तरह पानी बरसाने, खेती बढ़ाने, प्रकाश करने आदि अनेक कार्य्योंके अनेक देवता मानने लगते हैं और इन सबको उसी रीतिसे राजी रखनेकी कोशिश करते हैं

जैसे कि वे अपनेसे प्रबल और शक्तिसम्पन्न मनुष्योंको राज़ी रखनेके लिए किया करते हैं। अर्थात् हाथ जोड़ना, सिर नवाना, खुशामद करना, स्तुति गाना, मनुष्य और पशुआदिकी बलि देना, अर्थात् उन्हें मारकर उनका मांस चढ़ाना, आदि जिन जिन बातोंसे वे अपने समयके प्रबल मनुष्योंको खुश किया करते हैं उन्हीं सब बातोंसे अपने उन कल्पित देवताओंको भी खुश रखनेका प्रयत्न करते हैं।

यह पहले कह आये हैं कि मनुष्यमें बुद्धिविचार और आपसमें बातचीत करनेकी उत्तम शक्तियोंके साथ साथ क्रोध, मान, माया, लोभ आदि ऐसी शक्तियाँ भी हैं कि जिनके अत्यधिक बढ़ जानेपर मनुष्य अपनी बुद्धि और वचनशक्तिसे भी विरुद्ध काम लेने लग जाता है, अर्थात् झूठ फरेब आदि बुरे व्यवहारोंका व्यवहार करने लगता है। इसी कारण इन महामूर्ख जंगली लोगोंमें जो मनुष्य कुछ अधिक चालाक होते हैं वे इन भोले लोगोंको ठगनेके लिए किसी देवीदेवताके एजेण्ट बन बैठते हैं और कहने लगते हैं कि हमने अमुक देवताको अपनी भक्तिसे ऐसा प्रसन्न कर लिया है कि जब हम चाहते हैं तभी वह हमको दर्शन दे जाता है और जो कुछ हम कहते हैं वही करनेको तैयार हो जाता है। इसके सिवा हमने एक ऐसा मंत्र सिद्ध कर लिया है कि जिससे अमुक देवता हमारे काबूमें आ गया है और हमारी आज्ञाके अनुसार कार्य्य कर देता है। यही नहीं, ये चालाक लोग नवीन नवीन देवता भी बना लिया करते है और अपनी मायाचारीसे उन मूर्खोंके मनमें विश्वास जमा देते हैं कि अमुक देवताने रातको स्वप्नमें आकर मुझसे कहा है या अन्य किसी रीतिसे दरसाया है कि मैं यहाँ आकर महामारी या दुर्भिक्ष फैलाऊँगा, या इसी प्रकारकी अन्य कोई भयंकर बात, जो उस समय ठीक फबती हो, कह सुनाते हैं। ये चालाक लोग उस देवताका रूप भी ऐसा अद्भुत और भयंकर बतलाते हैं कि जिससे लोगोंको पूरा पूरा यकीन हो

जाय कि सचमुच ही वह देवता महाशक्तिशाली होगा। ये लोग उस देवताके अनेक हाथ पैर बतला कर, अद्भुत प्रकारका मुंह वर्णन करके और अद्भुत प्रकारकी सवारी पर आरूढ़ बतलाकर लोगोंके हृदय पर उसका ऐसा आतंक जमा देते हैं कि जिससे लोग तुरंत ही डर जाते हैं और उसे प्रसन्न करनेकी कोशिश करने लगते हैं। देवताके मनाने और भेंट चढ़ानेमें उन एजेण्टोंकी बतलाई विधिका अक्षरशः पालन किया जाता है और तब देवताके साथ साथ उनके एजेण्टोंकी भी खूब छनने लगती है।

अपनी तथा अपने देवताकी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिए ये चालाक लोग यह भी जाहिर करते रहते हैं कि अगर कोई दूसरा आदमी हमारे देवता या हमारे मंत्रको सिद्ध करना चाहे तो हम उसे भी सिद्ध करा दे सकते हैं। इस प्रकार बहुतसे लोगोंको अपने पीछे लगाकर और उनसे अपनी खूब सेवा कराके वे अपने देवता तथा मंत्रको सिद्ध करनेकी ऐसी कठिन विधि बतलाते हैं कि जिसकी साधना करना कठिन ही नहीं वरन् असंभव होता है। जैसे कि पौष मासके जाड़ेमें सारी रात नदीके बीचमें नंगे खड़े रहकर मंत्रका एक लाख जप करना, या किसी वृक्षके नीचे नंगी तलवार गाड़कर या खौलते हुए तेलका कढ़ाहा रखकर उसके ऊपर वृक्षकी डालीके आसरे उलटे लटकना और जप पूरा हो जानेपर उस रस्सीको काट देना जिसके सहारे डाली पर लटका गया हो। उस समय इस बातका कुछ भी भय न करना कि तलवार पर गिरकर मेरे दो टुकड़े हो जायेंगे या तेलके कढ़ाहेमें पड़कर मैं मर जाऊँगा। क्यों कि अगर पूरी श्रद्धासे काम किया जाय तो यह मंत्र उसे ज्योंका त्यों जीवित कर देगा। अथवा यह विधि बतलाते हैं कि नित्य आधी रातको अमुक भयानक स्थानमें जाकर इस मंत्रके इतने जाप करना और जाप पूरा होनेपर निःशंक होकर देवताके आगे अपना सिर काटकर चढ़ा देना। यदि पूरी श्रद्धाके साथ यह

काम किया जायगा तो कटे हुए सिरको देवता फिर जैसेका तैसा जोड़ देगा। ये चालाक लोग इस प्रकारकी अनेक असंभव विधियाँ बतलाते हैं और साथ ही उनको यह भय भी लगा दिया करते हैं कि मंत्रका जाप करते समय देवता लोग अनेक प्रकारके भयंकर रूप धारण करके साधकको डराया करते हैं और अनेक प्रकारसे उनके जापको भंग करनेकी चेष्टा किया करते हैं। उस समय यदि वह साधक ज़रा भी विचलित हो जाय या डर जाय, तो पागल हो जाता है या उसी समय मर जाता है। इसी प्रकार यदि मंत्रसिद्धिकी विधिमें भी कुछ फरक पड़ जाता है तो इसका भी ऐसा ही बुरा परिणाम होता है। मतलब यह है कि ये चालाक लोग मंत्रसिद्धिके विषयमें ऐसी ऐसी बातें बतला देते हैं जिससे कोई भी उसे सिद्ध करनेका साहस नहीं करता है। परन्तु अपने विषयमें यह कह दिया करते हैं कि हम तो ये सब विधियाँ सात सात बार कर चुके हैं और भारी भारी उत्पात सहन कर चुके हैं। तभी तो हमको ये सिद्धियाँ प्राप्त हुई हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनकी बतलाई हुई विधिके अनुसार साधना करनेका साहस तो कोई नहीं करता है, परन्तु उन चालाक लोगोंकी यह प्रसिद्धि अवश्य हो जाती है कि पुजारीजी या भगत-जीने बड़ी बड़ी कठिन साधनायें करके अमुक मंत्र या अमुक देवताको सिद्ध किया है। इस प्रकारकी प्रसिद्धिसे लोगोंकी श्रद्धा उन चालाक लोगोंपर और भी अधिक जम जाती है और फिर उनकी पूरी पूरी पूछताँछ होने लगती है।

देवताका इष्ट रखनेवाले ये भगत लोग यह भली भाँति जानते हैं कि जिस प्रकार हम अपनी चालाकीसे अमुक देवताके एजेण्ट बन बैठे हैं, वैसे ही दूसरे चालाक लोग भी किसी प्रचलित देवताके भगत बनकर या कोई नवीन देवता खड़ा करके लोगोंको अपनी तरफ खींच सकते हैं या हमारे देवताको झूठा और अपने देवताको

सच्चा सिद्ध करके लोगोंका मन हमारे देवताकी तरफसे हटाकर अपने देवताकी तरफ झुका सकते हैं, इस लिए वे बहुधा कहा करते हैं कि यदि कोई धूर्त हमारे देवताकी सचाई या उसके देवत्व पर कभी किसी प्रकारका संदेह करेगा या उसकी शक्तिको नहीं मानेगा, तो हमारा देवता कुपित होकर सारे देशका सत्यानाश कर डालेगा। इस कारण सब मनुष्योंको उचित है कि वे ऐसे धूर्तको देशमें न रहने दें, चाहे वह अपना सगा भाई भी क्यों न हो। क्यों कि उस एकका नाश होनेसे सारा देश तो सत्यानाशसे बचा रहेगा! बस, यहींसे धर्मके नाम पर मारकाट और खून खराबीकी बुनियाद पड़ती है और प्रचलित सिद्धान्तोंके विरुद्ध यदि कोई अपना नवीन श्रद्धान बनाता है तो उसकी जानका दुश्मन बन जानेकी परिपाटी चलती है।

पाठकोंको मालूम होगा कि हिन्दुस्तानकी स्त्रियाँ अपने बच्चोंका इलाज ऐसे ही लोगोंसे कराती हैं जो बहुधा नीच जातीय, अपढ़, महामूर्ख, अत्यन्त मायाचारी और बात बनानेवाले हुआ करते हैं। ये लोग झाड़-फूंक, जंतर-मंतर करते, गंडा ताबीज बाँधते और अट-कलपच्चू कुछ ओषधियाँ भी देते हैं। इस कारण बहुधा इन्हीं लोगोंकी बेवकूफीसे अनेक बच्चोंकी जानें जाया करती हैं। वे लोग भली भाँति जानते हैं कि बेचारी भोलीभाली और अपढ़ स्त्रियाँ जितनी हमारे बहकानेमें आ सकती हैं उतने मर्द नहीं आ सकते हैं। उनको सदैव यह भय लगा रहता है कि कहीं ये लोग अपने बच्चोंका इलाज हमसे न कराकर किसी वैद्य या हकीमसे न कराने लगें, इस कारण वे बहुधा स्त्रियोंसे कहा करते हैं कि इस बच्चेको आराम पहुँचानेके लिए हमने अपने इष्ट देवताकी बहुत कुछ आरा-धना की है और देवताने आराम कर देनेका वादा भी कर दिया है,

अथवा इस बच्चेको अमुक शीतला, मसान या पिशाच लगा हुआ है कि जिसके प्रसन्न करनेके लिए मैं बहुत कुछ कोशिश कर रहा हूँ, परन्तु यदि तुम्हारे घरके आदमी इसे किसी वैद्य या हकीमकी दवा खिला देंगे तो देवता नाराज हो जावेगा और तब वह हमारे हाथका नहीं रहेगा। इन लोगोंकी ऐसी ऐसी बातोंसे बेचारी भोली-भाली स्त्रियाँ बहुत डर जाती हैं और फिर उनके घरके आदमी चाहे लाख सिर पटकें, परन्तु वे उनको ओषधि नहीं खाने देती हैं। यदि लोगोंके कहनेसे वैद्य घर आकर दवा तैयार करके रख जाता है, तो वह ज्योंकी त्यों रक्खी रहती है और बच्चेको नहीं दी जाती है। ऐसी बातें प्राय नित्य ही घर घर देखी जाती हैं। जब बच्चेको आराम नहीं मिलता है तब उन लोगोंको यह कहनेका अवसर मिल जाता है कि हम क्या करें, तुम्हारे घरके लोगोंको तो देवतापर श्रद्धा ही नहीं है, इसीसे देवताकी नाराजी हो गई है। इन बातोंपर विश्वास करके स्त्रियाँ अपने मर्दोंकी मूर्खता पर दिल ही दिलमें कुढ़ा करती हैं और कभी कभी तो उनसे लड़ने झगड़ने तक लगती हैं। हिन्दुस्तानके चालाक लोगों और मूर्ख स्त्रियोंके इस दृष्टान्तसे यह बात भलीभाँति समझमें आ जाती है कि आफ्रिका आदि असभ्य देशोंमे देवताओंके पुजारी किस प्रकार अपने देशके भोले लोगोंको डरवा कर देवतापर शंका करनेवालोंके विरुद्ध खड़ा किया करते हैं और किस प्रकार सर्वसाधारणको उनकी जानका दुश्मन बना दिया करते हैं।

१५—अन्ध-विश्वास और विचार-शून्यता ।

आफ्रिका आदि देशोंके जंगली मनुष्य प्रत्येक आदमीके मर जानेपर यह मानने लगते हैं कि इस शरीरमें मरनेके पहले जो चीज़ बोलती चालती और शरीरको हिलाती–चलाती थी, वह यद्यपि इस शरीरमेंसे निकल गई है, परन्तु वह होगी यहीं कहीं। अर्थात् या तो वह अपने मकान या खेतमें होगी या किसी ऊँचे वृक्षादि पर निवास करने लगी होगी। इस प्रकार उनमें भूत-प्रेतादिकी कल्पना उत्पन्न होती है और अगर किसी सम्बन्धी या मित्रको वह मृत मनुष्य स्वप्नमें दिखाई दे जाता है तो फिर तो इस बातका पूरा यक़ीन हो जाता है कि वह भूतके रूपमें अवश्य ही मौजूद है। स्वप्नमें मृत मनुष्य प्रायः उसी रंगरूपमें और वैसे ही वस्त्राभूषण-सहित दिखाई देता है जिसमें कि वह जीवित अवस्थामें रहता था। इस लिए वे भोले लोग यह विचार तो करते नहीं हैं कि यदि वही मरा हुआ मनुष्य स्वप्नावस्थामें आता तो अपने पहले रंग रूप और पहले ही वस्त्राभूषणोंमें कैसे नजर आता; जब वह अपने शरीरसे अलग हो गया है उसमें उसके शरीरका रंग-रूप कैसे दिखाई दे सकता है, और वस्त्राभूषण भी जो कुछ वह पहिनता था जब सब यहीं छोड़ गया है, तब उन्हीं वस्त्राभूषणोंसहित कैसे दिखाई दे सकता है; इस लिए वह हमारी स्वप्नावस्थामें नहीं आता है, बल्कि जिस रूपमें वास्तवमें हमने उसको जीवित अवस्थामें देखा है उस अवस्थाकी याद आनेसे ही यह स्वप्न आता है। यदि वास्तवमें वह स्वप्नावस्थामें आता तो किसी ऐसे विलक्षण रूपमें दिखाई देता कि जिसको हमने पहले कभी न देखा होता। इसके सिवा वह बिना किसी वस्त्राभूषणके

बिल्कुल नग्नरूपमें ही नज़र आता। परन्तु इतनी विचार-बुद्धि न होनेके कारण वे लोग अपने स्वप्नके खयालहीको सच मान लेते हैं और यह समझने लगते हैं कि यह मृत मनुष्य ही भूत बनकर हमको स्वप्नावस्थामें दिखाई देता है।

पूर्वोक्त चालाक लोग जिस प्रकार देवी-देवताओंके पुजारी बनकर सर्वसाधारणको उनका भय दिखलाते रहते हैं और उनसे अनेक प्रकारके कार्य्य सिद्ध करा देनेकी आशायें दिलाते हैं, उसी प्रकार वे इन मरे हुए आदमियों अर्थात् भूत-प्रेतादिकोंकी भी अद्भुत अद्भुत शक्तियाँ बतलाकर उनका भय दिखलाते हैं और उनसे भी कार्य्य-सिद्धि करानेकी आशा दिलाते रहते हैं। यही नहीं, किसी जंत्र-मंत्र अथवा अपने सिद्ध किये हुए प्रबल देवताके द्वारा उन भूत-प्रेतोंको दबाने, धमकाने और वशमें करके उनसे काम लेने आदिकी अपनी शक्तियोंका भी यकीन दिलाकर भोले भाले लोगोंको लूटा करते हैं।

भोले लोग कार्य्य-कारणके सम्बन्धको नहीं जानते हैं, अर्थात् वे इस बातको नहीं पहिचान सकते हैं कि कौन कौन कार्य्य किन किन कारणोंसे बन और बिगड़ सकते हैं। इस लिए बेचारे प्रत्येक बातका कारण इन गुप्त शक्तियों, अर्थात् देवी-देवताओं और मरी हुई आत्माओं या भूत-प्रेतोंको ही मान लेते हैं, साथ ही ये मायाचारी पुजारी भी देवी-देवताओं और भूत-प्रेतोंकी बड़ी बड़ी शक्तियाँ बतलाकर उनको निश्चय करा देते हैं कि जो कुछ हानि-लाभ, रोग-शोक और सुख-शांति मनुष्यको मिलती है वह सब इन्हीं देवी-देवताओं और भूत-प्रेतोंके द्वारा मिलती है। इसके सिवा वे कहते रहते हैं कि अपने सुख-दुःख आदिका कोई अन्य कारण समझना मानों इन देवी-देवताओंकी अवज्ञा या अविनय करना है। इस लिए इन गुप्त शक्तियोंके सिवा किसी भी कार्य्यका अन्य कोई कारण नहीं समझना चाहिए; नहीं तो देवतालोग नाराज होकर सत्यानाश कर डालेंगे।

इस भयके कारण भी वेचारे भोले लोग अपने मनमें किसी वातका स्वतंत्र विचार नहीं करने पाते हैं। इस डरकी अवस्थामें यदि कभी किसी मनुष्यके मनमें कोई संदेह उत्पन्न हो जाता है और वह अपने संदेहको दूर करनेके लिए पूछने लगता है कि इन देवताओंकी शक्तिके सिवा संसारकी अन्य वस्तुओंमें भी तो कुछ न कुछ शक्ति अवश्य होगी और देवताओंकी शक्तिकी भी तो कोई सीमा अवश्य होगी, या वह इसी प्रकारका कोई दूसरा प्रश्न कर बैठता है, तो उसके प्रश्नको सुनकर सभी लोग काँप उठते हैं और उसे धर्म्मद्रोही और देवताओंको रुष्ट करनेवाला समझकर या तो उसे देशसे निकाल देते हैं या उसे जानहीसे मार डालते हैं।

इस देशमें तो आजकल भी वहुधा यह देखा जाता है कि गाँवके लोग और विशेष करके छोटी जातिके लोग सव प्रकारकी वीमारियों, दुःखों-कष्टों और हानियोंको देवी–देवताओं और भूत–प्रेतोंका ही प्रकोप समझते हैं और इन्हींमेंसे कुछ चालाक आदमी ऐसे भी निकल आते हैं जो किसी देवताके भगत वनकर अपने इष्टदेवकी कृपासे उन लोगोंके दुःखोंका कारण वतलाने लग जाते हैं। ये चालाक आदमी चाहे कितने ही मूर्ख क्यों न हों और नित्यके सांसारिक व्यवहारोंमें चाहे इनका एक रत्तीभर भी भरोसा न किया जाता हो, चाहे ये कैसे ही वदचलन और वदमाश क्यों न समझे जाते हों, तो भी भगतके नामसे पुकारे जाते हैं और ऐसा समझा जाता है कि किसी देवी–देवताका इष्ट होनेके कारण इनको अवश्यमेव कोई अद्भुत ज्ञान प्राप्त है कि जिसके द्वारा ये सबके सुख-दुःखोंके कारणोंको वतला देते हैं। लोगोंकी ऐसी धारणा भी रहती है कि ये अपने देवी देवताओंके द्वारा चाहे जिसको सुख-दुःख भी पहुँचा सकते हैं। यही कारण है कि सव लोग अपनी सव प्रकारकी चिन्ताओंमें इनके पास ज़ाते हैं और इनसे अपने

दुःखोंका कारण और उनकी निवृत्तिका उपाय पूछते हैं। ये लोग भी उनके लाये हुए उड़दके दाने देखकर या अन्य किसी रीतिसे बतलाने लगते हैं कि तुम्हारे इस दुःखका कारण अमुक देवी-देवता या भूत-प्रेतादिका प्रकोप है, या तुम्हारे किसी बैरीने तुम्हारे ऊपर कोई जबरदस्त जादू-मंतर कर दिया है। बस, भोले लोग उनकी बातों पर पूरा विश्वास कर लेते हैं और फिर उन्हींके बतलाये हुए मार्गके अनुसार उसका उपाय करने लगते हैं। इस देशके छोटी जातिके लोग प्रायः किसी भी बीमारीका इलाज नहीं करते हैं। सभी रोगोंमें देवताओंके प्रकोपको शान्त करनेके लिए जादू-मंतर, झाड़-फूंक और गंडा-ताबीज आदिके प्रयोग किया करते हैं। इससे चाहे उन्हें आराम हो या न हो; परन्तु देवताके अप्रसन्न हो जानेके भयसे न तो वे बीमारीका अन्य कोई कारण ही ढूंढ़ते हैं और न किसी तरहका इलाज ही कराते हैं।

बुखार, तापतिल्ली, सिरदर्द, थनेला (दूध पीते बच्चेके सिरकी चोटसे माताके स्तनका सूज जाना), बच्चोंके जिगरका बढ़ जाना, बच्चोंके पेटमें कीड़े हो जाना और फोड़े आदि अनेक प्रकारकी बीमारियोंके अलग अलग मंत्र हुआ करते हैं। इन बीमारियोंके होते ही प्रायः सभी लोग इन मंत्रोंके जाननेवाले गुनियोंके पास जाते हैं और उन्हींसे झड़ाते-फुंकाते हैं। परन्तु अब ज्यों ज्यों विद्याका प्रचार होता जाता है और लोगोंकी विचारशक्ति बढ़ती जाती है त्यों त्यों इन मंत्रोंकी शक्ति घटती जाती है और ये मंत्र झूठे पड़ते जाते हैं। और यह तो स्पष्ट ही है कि इन मंत्रोंकी जितनी शक्ति गाँवोंमें है उतनी कस्बोंमें नहीं है और जितनी कस्बोंमें है उतनी शहरोंमें नहीं है। इस प्रकार ज्यों ज्यों विद्याका प्रकाश बढ़ता जायगा त्यों त्यों इन मंत्रोंकी शक्ति अंधकारकी नाईं लुप्त होती चली जायगी।

मंत्र-तंत्र और देवी-देवताओंके अनुयायी केवल ज्वरादि बीमारियोंके लिए ही मंत्र-तंत्र नहीं कराते हैं, बल्कि साँप, बिच्छू, बर्र-ततैया आदि जहरीले जानवरोंके काटनेपर उनका जहर भी मंत्रोंके ज़ोरसे ही उतरवाते हैं और अन्य भी अनेक प्रकारके काम इन्हीं मंत्रोंसे कराते हैं। हिन्दुस्तानके बहुतेरे लोगोंको विशेष करके स्त्रियों और अनपढ़ोंको तो देवी-देवता, भूत-प्रेत और जंत्र-मंत्रोंपर इतनी भारी श्रद्धा है कि उनको इतना विचार करनेका भी साहस नहीं होता कि यह देवता हमारे धर्म्मका भी है या नहीं। उनके सामने चाहे जिस किसी देवी-देवता या भूत-प्रेतका नाम ले दिया जाय, जंगलके झाड़-झूड़ पत्थर आदि चाहे जिस पदार्थको देवता कह दिया जाय, वे उसीकी पूजा करनेके लिए तैयार हो जाते हैं। उनके हृदयमें देवी-देवता आदिके प्रकोपसे सर्वनाश हो जानेका ऐसा भारी भय बिठा दिया गया है कि जिससे उनको इस बातके विचार करनेका साहस ही नहीं होता है कि यह देवता भूत-प्रेत या गंडा-तावीज हमारे धर्मका है या ऐसे धर्म्मका है कि जिसे हम बिलकुल झूठ और नरककी ओर ले जानेवाला समझते हैं। इसी कारण हिन्दूलोग मुसलमानोंकी कब्रों और उनके पीरोंको पूजते हैं, उनके धर्म्मके गंडे तावीज बनवाकर गलेमें बाँधते हैं, उनके धर्मके जंतर-मंतर कराते हैं और आसानीसे बच्चा पैदा हो जानेके वास्ते उनके कल्मेका रुपया पानीमें धोकर बच्चा जननेवाली स्त्रीको पिलाते हैं।

देवी-देवता, भूत-प्रेत और जंत्र-मंत्रोंको माननेवाले इन लोगोंके सामने यदि कोई मनुष्य उनकी इस मान्यतापर किसी प्रकारकी शंका करने लगता है तो वे उनकी बातपर ध्यान देनेके बदले काँप उठते हैं, इस लिए कि कहीं वह देवता या जंतर-मंतरकी शक्ति जिसके विषयमें यह मनुष्य शंका कर रहा है हमसे इस कारण नाराज न हो जावे कि तुमने हमारे विरुद्ध इस मनुष्यकी बातको

सुना ही क्यों ? इस कारण यदि इन लोगोंमें बल होता है तो शंका करनेवालेको धमकाकर चुप कर देते हैं और यदि निर्बल होते हैं तो स्वयं ही हट जाते हैं। स्त्रियाँ तो इस प्रकारकी बात उठते ही डरकर कहने लगती हैं—" वारी मैं उसके नाम पर, उसकी जागती जोतकी शक्ति तो अपरमपार है, उसका नाम लेनेसे ही बेड़ा पार है।"

इस प्रकार जब यहाँ आजकल भी देवी देवताओंके नाराज हो जानेका इतना भय फैला हुआ है कि जिसकी बजहसे विचारशक्तिको जरा भी काम नहीं करने दिया जाता है, तब आफ्रिका आदि देशोंके निवासियोंका तो–जहाँ अभी सभ्यताका आरंभ हो रहा है–कहना ही क्या है। वे बेचारे तो बिल्कुल विचारशून्य होकर अत्यन्त श्रद्धालु बने हुए हैं। उनके श्रद्धानके विरुद्ध यदि कोई जरा भी शंका उठाता है तो वे उसकी जानके दुश्मन हो जाते हैं और उसे मार ही डालते हैं।

इस प्रकार इन देवी-देवताओं, भूत-प्रेतों और जंत्रों-मंत्रोंकी अपार शक्ति मानने और उनके नाराज़ हो जानेके भयसे पूरी पूरी विचार-शून्यता फैलती है और विवेकसे काम लेनेवालोंको धर्मद्रोही मानकर उनके विरुद्ध धर्म्मयुद्ध ठाननेकी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, जिससे उन्नतिके मार्गमें बड़ी भारी रुकावट खड़ी हो जाती है।

१६—विचारवान् साहसी पुरुषोंके द्वारा उन्नतिके मार्गका खुलना ।

मनुष्य विचारशून्य रहनेकी चाहे जितनी कोशिश करे, परन्तु आखिर वह मनुष्य ही है—उसमें विचारशक्तिका होना एक स्वाभाविक गुण है । इस कारण जब वह एक कार्य्यको बारंबार एक ही प्रकारके कारणोंसे होता हुआ देखता है तब उसके मनमें आप-ही-आप यह विचार पैदा होता है कि यह कार्य्य किसी गुप्तशक्तिकी इच्छा पर निर्भर नहीं है, बल्कि अमुक अमुक कारणोंके जुट जानेसे बना हुआ मालूम होता है । जब वह देखता है कि गेंहूँ बोनेसे ही गेंहूँ पैदा होता है, बिना गेंहूँ बोये कभी गेंहूँ उत्पन्न नहीं होता है, तब उसके हृदयमें आप-ही-आप यह संदेह उठता है कि देवताओंकी शक्ति ऐसी अपरिमित नहीं मालूम होती है कि वह गेंहूँके बीजके बिना गेंहूँ पैदा कर दे । इसी प्रकार जब वह देखता है कि कुत्ता बिल्ली, भेड़ बकरी, घोड़ा बैल आदि पशु और मनुष्य सब अपनी अपनी जातिके पुरुषके वीर्य्य और स्त्रीके रजसे पैदा होते हैं तब उसके हृदयमें यह विचार पैदा होता है कि इन कारणोंके बिना किसी देवतामें बच्चा पैदा करा देनेकी शक्ति नहीं है । इसी प्रकार जब वह देखता है कि सूर्य नित्य ही कुछ समयके बाद छिप जाता है और नित्य ही कुछ समयके बाद निकल आता है, तब उसको संदेह होने लगता है कि यद्यपि सूर्य महान् शक्तिशाली देवता है और सारे संसारको प्रकाशित करता है, परंतु वह भी ऐसा नहीं है जो हमारी प्रार्थना और भेंट-पूजासे खुश होकर ही निकलता हो या हमसे रुष्ट होकर छिप जाता हो । चाहे हम उसकी पूजा करें या न करें, वह नित्य ही नियत समय पर इसी प्रकार निकलता और छिपता रहेगा ।

इसी प्रकार और भी अनेक बातें मनुष्यकी विचारशक्तिके कारण उसके मनमें पैदा होती रहती हैं । यद्यपि देवताके कुपित हो जानेका डर उसको इस प्रकारके विचार मनमें लानेसे रोकता रहता है और वह इस प्रकारके विचारोंको दूर करनेकी कोशिश भी करता रहता है; परन्तु मनुष्यकी विचारशक्ति इस प्रकार दबानेसे बिलकुल नाश नहीं हो जाती है, वह कुछ न कुछ काम करती ही रहती है । यही कारण है कि उन मनुष्योंमे कुछ ऐसे तीक्ष्णबुद्धि और विचारशील मनुष्य भी अवश्य पैदा हो जाते हैं जो लाख दबाने पर भी अपनी विचारशक्तिको नहीं दबा सकते हैं और धीरे धीरे वस्तुस्वभाव और कार्य्य-कारणके अटल सम्बन्धको जान जाते हैं । परन्तु अपने विरोधियोंके हाथसे मारे जाने या भारी विरोध खड़ा हो जानेके भयसे वे अपने इन विचारोंको अपने मनमें ही छिपा रखते हैं—किसीसे कहनेका साहस नहीं करते हैं; बल्कि प्रयत्क्षमें उन्हीं सिद्धान्तों और मन्तव्योंका पोषण करते रहते हैं जो सर्वसाधारणको मान्य होते हैं । इन कायरोंके ऐसे मायाचारसे मनुष्यजातिकी उन्नतिमें बड़ी ही रुकावट पड़ती है । क्यों कि इनकी तीक्ष्णबुद्धि और विचारशक्ति अन्य संसारी कामोंमें प्रकट होते रहनेसे साधारणलोग इनको अपनेसे अधिक बुद्धिमान् समझने लगते हैं और जब वे इन बुद्धिमान् कायरोंको प्रचलित सिद्धान्तोंका ही पालन और समर्थन करते देखते हैं, तब अपने मनमें विचार करने लगते हैं कि हमारे मनमें प्रचलित सिद्धान्तोंके विषयमें जो संदेह उत्पन्न हुआ है वह हमारी बुद्धिकी कचाई ही है । क्यों कि अगर हमारे इन नये विचारोंमें कुछ भी तथ्य होता तो इन बुद्धिमान् पुरुषोंके मनमें तो हमसे पहले ही ये विचार उत्पन्न हुए होते और ये कदापि इन प्रचलित सिद्धान्तोंका समर्थन न करते ।

इस प्रकार यद्यपि इन विचारवान् पुरुषोंकी कायरतासे मनुष्यजातिको बहुत हानि पहुँचती रहती है और बहुधा ऐसे सैकड़ों कायर

पुरुष पृथ्वीपर पैदा होते रहते हैं, परन्तु सौ दो सौ या हजार पाँचसौ वर्षमें कोई न कोई ऐसा साहसी पुरुष भी निकल आता है जो इन विचारोंको अपने मनमें छिपाये रखनेसे मनुष्य-जातिकी बहुत भारी हानि समझता है और इसी लिए वह अपने विचार सर्वसाधारणमें प्रकट किये बिना नहीं रहता है। यह अधिक नहीं तो साहस करके इतनी बात हो कह ही डालता है कि इन देवी-देवताओं, भूत-प्रेतों और जंत्र-मंत्रोंकी शक्ति ऐसी अनन्त नहीं है जो कारण न जुटनेपर भी किसी कार्य्यको उत्पन्न कर दे। इस लिए जो कार्य्य जिन जिन कारणोंसे होते हैं उन कारणोंके जुटाये बिना देवताओंसे उन कार्य्योंके सम्पन्न करा देनेकी प्रार्थना करना या जंत्र-मंत्र कराना बिलकुल व्यर्थ है। इसी प्रकार कार्य्य सिद्ध न होनेपर यह समझना भी बिलकुल गलत है कि देवताको राजी करने या जंत्र-मंत्रको सिद्ध करनेकी विधिमें कोई फर्क रह गया है। ऐसे मौकेपर यही समझना चाहिए कि कारणोंके जुटानेमें कुछ फर्क रह गया होगा जिससे यह कार्य्य नहीं बना है। क्यों कि देवता उसीके कार्य्यको बना सकते हैं जो उस कार्य्यके कारणोंको पूरा पूरा जोड़ देता है। अँगरेजीमें एक कहावत प्रसिद्ध है—"The God helps those who help the mselves." अर्थात् परमेश्वर उन्हींकी सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं। इसका भावार्थ यह है कि जो मनुष्य अपने कार्य्यके कारणोंको जुटाते हैं उन्हींका कार्य्य सिद्ध होता है। फारसीमें भी एक ऐसी ही कहावत है जिसका भावार्थ यह है कि मनुष्य जिस कार्य्यकी कोशिश करता है ईश्वर भी उसीमें सहायता पहुँचाता है। गरज यह कि जिस कार्य्यके कारण जुटाये जावेंगे परमेश्वर वही कार्य्य सिद्ध कर देगा, अर्थात् कारणोंके जुटनेसे कार्य्य आप ही हो जायगा।

ऐसे विचारशील साहसी पुरुषोंके प्रकट होनेसे यद्यपि लोगोंमें बड़ी खलबली मच जाती है, और तात्कालीन पुजारी और पंडे या

धर्मात्मा और धर्मके ठेकेदार लोग उनके विरुद्ध बहुत शोर गुल मचाते हैं और उन्हें धर्मद्रोही तथा नास्तिक आदि कह कर उनका तिरस्कार करते हैं, बल्कि कभी कभी तो उन्हें मार डालनेके लिए तलवारें तक उठाते हैं और बहुधा ऐसे साहसी पुरुष मार भी डाले जाते हैं; परन्तु इससे मनुष्यजाति कुछ आगेको अवश्य सरक जाती है। क्योंकि लोगोंके भयसे कोई मुंहसे कुछ भी कहता रहे, परन्तु उस साहसी पुरुषकी बात सबके हृदयमें चुभ जाती है और धीरे धीरे वह हृदयमें घर कर लेती है। ऐसी दशामें बहुधा लोग छिपे छिपे इन बातोंकी सत्यताका अनुभव करने लगते हैं और इस प्रकार कुछ समयके पश्चात् वह अंधश्रद्धा भी धीरे धीरे लोगोंके हृदयसे दूर होने लगती है। उनको विश्वास हो जाता है कि कोई भी कार्य्य बिना कारणोंके जुटे कभी सिद्ध नहीं हो सकता है।

ऐसा होनेसे मनुष्यजाति अंधश्रद्धाके गहरे गड्ढेसे निकल कर उन्नतिकी ओर अग्रसर होने लगती है। क्योंकि अब उसको प्रत्येक कार्य्यकी सिद्धिके लिए एक मात्र देवकृपाके भरोसे नहीं बैठा रहना पड़ता है, बल्कि प्रत्येक कार्यके कारणोंकी खोज करके और उन कारणोंको मिलाकर अपना कार्य स्वतः सँभालना पड़ता है। अर्थात् वह पशु-जीवनसे मनुष्य-जीवनमें आ जाता है। पशु अपने प्रत्येक कार्य्यके लिए प्रकृतिके भरोसे पर बैठे रहते हैं और स्वयं कोई भी कार्य्य नहीं करते हैं, अर्थात् न तो वे अपने कार्योंके कारणोंको ही जानते हैं और न उन कारणोंके मिलानेकी ही कोशिश करते हैं। वे तो पृथ्वीपर जो कुछ आप ही आप पैदा हो जाता है उसी पर अपना जीवन-निर्वाह करते रहते हैं। इसी प्रकारका पशु-जीवन उन मनुष्योंका भी समझना चाहिए जो न तो अपने कार्योंके कारणोंकी खोज ही करते थे और न उन कारणोंको मिलाते थे, बल्कि प्रत्येक कार्य्यके लिए देवताओंसे प्रार्थना करने या जादू-मंतर करनेके सिवा

और कुछ नहीं करते थे। परंतु अब उस एक परोपकारी साहसी पुरुषकी बदौलत लोगोंकी प्रवृत्ति बदल जाती है और वे अंधश्रद्धासे मुक्त होकर विचारशीलतासे काम लेने लग जाते हैं, अर्थात् अपने कार्य्योंके कारणोंको ढूंढ़कर और उनको जोड़ कर अपने अनेक कार्य्य सिद्ध करने लगते हैं।

जिस देशमें जिस समय ऐसे विचारशील और साहसी मनुष्य अधिक होते हैं जो अपनी जानपर खेलकर सर्वसाधारणको जगाते और समझाते हैं कि अमुक अमुक कार्य्यके लिए अमुक अमुक कारणोंके जुटानेकी आवश्यकता है, इन कारणोंके जुटाये बिना केवल देवी-देवताओंकी खुशामद या मंत्र-जंत्रके भरोसे कुछ नहीं होगा; उस समय उस देशके निवासी एक बड़े भारी अँधेरेसे निकलकर उन्नतिके प्रकाशमें आ जाते हैं और प्रत्येक कार्य्यके कारणोंको ढूंढ़ ढूंढ़ कर उन्हें सिद्ध करने लगते हैं। इसके विरुद्ध ऐसे साहसी, विवेकी और परोपकारी महात्माओंके अभावमें उन्नत देश भी नीचे गिर जाता है और उस देशका सारा कारोबार विगड़ जाता है। यूरोप जो आजकल सबका शिरोमणि और रक्षक बना हुआ है वह ऐसे ही महात्माओंकी बदौलत इस उन्नत दशाको पहुँचा है जो अपने उन्नत और स्वतंत्र विचारोंके द्वारा कार्य-कारणके अटल नियमोंको सर्वसाधारणके सम्मुख रख कर सदैव उनको आगे सरकाते रहे हैं और धर्मगुरुओं तथा पुजारियोंकी कृपासे मारे जाते रहे हैं।

एक समय यह भारतवर्ष भी वस्तुस्वभावकी खोज करनेवाले बड़े बड़े दार्शनिकोंकी कृपासे उन्नतिके शिखरपर पहुँच चुका था, परन्तु अब कुछ दिनोंसे ऐसे लोगोंके कारण फिर निम्न स्थितिमें पहुँच गया है कि जिन्होंने भाग्य, होनहार या ईश्वरेच्छाको महान्शक्ति बतलाकर अपने देशवासियोंको पुरुषार्थहीन बनाकर खुल्लमखुल्ला यह सबक पढ़ाया है कि अपने किये कुछ नहीं होता है, जो करता है सो पर-

मेश्वर ही करता है। इन नवीन धर्म्माचार्य्योंकी ही बदौलत हिन्दुस्तानमें इस प्रकारकी कहावतें प्रसिद्ध हो गई हैं कि " होनहार अमिट है " " भाग्यके आगे किसीका कुछ वश नहीं चलता " " जब वह देनेको आता है तब छप्पर फाड़कर देता है " " होयँगे दयाल तब देयँगे बुलायके " इत्यादि। इन कहावतोंसे उनकी अकर्मण्यता और परवशताका भाव भलीभाँति लक्षित होता है।

लोगोंको अंधा बनाकर अपना स्वार्थ साधनेवाले लोगोंने हिन्दुस्तानियोंके हृदयसे वस्तु-स्वभावका खयाल और कार्य्यकारण-वादके अटल सिद्धान्तको बिलकुल निकाल डालनेके लिए ऐसी ऐसी कपोलकल्पित कथायें रच-रचकर खड़ी की हैं कि जो वस्तुस्वभावके बिलकुल विपरीत हैं। जैसे-(१) किसी स्त्रीके लड़कियाँ ही लड़कियाँ पैदा होती थीं। जब उसके सात लड़कियाँ पैदा हो चुकीं तब उसके पतिने नाराज होकर उसको घरसे निकाल दिया। उस स्त्रीको एक साधु मिल गया जिसकी कि उसने खूब मन लगाकर सेवा की। एक दिन साधुने प्रसन्न होकर उस स्त्रीसे कह दिया—जा, तेरी सब लड़कियाँ लड़के बन गई हैं। स्त्रीने घर आकर देखा तो वे सब वास्तवमें लड़के बन गई थीं। (२) एक साधुके शापसे कोई राजा एक वर्षके लिए स्त्री बन गया और उसके गर्भसे एक बच्चा भी पैदा हुआ। वर्ष पूरा होते ही वह फिर पुरुषका पुरुष बन गया। (३) एक साधुकी शापसे एक साहूकारका सारा धन कोयला हो गया और एक साधुकी अशीषसे एकके घर कोयलेकी अशर्फियाँ बन गईं। (४) एक साधुके कहनेसे एक किसानके खेतमें गेहूँकी जगह मोती ही मोती पैदा हुए और एकके खेतमें अनाजकी जगह साँप बिच्छू और बर्रे ततैयाँ। (५) देवताकी कृपासे महाप्रचंड अग्निकी जगह जलका सरोवर बन गया और दहकते हुए अंगारोंकी जगह उसमें सुंदर कमल खिल गये। (६) एक मुर्दा जिन्दा होकर राम राम कहता हुआ

उठ खड़ा हुआ। (७) शत्रुकी तलवार फूलोंका हार बन गई। गरज, कहाँ तक लिखें, कुछ दिनोंसे इस भारतवर्षमें ऐसा भारी अन्धेर फैला दिया गया है कि दार्शनिक सिद्धान्तोंपर बड़ी बड़ी बारीक बहस करनेवाले और बालकी खाल निकालनेवाले विद्वान् भी इस प्रकारकी अप्राकृतिक कहानियोंपर विश्वास रखते हैं और इनको सत्य बतलानेमें जरा भी नहीं शरमाते हैं।

इस प्रकार जबसे हिन्दुस्तानके लोगोंने वस्तु-स्वभाव और कार्य्य-कारणके अटल नियमको भुला दिया और देवी-देवताओंकी अलौकिक शक्तियों तथा जंत्रों-मंत्रोंके असम्भव-प्रभावोंपर भरोसा करके अपने कार्य्यकी सिद्धिके लिए कारणोंका जुटाना छोड़ दिया, अर्थात् पुरुषार्थहीन होकर कोयलकी तरह 'तूही तूही' पुकारने लगे, तबसे उनके सभी कार्य्य मटियामेट हो गये और तभीसे उनको उन पड़ौसके देशोंके मुसलमानोंने अपना गुलाम बना लिया जिनको ये अपने झूठे घमंडमें आकर म्लेच्छ कहा करते थे। उन मुसलमानोंने इनके मंदिरोंको तोड़कर और मूर्त्तियोंको फोड़कर उस जगह अपनी मसजिदें बनवाई और नित्य सवा लाख जनेऊ तोड़नेकी आज्ञा जारी कर दी। उस समय न तो इनके असंभवको संभव कर देनेवाले अनन्त-शक्तिसम्पन्न देवताओंसे कुछ हो सका और न वे सब भगत पुजारी, साधु संन्यासी और सन्त महन्त ही कुछ कर सके जिनका पहले भारी रौब था, जिनके पेशाबमें दिया जलता था, जो आकाशगामी कलाके द्वारा पलभरमें कहींके कहीं पहुँच जाते थे, कुछसे कुछ कर दिखलाते थे, जिनके प्रभावसे समुद्र सूख जाते थे जो अपनी एक दृष्टिमात्रसे सूर्य और चन्द्रमाकी चालको भी बदल देते थे, और जिनकी इच्छाओंको पूर्ण करनेके लिए स्वयं त्रिलोकीनाथ भी दासोंकी नाईं उनके द्वारपर खड़े रहते थे। इसी प्रकार बड़े बड़े जादू और जंत्र-मंत्र भी—जिनके द्वारा विषधर सर्प वशमें किये

जाते थे, अनेक अघट कार्य्य क्षणभरमें कर दिखलाये जाते थे, भूत-प्रेतादि काबूमें किये जाते थे और मूठ मारकर दूर बैठे हुए बैरीको मार सकते थे—मुसलमानोंके जुलमके सामने कुछ भी न कर सके। अन्तमें यह हुआ कि जिनकी नाक पर कभी मक्खी भी नहीं बैठने पाती थी और जो किसी म्लेच्छकी परछाईं पड़ जानेसे तीन बार स्नान करते थे, वे ही धुजाधारी राज-पूत अपनी कन्याओंको मुसलमानोंको समर्पित करके उनसे मिले और उनके दास बनकर अन्य राजपूत भाइयोंसे लड़कर हिन्दूराज्योंको विध्वंस करके इस पुण्यभूमिकी कीर्त्ति अमर कर गये।

यह सब-कुछ हुआ, परन्तु फिर भी वे सब देवी देवता अपने पुजारियोंकी कृपासे अपनी महान् अलौकिक शक्तियोंके साथ ज्योंके त्यों पूजनीय बने रहे। भक्तलोग उनको अपनी पहली ही श्रद्धाके साथ पूजते और अपने सब कार्य्य उन्हींकी कृपाके भरोसे रखते रहे। इसके सिवा अनेक जोगी जंगम, साधु संत भी नाना प्रकारके रूप धारण करके डेढ़ गजका चमीटा खड़काते हुए तथा लाल लाल आँखें करके अपनी अद्भुत शक्तियोंकी बानगी दिखाते हुए घर घर घूमते रहे और इन्हींकी अप्राकृतिक शक्तियोंके द्वारा गृहस्थोंके सारे कार्य सिद्ध होनेकी कोशिशें होती रहीं; साथ ही जादू टोनेवालोंके जंत्र-मंत्र भी उसी प्रकार काम करते रहे और वे भी असम्भवको सम्भव करके दिखलाते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि इस देशके लोग और भी नीचे गिर गये और इनकी देखादेखी मुसलमान भी पुरुषार्थहीन और विषयासक्त होकर अपने पीरोंकी कबरें पूजनेमें लग गये, या अपने फकीरोंके मुरीद होकर उनकी दुआके भरोसे बिलकुल बेफिकर हो गये। यही नहीं; वे जंत्रों मंत्रों पर भी श्रद्धा करके और ताबीजोंका एक लम्बा कंठा गलेमें डालकर निश्चिन्त हो रहे और हिन्दुओंके ही समान भाग्यवादी बनकर अपना सर्वस्व खो

बैठे। अंतमें वे भी परम पुरुषार्थी अँगरेजोंको अपना सब राज पाट सौंपकर अपने हिन्दू भाइयोंकी श्रेणीमें आ गये और अकर्मण्य बनकर जरा जरासी वातों और एक एक सुईके लिए विदेशियोंके मोहताज बन गये।

इस सारे कथनका सार यह है कि वस्तुस्वभाव और कार्य-कारण-सम्बन्धको बतलानेवाले साहसी पुरुषोंके प्रयत्नसे ही यह मानव-जाति उन्नतिकी ओर पग बढ़ाती है, परन्तु उनका उपदेश प्रचलित देवी-देवताओंके विरुद्ध होनेके कारण वे उन्हीं देवी-देवताओं और जंत्र-मंत्रोंके माननेवाले लोगोंके हाथसे धक्के खाते हैं और मारे जाते हैं कि जिनकी भलाईका वे बीड़ा उठाते हैं। इसके विपरीत यह मानवजाति उन धर्मगुरुओं, पुजारियों और भगतोंकी खूब पूजा करती है-उनके आगे मस्तक झुकाती है जिनके कारण वह पशुश्रेणीमें गिनी जाती है और जो देवी-देवताओं तथा जंत्रों-मंत्रोंकी अपार शक्ति बतलाकर मनुष्योंको उन्हीं पर भरोसा करनेका उपदेश देते हैं और उन्हें विचारशून्य तथा पुरुषार्थहीन बनाकर नीचे गिराते हैं।

१७--अनेक धर्मोंकी उत्पत्ति ।

समय समयपर विचारवान् साहसी पुरुष उत्पन्न होते रहते हैं और उनके प्रकट किये हुए स्वतंत्र विचारोंसे मनुष्यजाति वस्तुस्वभावको जानने, कार्योंके कारणोंको ढूंढ़ने और तदनुसार कारणोंको जुटा कर अपने कार्योंको सिद्ध करनेकी ओर झुकती रहती है। इस तरह वह नवीन नवीन कारणोंको मालूम करके दिन पर दिन उन्नति करती जाती है। यद्यपि जब जब भी किसी साहसी पुरुषने अपने स्वतंत्र विचार प्रकट किये है, तब तब ही धर्मके ठेकेदारोंने उनका विरोध किया है, सर्वसाधारणको उनके विरुद्ध भड़काकर महा उत्पात मचवाया है, और मनुष्य-जातिकी उन्नतिमें बहुत कुछ रोड़ा अटकाया है, तो भी यदि जलदी जलदी नहीं तो कभी कभी अवश्य ही ऐसे साहसी पुरुष पैदा होते रहे हैं जो अपनी जानपर खेलकर मनुष्यको आगे बढ़ाते और विचारवान् बनाते रहे हैं, अर्थात् वे अपनी विचारशक्तिसे काम लेना सिखाते रहे हैं और स्वतंत्रताका पाठ पढ़ाते रहे हैं। इन्हीं सच्चे परोपकारी पुरुषों या अवतारोंकी बदौलत मनुष्यजाति इतनी उन्नति कर लेती हैं कि अब उसके मनमें यह विचार उठने लगता है कि इस संसारमें भिन्न भिन्न प्रकारकी अनेक वस्तुयें होती हैं। जैसे एक तो मनुष्यादिक जिनमें जान है और जो अपनी इच्छानुसार चलते फिरते हैं, दूसरे मिट्टी, पत्थर, लोहा, लकड़ी आदि वे पदार्थ जिनमें जान नहीं है, तीसरे सूर्य चन्द्र, नदी नाले, आँधी ओले, वर्षा बीमारी और मृत्यु आदिके देवता। इनके सिवा और भी कई प्रकारकी चीजें नजर आती हैं, परंतु ये सब अपने नियमित स्वभावके अनुसार ही काम करती हैं। इस कारण इन सबको पैदा करनेवाला, इनको

भिन्न भिन्न प्रकारकी नियमित शक्ति देनेवाला और इनका पृथक् पृथक् रीतिसे चलानेवाला 'कोई एक' अवश्य ही होगा। अर्थात् अब उसको एक परमेश्वरका खयाल आने लगता है। परंतु देवताओंके प्रकोप और सर्वसाधारणके विरोधके डरसे वे लोग पहले अपने इस खयालको सर्वसाधारण पर प्रकट करनेका साहस नहीं करते हैं, एक तरहसे उसे भुलाये ही रहते हैं।

परंतु मनुष्यकी विचारशक्ति उसका एक स्वाभाविक गुण होनेके कारण लाख दबाने और भुलाने पर भी यह खयाल उसके मनमें आन्दोलन मचाता ही रहता है और यद्यपि भयके कारण इस खयालके पकनेमें सैकड़ों वर्ष लग जाते हैं, फिर भी वह दिन पर दिन प्रौढ़ ही होता जाता है। इसके बाद कभी कोई मनुष्य साहस करके बहुत गुप्तरीतिसे अपने किसी बहुत प्रिय और विश्वस्त मित्रको उक्त खयाल सुनाता है। आखिर होते होते दस बीस और पचास मनुष्य ऐसे हो जाते हैं जिनको यह खयाल पसंद आ जाता है और वे आपसमें इस विषय पर चर्चा करने लग जाते हैं। इसके उपरान्त वे लोग अपनेमेंसे किसी अधिक साहसी और विद्वान पुरुषको एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वरका उपदेश देनेके लिए खड़ा कर देते हैं। जिस समय उक्त साहसी पुरुषने अपना एक परमेश्वरविषयक खयाल लोगोंपर प्रकट किया होगा उस समय अवश्य ही एकदम बड़ा भारी उपद्रव खड़ा हो गया होगा। उस समयके संत, महंत, धर्मात्मा, पुजारी और भगत लोग भड़क उठे होंगे, धर्मयुद्धका बीड़ा उठाया गया होगा और देवी-देवताओंके कुपित हो जानेके भयसे चारों ओरसे मारो मारो—धर्मविद्वेषियोंको मारो, की आवाज आने लगी होगी। ऐसी दशामें उन चालीस पचास मनुष्योंमेंसे भी जो कायर डरपोक होंगे सर्व साधारणमें मिल गये होंगे और उस बेचारे अगुआके साथ दो चार आदमी ही नजर आते होंगे। लाचार, उस अगुआ पुरुषको अपनी

रक्षाके लिए अनेक प्रकारके मायाचार और युक्तियोंसे काम लेना पड़ता है और वह अपनेको परमेश्वरका प्यारा प्रकट करके कहने लगता है कि "मुझे परमेश्वरने स्वप्नमें दर्शन देकर या साक्षात् प्रकट होकर आदेश दिया है कि अबतक मुझ परमेश्वरको न माननेके कारण ही लोगोंके अनेक कार्य बिगड़ते रहे हैं। अब जो कोई मुझको मानेगा उसके सारे कार्य अवश्य ही सिद्ध होते रहेंगे और जो नहीं मानेगा उसका सर्वनाश हो जायगा। इसके सिवाय मेरे इस प्यारे भगतके साथ जिसके द्वारा मैं प्रकट हुआ हूँ, जो कोई किसी प्रकारका दंगा-फसाद करेगा वह बहुत ही ज्यादा नुकसान उठावेगा और जो इसकी सहायता करेगा वह मेरी कृपाका पात्र बन जायगा।" इसके साथ साथ वह लोगोंकी यह तसल्ली भी करता रहता है कि जिन देवी-देवताओंको तुम इस समय मान रहे हो उनका मैं निषेध नहीं करता हूँ और न उनके मानने-पूजनेको ही मना करता हूँ, बल्कि मैं उन्हींके साथ साथ उसके सबसे बड़े अफसर अर्थात् एक परमेश्वरके पूजनेकी सलाह देता हूँ कि जिसकी पूजाके बिना अभीतक तुम्हारे सब कार्य्य बिगड़ते रहे हैं। ऐसी बातोंको सुनकर लोगोंको बहुत बड़ी शंका उत्पन्न हो जाती है और आहिस्ता आहिस्ता लोग उसके साथी होने लगते हैं। फिर बढ़ते बढ़ते दो दल हो जाते हैं। अर्थात् एक तो पहले पुजारियोंका दल जो केवल पुराने देवी-देवताओंको ही मानता है और उन देवताओंके अफसर अर्थात् परमेश्वरको स्वीकार नहीं करता है, और दूसरा नवीन दल जो पुराने देवी-देवताओंको पूजनेकी भी सलाह देता है और उन सब देवताओंके मालिक एक परमेश्वरको भी स्वीकार करता है।

पुराने दलवालोंकी ओरसे पूरी पूरी खींचातानी और विरोध होनेके कारण इन दोनों दलोंमें बड़ी भारी शत्रुता उत्पन्न हो जाती है, यहाँ तक कि एक दलवाला दूसरे दलवालेका जानी दुश्मन बन

जाता है और दोनों दलवाले अपने अपने पक्षवालोंका बहुत प्रबल पक्षपात करने लगते हैं। ऐसी हालतमें नया पक्ष थोड़ा और कमज़ोर होनेके कारण बहुत नुकसान उठाता है, तो भी पुराने दलके द्वारा चिढ़ाये जानेके कारण इन लोगोंको भी ऐसी जिद पड़ जाती है कि धक्के-मुक्के खाते हुए भी वे अपनी बातपर कायम रहते हैं और जी तोड़कर—अपना सर्वस्व लुटाकर भी उनका सामना करते रहते हैं। ज्यों ज्यों उनके नेताकी बेइज्ज़ती की जाती है त्यों त्यों उनका जोश बढ़ता जाता है और यदि संयोगसे वह मारा जाता है तो फिर उनकी ज़िदकी सीमा ही नहीं रहती है और वे अपना जान—माल सब न्योछावर करके अपनी बातपर अड़ जाते हैं।

इस प्रकार एक परमेश्वर तो स्थापित हो जाता है और उसकी पूजा भी होने लगती है, परन्तु यह बात तय नहीं हो पाती है कि उस परमेश्वरका क्या लक्षण है, वह क्या काम करता है और अन्य देवताओंसे उसका क्या संबंध है। इस कारण विचारशील पुरुषोंके मनमें इस संबंधमें अनेक कल्पनायें उठती रहती हैं, परन्तु वे उनको इतर लोगोंके भयसे जबानपर नहीं लाते हैं। ये सब विचार मन-ही-मनमें उठते और लय होते रहते हैं। कुछ समयके उपरान्त फिर कोई साहसी पुरुष खड़ा होता है और वह इन बातोंको खोल देता है; परन्तु वह भी अपनी बात सुनी जाने और अपनी जानके बचानेके लिए बहुधा कोई प्रबल मायाजाल रचकर ही आता है और अपनेको ईश्वरप्रेरित या ईश्वरका प्रतिनिधि बतलाता है।

एक ईश्वरका आविर्भाव होनेके सैकड़ों वर्ष बाद देवताओंकी मान्यताके साथ साथ एक ईश्वर माननेका मत भी मनुष्योंमें बहुत कुछ फैल जाता है। इतने समयके पश्चात् शायद ही कोई ऐसा रह जाता हो जो एक परमेश्वरको न मानता हो, बल्कि इतने समयमें

मनुष्योंको वस्तु-स्वभाव और कार्य्य-कारणसम्बन्धका बहुत कुछ अनुभव हो जानेके कारण उनकी श्रद्धा बहुतसे देवी-देवताओंसे हटने लगती है और उनके मनमें परलोकसम्बन्धी भी बहुतसे प्रश्न उठने लगते हैं। इस कारण अब ऐसे विचारशील और साहसी पुरुष पैदा होने लगते हैं जो कुछ देवताओंका तो बिलकुल निषेध करते हैं और कुछ देवताओंको स्वल्पशक्ति कहकर बहुधा एक ईश्वरकी ही महिमा गाते हैं। यही नहीं, वे उस परमेश्वरकी कुछ ऐसी विशेष आज्ञायें बतलाते हैं कि जिनमें ऐसे ऐसे कामोंके करनेकी हिदायतें रहती हैं जिनको उस समयके लोग जातीय सुखके लिए जरूरी समझते हों और ऐसे ऐसे कामोंके करनेकी मनाही रहती है जिनसे उस समयके लोग घृणा करते हों। फिर ये लोग परलोककी स्थापना करके यह निश्चय कराते हैं कि जो आदमी परमेश्वरकी इन आज्ञाओंके अनुसार चलेगा वह मरनेके बाद ऐसे स्थानमें भेजा जायगा जहाँ सुख ही सुख रहता है, और जो आदमी इन आज्ञाओंको भंग करेगा वह ऐसे स्थानमें भेज दिया जायगा जहाँ दुःखके सिवा सुखका नाम नहीं है। वे इन स्थानोंका नाम स्वर्ग और नरक रखकर उनका स्वरूप भी उसी समयके विचारोंके अनुसार बतलाते हैं। अर्थात् उस समयके लोग जिन जिन बातोंको सुखदायक समझते हैं और जिनकी प्राप्तिके लिए लालायित रहते हैं उनकी प्राप्ति स्वर्गमें बहुत सुगम बतलाई जाती है, और जिन बातोंसे वे डरते हैं और जो दुःख वे अपने शत्रुओंको देना चाहते हैं, उन सब दुःखोंका होना नरकमें ठहराते हैं।

इस प्रकार परलोककी स्थापना भी हो जाती है और फिर समय समय पर उसके स्वरूपमें अदल-बदल भी हुआ करती है। इसके बाद पशु-पक्षियोंमें भी वही जीव-आत्मा माना जाने लगता है जो मनुष्योंमें है, अर्थात् वह जीवके आवागमनके सिद्धान्तका स्वीकार

करके एक ही जीवका घोड़ा गधा, कीड़ा-मकोड़ा और मनुष्य आदि अनेक योनियोंमें पैदा होना मान लेता है; परन्तु इतनी उन्नति कर लेनेपर भी वह अपने पुराने देवी-देवताओं, भूत-प्रेतों और जंत्रों-मंत्रोंका मानना सर्वथा नहीं त्यागता है। क्योंकि जो उपदेशक नवीन बातोंका प्रचार करनेके लिए सर्वसाधारणके सम्मुख आता है वह लोगोंके भयसे सभी प्रचलित बातोंका खंडन नहीं करता है, बल्कि 'येन केन प्रकारेण' उन्हीं पर अपनी नवीन बातोंका 'थेगरा' या पैबंद लगाता जाता है। फल इसका यह होता है कि जिस विरोधसे वह बचना चाहता है वह तो अवश्य उठता ही है, साथ ही पुरानी बातोंको सच बतलानेके कारण वह अपने नवीन सिद्धान्तोंको भी ठीक ठीक नहीं बिठा सकता है और नये पुराने सभी सिद्धान्तोंका समर्थन करके एक प्रकारकी गड़बड़ी पैदा कर देता है। कुछ दिनोंके पश्चात् ये नये पुराने सिद्धान्त मिलकर एक अद्भुत रूप धारण कर लेते हैं, या उनके अनेक रूप बन जाते हैं, अर्थात् उनमेंसे कोई किसी बातको मानने लगता है और कोई किसीको। होते होते इन बातोंमें धार्मिक तत्त्व कुछ नहीं रहता है और भोले लोग उनके बाह्य स्वरूपका पालन कर देना या बेगारसी टाल देना ही यथेष्ट समझते हैं। इसी लिए वे अनेक विरोधी सिद्धान्तोंके मानने और उनका पालन करनेमें कुछ भी हर्ज नहीं समझते हैं।

इस भारतवर्षमें ही देख लीजिए कि आवागमन या पुनर्जन्मके सिद्धान्त, अर्थात् जीवके लाखों योनियोंमें भ्रमण करनेके सिद्धान्तको मानते हुए, और बड़ी बड़ी बारीक तात्त्विक बातों और अनेक दार्शनिक सिद्धान्तोंके भेदोंपर खूब जोरके साथ बहस करते हुए भी बड़े बड़े विद्वान् पुरुष साथ साथमें ऐसी अनोखी बातें भी मानते हैं कि हमारे सभी मरे हुए पूर्वज कुंआर महीनेके कृष्णपक्षमें अर्थात् श्राद्धके दिनोंमें अपनी अपनी संतानोंके घर भोजन लेने

आते हैं और उन दिनोंमें उनके नामसे जो कुछ ब्राह्मणोंको खिलाया जाता है उससे वे तृप्त हो जाते हैं, अर्थात् वह सब भोजन उन्हींके पेटमें पहुँच जाता है। इस विश्वासके अनुसार श्राद्धके दिनोंमें हिन्दू लोग ब्राह्मणोंको खूब माल खिलाते हैं और इस प्रकार अपने पितरोंको तृप्त हुआ समझ लेते हैं। परंतु यदि उनसे पूछा जाय कि यह खाना पितरोंको पहुँच जानेसे ब्राह्मणोंको तुरंत ही भूख क्यों नहीं लग आती है? या जब तुम यह मानते हो कि मनुष्य ही हाथी घोड़ा आदि किसी पर्यायमें चला जाता है तब वह श्राद्धके दिनोंमें तुम्हारा भोजन लेने कैसे आ सकता है? मान लो, वे तुम्हारे घर भोजन लेने आते हैं, तो इन दिनोंमें तुमको और तुम्हारे ब्राह्मणोंको भी अपनी अपनी पहली पर्यायकी संतानके घर चला जाना चाहिए था, परंतु तुम तो कहीं नहीं जाते हो और न बिना खाये तुम्हारा पेट ही भरता है। श्राद्धके दिनोंमें केवल तुम्हारा ही नहीं, वरन् तुम्हारे घरके गाय बैल आदि ढोरोंका भी पेट भर जाना चाहिए था, क्योंकि इन दिनोंमें तो इनके पूर्वजन्मकी संतानोंने इनके नामसे भी ब्राह्मणोंको खूब भोजन खिलाया होगा। यदि कहो कि जो मनुष्य भूत-प्रेतकी पर्यायमें जाते हैं वे ही श्राद्धके दिनोंमें आते हैं तो फिर तुम अपने घरके सभी मृतकोंका श्राद्ध क्यों करते हो? इसके सिवा तुम सभी प्राणियोंमें अपने समान ही जीव मानते हो, अर्थात् जैसा जीव मनुष्यके शरीरमें है वैसा ही कीड़े-मकोड़े आदि समस्त जीवोंमें भी है। परन्तु जूं खटमल, कीड़े मकोड़े, मच्छर मक्खी, पिस्सू आदि लाखों करोड़ों जीव जो प्रतिदिन लाखों करोड़ोंकी संख्यामें तुम्हारे घरोंमें मरते रहते हैं, उनमेंसे तो तुम किसीका भी भूत-प्रेत होना नहीं जानते हो और न उनसे डरते ही हो; फिर एक मनुष्यके मरजाने पर उसका ही भूत-प्रेत होना क्यों मानते हो? इन बातोंका कुछ भी उत्तर न दे सकने पर भी लोग श्राद्ध करना नहीं छोड़ते हैं।

इसी प्रकार लोग और भी अनेक विरोधी सिद्धान्तोंको मानते हैं और उनपर कुछ भी विचार नहीं करते हैं। यथा—एक परमपिता परमेश्वरको मानते हुए भी ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि अनेक देवताओंको मानना और बड़े बड़े वेदान्तियों, योगाभ्यासियों और दार्शनिकों द्वारा भी गंगास्नानादिसे मुक्तिका माना जाना, इत्यादि। परन्तु यह दोष इन भोले लोगोंका नहीं है, बल्कि उन उपदेशकोंका है जो नवीन नवीन सिद्धान्त तो फैला जाते हैं, परंतु विरोध उठ खड़े होनेके भयसे उन पुराने सिद्धान्तोंको रद नहीं कर जाते हैं जो इन नवीन सिद्धान्तोंके विरोधी होते हैं; किन्तु पुराने सिद्धान्तोंको भी सत्य बतलाकर और उनका सहारा लेकर किसी बहानेसे अपने नवीन सिद्धान्तोंको चला जाते हैं। जैसे सांख्य, वैशेषिक, न्याय, वेदान्त और योग आदि सभी दर्शनोंने एक दूसरेके बिलकुल विरोधी नये नये सिद्धान्त स्थापित करके एक दूसरेके सिद्धान्तोंका खंडन करते हुए भी यही सहारा लिया है कि हम सब वेदोंके ही अनुकूल कहते हैं। यहाँ तक कि वाममार्गियों और अभी स्वामी दयानंदने भी उन अति प्राचीन वेदोंका सहारा नहीं छोड़ा है जो मनुष्यकी प्रारंभिक सभ्यताके समयमें अग्नि, वायु, सविता आदि देवताओंकी प्रार्थना करनेके लिए भजनोंके रूपमें बनाये गये थे और जिनमें ग्रामीण लोगोंकी बहुत स्थूल प्रार्थनाओं और और देवी-देवताओंकी स्तुतियोंके सिवा और कुछ भी तथ्य नहीं है।

जो हो, परन्तु परलोक अर्थात् स्वर्ग नरक और आवागमन आदि सिद्धान्तों तक पहुँच जानेके बाद मनुष्योंके विचार और भी आगे बढ़ते हैं और संसारकी अनेक वस्तुओंके स्वभाव और कार्य्य कारणके संबंधका अधिकाधिक अनुभव होते रहनेके कारण उनके मनमें और भी अनेक नये नये प्रश्न उठने लगते हैं। जैसे—इस जगतको परमेश्वरने बनाया है या वह सदासे ऐसा ही चला आता है? जीव

अजीव और देवी दवता भी परमेश्वरने बनाये हैं या सदासे चले आते हैं ? यदि परमेश्वर ही इस जगतको बनाता है तो बिना उपादानके बनाता है या जैसे कुम्हार मिट्टी नहीं बना सकता है परंतु मिट्टीसे अनेक प्रकारके बर्तन बना सकता है, उसी प्रकार परमेश्वर भी उपादान या सामग्री नहीं बना सकता है किन्तु बनी बनाई सामग्रीसे जगतको बनाता है ? परमेश्वर इस जगतको क्यों बनाता है ? वह अपनी पूजा क्यों चाहता है ? वह हमें स्वर्ग नरकमें क्यों डालता है ? सूर्य, चन्द्र और आकाशके ये लाखों करोड़ों तारे क्या हैं और किस आधार पर लटके हुए हैं ? हमारी पृथ्वी और हमसे इनका क्या सम्बन्ध है ? वर्षा क्यों होती है ? मेघ क्या वस्तु हैं ? मेघोंमें पानी कहाँसे आता है ? नदियाँ क्यों बहती हैं ? इनमें इतना पानी कहाँसे आता है ? नदियोंका पानी मीठा और समुद्रका खारा क्यों है ? सोना चाँदी आदि धातुयें, नमक, फिटकरी, गंधक आदि ओषधियाँ खानोंसे क्यों निकलती हैं ? धरतीमें किसने उन्हें इकट्ठा किया है ? कब किया है और क्यों किया है ? और जब ये समाप्त हो जायँगी तब क्या होगा ? इनके उत्तरमें वे अनेक कल्पनायें करते हैं, परन्तु सहसा कोई बात निश्चित नहीं कर सकते हैं और प्रत्येक विचारके उत्तरमें मनमें यह कहकर ही संतोष कर लेते हैं कि ईश्वरकी माया अपार है, उसका अंत किसीको नहीं मिल सकता है। ये लोग आपसमें मिलकर एक दूसरेके विचारोंको जाननेकी भी कोशिश नहीं करते हैं, क्योंकि ऐसा करनेसे वे आपसमें विरोध खड़े हो जाने या धर्मयुद्ध छिड़ जानेका भय खाते हैं। यदि कोई मनुष्य कभी साहस करके किसी नवीन बातको लेकर उठता भी है, तो उसे यह कहनेका साहस नहीं होता है कि यह नवीन बात मैंने अपनी बुद्धिसे निकाली है, बल्कि वह यही कहता है कि जो कुछ मैं कह

रहा हूँ वह किसी देवी-देवता या परमेश्वरका कथन है। इसी कारण संसारमें जितने मत प्रचलित हैं वे सब आपसमें जमीन-आसमानका फर्क रखते हुए भी यही कहते हैं कि हमारा मत सीधा ईश्वरकी ओरसे आया हुआ है और दूसरे मत मनुष्योंके रचे हुए हैं। ऐसी श्रद्धासे लोगोंकी विचार-बुद्धिपर भारी बोझा लद जाता है और वे अपनेको इस बातका अधिकारी नहीं समझते हैं कि हम कोई नवीन सिद्धान्त खोजें या किसी नवीन बातमें बुद्धि लड़ावें। अतएव अपनी प्राकृतिक विचार-बुद्धिके जरिये जो प्रश्न उनके मनमें उठते हैं और उन प्रश्नोंके जो उत्तर उनके मनमें आते हैं, उनको वे अपने मनहीमें रख छोड़ते हैं-दूसरोंपर प्रकट नहीं करते हैं।

इस प्रकार मनुष्यकी उन्नति सैकड़ों वर्षोंतक रुकी रहती है और मौके मौके पर ही थोड़ी बहुत आगेको सरकती है। जब कोई नवीन साहसी पुरुष किसी नवीन मतको लेकर खड़ा होता है तब वह अपने उस मतको किसी गुप्तशक्तिकी तरफसे आया हुआ ही बतलाता है। ऐसे पुरुषोंके खड़े होने पर फिर भारी विरोध और झगड़े उत्पन्न होते हैं और अंतमें दलबंदी होकर कुछ लोग उनके पक्षमें आ जाते हैं और इस प्रकार उनकी नई बात चल जाती है। परंतु बुद्धि-बलसे काम लेने और आगेको नई नई बातोंके निकालनेकी मनाही इस दलमें भी वैसी ही हो जाती है जैसे कि इनके विरोधी दूसरे दलवालोंमें होती है। इसका कारण यह है कि ये भी बुद्धिसे काम लेनेकी शिक्षा नहीं देते हैं, बल्कि वे स्वयं भी जो नई बात प्रचलित करते हैं उसे भी किसी गुप्त शक्तिकी ओरसे आई हुई बतलाते हैं। इस प्रकार जो लोग नवीन सिद्धान्त लेकर उठते हैं वे यद्यपि अपनी नवीन बातसे मनुष्य जातिको कुछ न कुछ आगेको सरकाते हैं, फिर भी मनुष्यकी विचारशक्तिको आगे बढ़नेसे रोकते हैं।

१८—लड़ाई झगड़ोंसे नवीन धर्म्मोंकी उत्पत्ति बंद नहीं होती।

नवीन वार्तोंके उठने पर चाहे कैसी ही मारकाट क्यों न होती हो, चाहे कैसा ही वैर विरोध क्यों न फैलता हो, परन्तु मनुष्यकी विचारशक्ति उसे चुप नही बैठने देती है। वह सदासे नई नई बातें निकालता आया है और आगे भी निकालता रहेगा। उसने नवीन नवीन धर्मसिद्धान्तोंके ठहरानेमें बड़े ही साहससे काम लिया है। प्रथम तो वह अग्नि पानी, वर्षा आँधी, नदी नाले और सूर्य चन्द आदिको देवता मानता रहा, फिर उसने इन सबका एक बड़ा अफसर अर्थात् परमेश्वर भी खोज निकाला, फिर किसीने इन सब देवताओंको न करके एक परमेश्वरको ही कायम रक्खा, किसीने इस परमेश्वरकी अपारशक्ति मानकर यह सिद्धान्त निकाला कि इस परमेश्वरने अपनी अनन्त शक्तिसे उपादानरहित इस जगतको निर्माण किया है और किसी किसीने यह निश्चय किया कि कोई वस्तु बिना उपादानके नहीं बन सकती है, अर्थात् परमेश्वरने भी अनादि पदार्थोंके द्वारा ही जगतकी सृष्टि की है, जिस प्रकार कि कुम्हार मिट्टीसे घड़ा बनाता है। इनके आशयको दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कह सकते हैं कि इनके मतसे जगतके उपादान कारण भी (परमाणु आदिक) नित्य हैं, पर जगत् अनित्य है—ईश्वर का ही बनाया [illegible] है। किसी किसीने इसके भी विरुद्ध अपना मत [illegible] है अर्थात् उनके मतसे एक ब्रह्म [illegible] सिवा और कुछ है नहीं। अर्थात् यह जो सब जगत् हमको दिखाई देता है स्वप्नके समान मिथ्या है, केवल भ्रममात्र है, [illegible] नहीं है। [illegible]

किया है कि जगतकी सामग्रीमें जड़ या चैतन्य अथवा पुरुष और प्रकृतिके सिवा और कोई ऐसा पदार्थ या शक्ति नहीं है जिसे हम परमेश्वर कह सकें या जो इस जगतको बनाता और बिगाड़ता हो। बल्कि यह सृष्टि सदासे चली आती है और सदा ही बनी रहेगी। इसमें जो कुछ बिगाड़-सुधार या उलट-फेर होता रहता है वह सब सृष्टिके पदार्थोंकी प्रकृतिके कारण ही हुआ करता है। सृष्टिके उपदान कारण या उसकी सामग्री अनादि है—किसीकी बनाई हुई नहीं है। इन उपादानोंके एक साथ रहनेके कारण उनके स्वभाव और गुणोंके आपसमें टकरानेसे उनमें योग और वियोग होता है—अर्थात् एकाधिक उपादानोंके मिलने और बिछुड़नेसे अनेक वस्तुयें बनती बिगड़ती रहती हैं और इस प्रकार संसारके सभी कार्य्य हुआ करते हैं।

इस प्रकार मनुष्योंमें सदैव धर्मयुद्ध होने और खूनकी नदियँा बहते रहने पर भी उन्होंने नवीन नवीन सिद्धान्तोंका निकालना नहीं छोड़ा है, बल्कि जिन देवी-देवताओं या परमेश्वरके कुपित हो जानेके भयसे दुनियाके लोग धर्मयुद्ध ठानकर लाखों मनुष्योंका खून किया करते थे, उन्हींके अस्तित्वको ही बहुतसे लोगोंने झूठा सिद्ध कर दिया है और जगत्कर्त्ता परमेश्वरके न माननेके सिद्धान्तको यहँातक फैला दिया है कि इसके अनुयायी ही दुनियामें सबसे अधिक हो गये है। एशियामें तो सांख्य, बौद्ध और जैन आदि मतवाले हजारों वर्षोंसे ईश्वरके जगत्कर्तृत्वको अस्वीकार करते आ रहे हैं, रहे यूरोप और अमेरिका आदि पाश्चात्य देश, सो वहँा भी अब अधिकांश लोग यही मत मानने लगे हैं, बल्कि वहँा कुछ लोग तो जगत्कर्त्ता ईश्वरको न माननेके सिवा जीवके पृथक् अस्तित्वको भी स्वीकार नहीं करते हैं। ऐसी दशामें धर्म्मके नामपर मनुष्योंका आपसमें युद्ध करना और लड़-

लड़कर मरना व्यर्थ ही है । हाँ, इस खून-खराबे और नित्यके लड़ाई झगड़ोंसे इतना अवश्य हुआ है कि मनुष्यका मनुष्यत्व जाता रहा है और सभीको अभीतक महा अशान्ति और संकटोंका सामना करना पड़ा है ।

परन्तु इस कथनसे हमारा यह मतलब नहीं है कि जो नवीन नवीन सिद्धान्त निकलते रहते हैं वे ही सच्चे और मानने लायक हैं और पुराने सभी सिद्धान्त झूठे तथा छोड़ देने योग्य हैं । हमारा तो केवल यही कहना है कि जब बड़े बड़े खून खराबे और मारकाट जारी रहने पर भी नये नये सिद्धान्तोंका निकलना तथा फैलना बंद नहीं होता है तब मनुष्य इनके लिए क्यों व्यर्थ ही लड़ लड़ कर मरता है, और क्यों अपने जीवनको अशान्त तथा संकटमय बनाता है । मनुष्यका मनुष्यत्व तो इसीमें है कि वह सबको अपने अपने स्वतंत्र विचारों तथा सिद्धान्तोंको सर्वसाधारणमें प्रकट करने दे और चाहे कोई नवीन सिद्धान्तोंको निकाले चाहे पुराने सिद्धान्तोंको माने, परन्तु इसमें वह किसी प्रकारका हस्तक्षेप न करे और न किसी प्रकारकी बुराई ही माने, वरन् आपसमें पूर्णप्रीति रखकर सबको अपने अपने विश्वासोंके अनुसार चलनेकी पूर्ण आजादी दे और इस प्रकार मनुष्यजातिकी सुख-शान्तिको बढ़ावे ।

इससे हमारा यह मतलब भी नहीं है कि कोई किसीको अपना मत न समझावे या दूसरोंके मतोंके दोष न दिखावे । हम तो केवल यही चाहते हैं कि समझाने बुझाने और कुमार्गसे सुमार्गपर लानेका जो कुछ व्यवहार हो वह पूर्णप्रीति और मुहब्बतके साथ हो । हमारी बातको कोई माने या न माने, या कोई हमारी बातोंको कैसे ही काटे; परन्तु इसमें हमको तनिक भी बुरा नहीं मानना चाहिए और न ऐसी बातोंके कारण मनुष्यकी प्रीतिमें जरा भी फर्क पड़ने

देना चाहिए। हमको सदा यही समझना चाहिए कि जो मनुष्य हमको अपना मत समझाता है और हमारे मतमें अनेक दूषण दिखलाता है वह यह सब तकलीफ हमारे हितके लिए उठाता है, अर्थात् चाहे उसकी बात अच्छी हो या बुरी, सही हो या गलत, परन्तु अपनी समझमें तो वह हमारे हितकी ही बात बताना चाहता है। इस कारण हमें भी यही उचित है कि हम उसका पूरा पूरा अहसान मानें, उसकी बातोंको ध्यान देकर सुनें और जो बात हमको सत्य प्रतीत होती हो उसे भी हम प्रेमके साथ उसे सुनावें और इस प्रकार आपसके सद्व्यवहारसे पारस्परिक प्रीति बढ़ाकर एक दूसरेका हित-साधन करें।

१९--पक्षपात और द्वेषसे धर्म्महानि ।

यद्यपि मनुष्योंने आजकल पहलेकी अपेक्षा बहुत कुछ सभ्यता प्राप्त कर ली है और अब धर्म्मके नामपर युद्ध होना और लाखों मनुष्योंका सिर कटना बन्द हो गया है, यही नहीं, अब राजा लोग भी अपनी प्रजामें अपना धर्म्म जबरदस्ती नहीं फैलाते हैं। अब तो सभी राज्योंमें और विशेष करके हमारे इस अँगरेजी राज्यमें प्रजाको प्रत्येक धार्मिक बातमें पूरी पूरी स्वतंत्रता प्राप्त है। परन्तु यह सब होने पर भी बहुतसे लोग धर्मके नाम पर अब तक तीसमारखाँ बननेसे बाज नहीं आते हैं और व्यर्थ ही लड़ते मरते रहते हैं। कोई कोई लोग धर्मके नाम पर इतने पागल बन जाते हैं कि भिन्न धर्मियोंके जिन कार्योंको वे लौकिक व्यवहारमें खुशीसे सहन करते हैं, उन ही कामोंको धर्मके नाम पर होनेसे किसी प्रकार भी सहन नहीं कर सकते हैं और एकदम मरने मारनेको खड़े हो जाते हैं। जैसे कि ब्याह-शादी या अन्य किसी लौकिक कार्यमें हिन्दूलोग कैसा ही जुलूस निकालें, कैसे ही बाजे बजवावें, कैसी ही बदमाश वेश्याओंका नाच कराते हुए और धूमधाम मचाते हुए मसजिदोंके पाससे निकलें, परंतु इससे मुसलमानलोग जरा भी बुरा नहीं मानते हैं, बल्कि इन नाच-तमाशों और जुलूसोंमें वे बहुत खुशीके साथ शामिल होते हैं और सहायता पहुँचाते हैं, परन्तु जब वही हिन्दू धार्मिक जुलूस निकालते हैं तब वे चाहे कितना ही कम शोर मचावें, कैसा ही हलका बाजा बजावें और कैसी ही शान्तिके साथ मसजिदोंके पाससे गुजरें, परन्तु उनकी यह कारवाई मुसलमानोंको ज़रा भी सहन नहीं होती है और वे नमाज़ पढ़नेमें खलल पड़ने आदि किसी न किसी बहानेसे उनसे गहरी लड़ाई ठान देते हैं।

इसी तरह नित्य ही देखनेमें आता है कि बहुत लोग पीपलकी टहनियाँ तोड़ तोड़कर उनके पत्ते ऊँटों या बकरियोंको चराते हैं और औषधिके लिए तो लोग पीपलकी छाल तकको छील छील कर ले जाते हैं; फिर भी इससे किसी हिन्दूको जरा भी बुरा नहीं लगता है, परन्तु मुहर्रमके दिनोंमें मुसलमानोंके ताजिए निकलने पर अगर रास्तेमें कोई पीपलका पेड़ आ जाता है तो हिन्दूलोग लाठियाँ ले ले कर इकट्ठे हो जाते है और जोशमें आकर कहने लगते हैं कि अगर ताजिएसे टकरा कर इस पीपलका एक पत्ता भी टूटा तो यहीं तमाशा बतला देंगे। इसी प्रकार हरिद्वारके मेलेमें हिन्दुओंके ऐसे हजारों दिगम्बर साधु आते हैं जो दो अंगुलकी लँगोटी भी नहीं लगाते हैं, छोटे बच्चोंकी तरह बिलकुल नंग-धड़ग फिरा करते हैं। ये साधु 'नागा' कहलाते हैं और हिन्दुओंमें बड़ी भक्तिके साथ पूजे जाते हैं। इसी प्रकार हिन्दू लोग महादेवके लिङ्गको मंदिरोंमें स्थापित करके उसके विषयमें अनेक ऐसी ऐसी बातें भी कहते हैं, जिनका लिखना हम योग्य नहीं समझते हैं। कृष्ण महाराजका चीरहरण-नाटक करके स्त्रियोंका भी नग्नरूप दिखलाते हैं और मन्दिरोंमें भी चीरहरण लीलाकी तसवीरें खिंचवाते हैं; परन्तु ये ही हिन्दू जैनियोंकी ऐसी मूर्त्तियाँ देखकर अपना धर्मभ्रष्ट हो जाना समझते हैं जिनमें उपस्थ इन्द्रियका भी चिह्न नहीं बनाया जाता है और जिस मूर्त्तिके देखनेसे इस बातका खयाल भी दिलपर नहीं आता है कि यह मूर्त्ति किसी बिलकुल नग्न पुरुषकी है। किसी किसी जगह तो ये हिन्दू जैनियोंकी ऐसी मूर्त्तियोंका उत्सव निकलनेपर मरने मारनेको तैयार हो जाते हैं और यदि अँगरेजी राज्यमें उनका कुछ वश नहीं चलता है तो उस दिन दूकानें बंद करके घरोंमें छिप जाते हैं, इस लिए कि जिससे जैनियोंकी वह नग्न मूर्त्ति उनकी आँखोंके सामने न आने पावे और वे धर्मभ्रष्ट होनेसे बच जायँ।

इस प्रकार यद्यपि आजकल सब लोग अपने अपने धर्म्मको परम पिता परमेश्वरका चलाया हुआ और मनुष्योंका परम कल्याण करनेवाला बतलाते हैं, परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो ये सभी धर्म्म मनुष्योंका सर्वनाश करनेवाले और महा अशान्ति फैलानेवाले बन गये हैं। यहाँ तक कि जो भिन्नधर्म्मी आपसमें प्रेमके साथ रहते हैं और परस्परके सब व्यवहार शान्तिके साथ किया करते हैं, वे ही धर्म्मकी कोई जरासी बात छिड़ जाने पर अकड़ने लगते हैं और अपनी अपनी दलबन्दी करके लड़ने-मरनेको तैयार हो जाते हैं। यही कारण है कि हिन्दू-मुसलमानोंका कोई भी त्योहार आते ही सरकारको फिकर हो जाती है कि कहीं कोई दंगा-फसाद न हो जाय, इस लिए ऐसे मौकोंपर सरकार विशेष प्रबंध करती है और पूरा पूरा पहरा रखती है; परंतु इतने पर भी कहीं न कहीं दंगा-फसाद हो ही जाता है। इसके विपरीत बाजारों, प्रदर्शनियों और ऐसे ही अन्य लौकिक मेलोंमें जहाँ अनेक धर्म्मों और अनेक स्थानोंके लाखों आदमी इकट्ठे होते हैं, कभी किसी प्रकारकी तकरार नहीं होती है। इससे साफ जाहिर होता है कि आजकल धर्म्म ही लड़ाई झगड़ेकी मुख्य जड़ बन गया है। यही कारण है कि जहाँ धर्म्मका नाम नहीं आता है वहाँ तो लौकिक कामोंके लिए चाहे जितने आदमी इकट्ठे हो जायँ पर लड़ाईका कुछ भी भय नहीं रहता है, सब काम शान्तिपूर्वक हो जाते हैं, परन्तु जहाँ धर्मका ताल्लुक रहता है वहाँ भिन्न भिन्न धर्मवालोंमें लड़ाई-दंगा होनेकी पूरी पूरी आशंका रहती है।

धर्मकी इस खैंचातानीने आजकल यहाँतक जोर पकड़ा है कि जिससे एक धर्म्मवाले चिढ़ते हैं उसको दूसरे धर्म्मवाले अवश्य ही करने लगते हैं, यहाँतक कि इस कार्य्यमें वे अपना नुकसान भी सहन कर लेते हैं। जैसे कि अरब देशमें ईदके दिन गायकी कुर-

बानी नहीं होती है और यदि होती भी है तो बहुत कम। वहाँ ईदके दिन अक्सर मेंढ़े ही मारे जाते हैं; परन्तु इस देशमें-जहाँ गायोंसे पैदा हुए बैलोंसे खेती होती है और जहाँ बहुतसे मुसलमान भी खेती करते हैं, इस कारण जहाँ गायोंके मारे जानेसे जैसा नुकसान हिन्दुओंको होता है वैसा ही मुसलमानोंको भी होता है—गायकी ही कुरबानी की जाती है। यहाँके मुसलमान किसान तक गायके सिवा अन्य किसी जीवकी कुरबानी करना पसंद नहीं करते हैं। कारण इसका यह है कि हिन्दूलोग गायको पूज्य मानते हैं और उसकी कुरबानी होनेपर चिढ़ते हैं। ज्यों ज्यों हिन्दूलोग गायकी कुरबानी होनेपर चिढ़ते हैं त्यों त्यों मुसलमान लोग पहलेसे अधिक गायोंकी कुरबानी करते हैं और गायोंके मारे जानेसे दूध आदिकी तकलीफ उठाते हुए भी गायकी कुरबानी करके बहुत खुश होते हैं। यदि हिन्दू मना करते हैं तो वे मरने मारनेको खड़े हो जाते हैं। इधर हमारे हिन्दू भाई भी विलक्षण प्रकृतिके हैं। वे यह बात भलीभाँति जानते हुए भी कि मुसलमान लोग नित्य ही गायोंको मारकर खाते हैं, यों तो उनके हाथ बेखटके गायें बेचते रहते हैं, परन्तु ईदके दिन धर्मके नामपर कुरबानी होनेपर आपेसे बाहर हो जाते हैं और कभी कभी तो गायकी कुरबानीकी जगह अपनी बलि तक देनेको तैयार हो जाते हैं। परन्तु ईदका दिन बीत जानेपर फिर उन्हीं मुसलमानोंके हाथ गायें बेचने लगते हैं जो नित्य उनको मार मार कर खाते हैं। इसके सिवा वे ही हिन्दूलोग जो कि गायको देवता समझकर ईदके दिन खून-खराबा करते हैं अपने घरकी गायोंको अच्छी तरह घास भी नहीं देते हैं और लाठियोंसे उनकी पूजा किया करते हैं, यही नहीं वे उनका सारा दूध निकालकर उनके बच्चोंको भूखा तड़पाते हैं। कहनेका मतलब यह है कि वे उनके पालनपोषणमें बहुत ही लापरवाही दिखलाते हैं; परन्तु यूरोप और अमेरिकामें

जहाँपर गायें न तो देवता ही समझी जाती हैं और न पूजी ही जाती हैं दिनपरदिन उनकी वृद्धि हो रही है और वहाँकी एक एक गाय इतना दूध देती है कि यहाँकी पाँच छह गायें भी उतना नहीं दे सकती हैं। क्योंकि वहाँ पशुओंके पालन-पोषणकी ओर खूब ध्यान दिया जाता है और उनकी वृद्धिके लिए खूब ही कोशिश की जाती है। वहाँ गायें भी इतनी अधिक हैं कि वहाँके सभी लोग गायका दूध पीते हैं और बहुधा गायें ही पालते हैं; परन्तु इस देशमें जहाँ गाय देवता समझी जाती है बहुत कम लोग गायोंको पालते हैं। यहाँके लोग बहुधा भैंस ही पालते, भैंसहीका दूध पीते और भैंसहीका घी खाते हैं। परंतु यूरोप और अमेरिकामें भैंसका दूध तो कोई जानता ही नहीं है–सभी गायें पालते हैं और गायोंका दूध पीते हैं। हिन्दुस्तानकी गौशालाओंको देखनेमे हिन्दुओंकी गौ-भक्तिकी बिलकुल कलई खुल जाती है। उन बेचारियोंको इतना कम खानेको मिलता है कि उनके सब अंजर पंजर बाहर निकले दिखाई देते हैं।

कहनेका अभिप्राय यह है कि हिन्दुस्तानमें हिन्दुओंका गायको देवता मानना और मुसलमानोंका उसकी कुरबानी करना केवल धर्म्मके झगड़ेके कारण है, जिससे दोनोंको नुकसान पहुँच रहा है और देशभरकी खेतीमें भारी विघ्न पड़ रहा है।

धर्मके इस पक्षपातने बढ़ते बढ़ते अब धर्म्मपालनमें यहाँतक गड़बड़ी मचा दी है कि अब पक्षपातका नाम ही धर्म्म रह गया है। अर्थात् एक धर्म्ममें दूसरे धर्म्मसे जो जो बातें विलक्षण हैं चाहे वे कैसी ही तुच्छ और साधारण क्यों न हों, केवल उनका ही पालन करना जरूरी हो गया है और जो उन बातोंका पालन करते हैं वे ही धर्म्मात्मा समझे जाते हैं। परन्तु जो बातें सभी धर्मोंमें बतलाई गई हैं चाहे वे कैसी ही आवश्यक और लाभकारी क्यों न हों, उनका पालन करना अनावश्यक समझा जाने लगा है–यहाँतक कि

वे बातें धार्मिक बातोंमें ही नहीं गिनी जाती हैं और न उनके पालन करनेसे कोई धर्मात्मा ही कहा जा सकता है। जैसे झूठ न बोलना और चोरी न करना; ये दो बातें ऐसी हैं जो सभी धर्म्मोंके मुख्य सिद्धान्तोंमें हैं; परन्तु सभी धर्म्मोंके मुख्य सिद्धान्त हो जानेसे अब ये बातें धार्मिक नहीं रही हैं, वरन् मानवी सभ्यताकी बहुत मामूली बातें मानी जाने लगी हैं। इसी लिए आजकल चाहे कोई कितना ही झूठ बोले, कितना ही धोखा और फरेब करे, लोगोंका माल मारे और जाहिरा तौरपर व्यभिचार करे, तोभी वह धर्मभ्रष्ट नहीं समझा जाता है; परन्तु जब कोई उन बातोंके विरुद्ध चलने लगता है जिनके कारण धर्म्मोंके बीचमें पक्षपात चल रहा है और द्वेष खड़ा हो रहा है तो अवश्य ही वह पूरा पूरा धर्म्मभ्रष्ट हो जाता है। जैसे कोई हिन्दू लाख झूठ बोलता हो और लोगोंका माल भी मारता हो; परन्तु अन्य धर्मवालोंकी छुई हुई कोई वस्तु न खाता हो और उनसे पल्ला भिड़ जानेपर तुरंत ही नहाता हो, तो वह बड़ा भारी धर्म्मात्मा माना जाता है और जो हिन्दू झूठ फरेबसे परे रहता है, बिलकुल सत्यका व्यवहार रखता है, अपनी स्त्रीके सिवा दुनियाभरकी सभी स्त्रियोंको माँ बहिनके समान समझता है और वेश्याओंका मुंह तक नहीं देखना चाहता है, परन्तु उस फर्शपर बैठकर पानी पी लेता है जिस पर कोई मुसलमान बैठा हो तो वह महा अधर्मी हो जाता है; और यदि वह उस लोटे-गिलाससे पानी पी ले जो किसी मुसलमानने छू दिया हो तो वह हिन्दू ही नहीं रहता है और तुरन्त ही जातिसे पतित कर देने योग्य हो जाता है।

इसी प्रकार जबतक कोई हिन्दू मुसलमान वेश्याके साथ व्यभिचार तो करता है; पर उसके हाथकी कोई चीज़ नहीं खाता है तबतक पक्का हिन्दू रहता है, किन्तु यदि उस वेश्याके हाथकी मिठाई या पान खाने लगता है तो तत्काल ही धर्म्मभ्रष्ट हो जाता है

और उसके विषयमें जातिमें यह चर्चा होने लगती है कि "व्यभिचार तो हजारों लाखों हिन्दू करते हैं, परन्तु वे अपने धर्मको नहीं खोते हैं। लेकिन यह वेईमान तो अपना धर्म्मकर्म्म भी भ्रष्ट कर चुका है और मुसलमान वेश्याओंके हाथकी छुई हुई मिठाई तथा पान तक खाने लगा है।" हिन्दुओंकी इस वातसे साफ़ ज़ाहिर है कि वे व्यभिचार करनेमें तो धर्म्मभ्रष्ट होना नहीं मानते हैं; परन्तु मुसलमानके हाथकी छुई हुई मिठाई खा लेनेसे अपनेको धर्म्मच्युत समझते हैं। कारण इसका यही है विभिन्न धर्म्मियोंमें आपसमें बड़े बड़े झगड़े और खून ख़राबे होते रहनेसे अंतमें इतना अधिक पक्षपात और द्वेष वढ गया है कि जिन वातोंमें आपसमें विरोध है वे ही धर्म्मकी वातें रह गई हैं; परन्तु जो वातें सभी धर्म्मोंमें समान रूपसे मानी जाती हैं उनका धर्मसे कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। इसी लिए झूठ बोलना और चोरी तथा व्यभिचार करना पाप नहीं गिना जाता है, क्यों कि इन कामोंको सभी धर्म्मोंने पाप कहा है।

इसी तरह मुसलमानोंमें भी देख लीजिए कि यदि कोई मुसलमान चोरी, व्यभिचार, झूठ, फ़रेब आदि सब कुछ करता है, दूसरोंका माल मारता है और कर्ज़ लेकर एक कौड़ी भी वापिस नहीं देना चाहता है, परन्तु सूद नहीं लेता है तो उसके मुसलमानपनेमें कुछ फ़रक नहीं आता है; पर जो मुसलमान विलकुल सत्यका व्यवहार करता है, किसीका एक पैसा नहीं मारता है और चोरी जारी भी नहीं करता है, परन्तु सूद ज़रूर खाता है, तो वह मुसलमान ही नहीं समझा जाता है। इसका कारण भी यही है कि चोरी जारी तो सभी धर्म्मोंमें पाप माना गया है, इस लिए इन वातोंकी तरफ लोगोंका ध्यान ही नहीं जाता है, परन्तु सूद लेनेको एक मुसलमान धर्म्मही बुरा वतलाता हैं, इस लिए मुसलमानोंको इसीका अधिक खयाल रखना पड़ता है। इन सब वातोंका सारांश यही है कि धर्म्मोंके

बीचके झगड़े-फसादोंके कारण मनुष्योंमें पक्षपात और द्वेष फैल गया है और धर्मकी जड़ कट गई है, अर्थात् धर्मकी असली बातें तो धर्मसे निकल गई हैं और आपसकी विरोधी बातें धर्मकी असली बातें बन गई हैं।

इस तरह विभिन्न धर्मवालोंमें नित्य झगड़े होते होते अब ये झगड़े इतने ज़ोर पकड़ गये हैं कि एक ही धर्मके अनेक सम्प्रदायोंमें भी बैर विरोध रहने लगा है और अपनेसे भिन्न सम्प्रदायवालोंकी शकल देखते ही लोगोंको गुस्सा आने लगा है। जैसे कि हिन्दूधर्मके अनेक सम्प्रदायोंमें जो लोग सफ़ेद टीका लगाते हैं उनको देखकर दूसरे सम्प्रदायवाले कहने लगते हैं कि इन्होंने अपने माथेपर यह कौएकी बीट क्यों लगाई है? इसी प्रकार जो लाल टीका लगाते हैं उन्हें देखकर सफ़ेद टीकावाले कहने लगते हैं कि इसने अपने माथेमें ईंट मारकर यह खून क्यों निकाला है? इसी प्रकारके तरह तरहके कटाक्ष एक सम्प्रदायवाले दूसरे सम्प्रदायवालोंपर किया करते हैं और उनको बहुत ही घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। यही नहीं, वे साम्प्रदायिक मोहके आवेगमें आकर अपने ही देवताओंकी निंदा करने लगते हैं। जैसे ब्रह्मा विष्णु और महेश ये तीनों देवता सभी हिन्दुओंके हैं; परन्तु वैष्णव सम्प्रदायवाले मुख्यतः विष्णुकी पूजा करते हैं और शैव लोग शिवको मानते हैं, और इसी विशेषताके कारण आपसमें लड़ाई झगड़ा करके वैष्णव लोग विष्णुको बड़ा बतलाकर शिवकी निन्दा करते हैं और शैव लोग शिवको बड़ा बतलाकर विष्णुकी निन्दा करते हैं।

इन साम्प्रदायिक झगड़ोंकी असलियत दिखानेके लिए हिन्दुओंमें एक कहानी प्रसिद्ध है। वह यह है कि एक गुरुके दो चेले थे, जिनमेंसे एक तो गुरुकी दहनी टाँग दबाता था और दूसरा बाईं। इसी अंतरके कारण दोनोंमें सदा तकरार रहा करती थी और दहनी टाँग दबाने-

वाला गुरुकी बाईं टाँगकी बुराई दिखलाया करता था और दहनी टाँगकी तारीफ़ किया करता था, और इसी तरह बाईं टाँग दबानेवाला गुरुकी दहनी टाँगकी निंदा किया करता था और बाईं टाँगकी महिमा गाता था। नित्य इसी प्रकारकी तकरार रहनेके कारण उनका क्रोध बढ़ते बढ़ते अंतको यहाँतक बढ़ गया कि दहनी टाँग दबानेवालेने तो गुरुकी बाईं टाँग काट डाली और बाईं टाँग दबानेवालेने दहनी टाँग काट दी और इस तरह गुरुके दोनों, पैर कट गये। इस तरह उन दोनों मूर्खोंने अपने ही हाथोंसे अपने गुरुका सत्यानाश कर डाला। ठीक यही हाल आजकल उन लोगोंका हो रहा है जो आपसमें लड़ लड़ कर और एक दूसरेकी जड़ें काटकर अपने ही धर्म्मका घात कर रहे हैं। यह साम्प्रदायिक रोग केवल हिन्दुओंमें ही नहीं है; किन्तु ईसाई, मुसलमान, जैन, सिक्ख आदि सभी धर्म्मोंमें फैला हुआ है, और सभी धर्म अनेक सम्प्रदायोंमें बँटकर आपसमें लड़ते झगड़ते और अपनी ही जड़ें काटकर अपने धर्म्मको कमज़ोर बनानेके सिवाय और कुछ भी नहीं कर रहे हैं।

इस प्रकार पक्षपात और द्वेष ही धर्मका मुख्य सिद्धान्त बन जानेके कारण दुनियाके लोग अपने कल्याणकी तो कुछ भी फिकर नहीं करते हैं और न अपने लिए सत्यमार्ग ही खोजते हैं, परन्तु भिन्न धर्म्मवालोंपर बहुत ही करुणा दरसाते हैं और उनको समझाते हैं कि मनुष्य अपनी बुद्धि और विवेक शक्तिके कारण अन्य सब जीवोंसे श्रेष्ठ है, इस कारण मनुष्य मात्रका यह मुख्य कर्त्तव्य है कि वह आँख मीचकर ही किसी बातको न मानने लगे, बल्कि अपनी बुद्धिरूपी कसौटीपर सब बातोंको जाँचे और जो सत्य प्रतीत हों उन्हींको माने। इस प्रकारकी बातें बनाकर सभी धर्म्मोंके लोग दूसरे धर्मवालोंके सामने उनके धर्मोंके अनेक दोष दिखाने लगते हैं और इन दोषोंको सिद्ध करनेके लिए बड़ी बड़ी युक्तियाँ लड़ाते हैं; परन्तु उनकी ये

सब बातें भिन्न धर्म्मवालोंके लिए ही होती हैं। वे न तो स्वतः उन पर एक कदम चलना चाहते हैं और न अपने सहधर्म्मियोंको ही चलाना चाहते हैं। वे स्वयं तो आँख मीचकर जो कुछ मानते चले आ रहे हैं उसीको मानते रहना चाहते हैं, यहाँ तक कि अगर उनका कोई सहधर्म्मी अपनी बुद्धिकी कसौटीसे अपने धर्म्मकी जाँच करने लगता है, तो उसे भी यही समझाने लगते हैं कि "धर्म्मके मामलेमें अपनी बुद्धि लगाना या उसकी छान-बीन करना उचित नहीं है। शास्त्रोंमें जो लिखा है उसे श्रद्धापूर्वक आँख मीचकर मानते रहना चाहिए।" इस प्रकार समझा बुझाकर या डाँट दपटकर किसी न किसी प्रकार उसे विवेकबुद्धिसे काम लेनेसे रोक देते हैं और उसे अपने प्राचीन धर्मपर कायम रहनेके लिए बाध्य करते हैं। उसे अपने धर्मपर दृढ़ रखनेके लिए वे कहने लगते हैं कि "धर्म्मकी बातें ऐसी अलौकिक होती हैं कि उनमें मनुष्यकी बुद्धि कुछ भी काम नहीं देती है। इस लिए धार्मिक बातोंमें परमपिता परमेश्वर या पूज्य आचार्य्योंकी दी हुई आज्ञाओंका ही पालन करना उचित है।"

इस प्रकार सभी धर्म्मवाले अपने सहधर्म्मियोंको अंधश्रद्धाका पाठ पढ़ाकर अपने धर्म्म पर कायम रखना चाहते हैं और भिन्न धर्म्मियोंके सामने ऐसी बातें बनाकर उन्हें बुद्धिसे काम लेनेका उपदेश देते हैं कि "जब एक पैसेकी हंडीको भी हम ठोक बजाकर लेते हैं तब धर्म्म क्या ऐसी घटिया वस्तु है जिसकी बिलकुल जाँच न की जाय और वह आँख मीचकर ग्रहण कर लिया जाय? नहीं, धर्मको हम लोक तथा परलोक दोनोंका आधार मानते हैं, इस लिए उसकी जरा जरासी बात भी जाँच-परख कर ग्रहण करनी चाहिए।" इस प्रकार सभी धर्म्मोंके लोग चालाक दूकानदारकी तरह लेनेके बाँट और और देनेके बाँट और रखते हैं और अपनी अपनी चालाकीसे दूसरोंको ठगा करते हैं।

इसका कारण यही है कि दुनियाके लोगोंको न तो अपने लिए ही कल्याणका मार्ग ढूँढ़ना है और न दूसरोंको ही सत्य मार्गपर लगाना है, धार्मिक झगड़ोंमें पड़कर उन्हें तो अपनी अपनी टोलियाँ बाँधनी और अपनी अपनी जिद पूरी करनी है। इसी लिए उन्हें इस बातकी फिकर लगी रहती है कि हमारी टोलीमेंसे तो कोई दूसरी टोलीमें जाने न पावे, परन्तु दूसरी टोलीवाले हमारी टोलीमें अवश्य आ जावें। इसी कारण सभी धर्म्मोंके लोग और विशेषकर धर्म्मके झंडेबर्दार अर्थात् पण्डित मौलवी और पादरी लोग, अपने धर्मवालोंसे तो एक प्रकारकी बातें करते हैं और दूसरे धर्मवालोंसे दूसरे प्रकारकी। इन बातोंका अर्थ यह निकलता है कि पृथ्वीसे सच्चा धर्म्म तो उठ गया है, परन्तु धर्म्मके नामसे अनेक झंडे अवश्य खड़े हो गये हैं कि जिनकी ओरसे राज्यकी नाई सभी प्रकारकी लड़ाईयाँ लड़ी जाती हैं, सभी चालें चली जाती हैं और अपना अपना झंडा ऊँचा करनेके सिवा और कुछ भी फ़िकर नहीं की जाती है। यही कारण है कि प्रत्येक मतवाले पूरे पूरे दुराचारी और कुकर्मीको भी अपने झडेके नीचे लानेमें अर्थात् अपना धर्म स्वीकार करानेमें बहुत हर्ष मनाते हैं, और चाहे वह पहलेसे भी अधिक दुराचारी और कुकर्मी हो जाय, परन्तु इसका कुछ भी खयाल नहीं करते हैं। यदि कोई हिन्दू किसी मुसलमान वेश्यापर आसक्त होकर उसके साथ खुल्लमखुल्ला भोजन करने लगे और इसी कारण वह हिन्दुओंसे निकाला जानेपर मुसलमानोंमें शामिल होना चाहे, तो मुसलमान लोग बड़ी खुशीसे उसे अपनी मसजिदमें लेजाकर और यह बात उसकी जबानसे कहला कर कि मुहम्मद-साहब ही परमेश्वरकी आज्ञाओंको हमतक पहुँचानेवाले हैं, अर्थात् कलमा पढ़वाकर उसे मुसलमान मानने लगते हैं और एक मुसलमान बढ़ जानेके कारण बहुत खुशी मनाते हैं। परन्तु उसके वेश्यासक्त होनेका कुछ भी खयाल नहीं करते हैं; बल्कि उस वेश्याके

भी शाबाशी देने लगते हैं कि जिसने उसे अपने ऊपर आसक्त करके उसे अपने धर्ममें खींच लिया है।

इस प्रकार अपने अपने धर्मके झंडे ऊँचे रखनेके पक्षपातके कारण सभी धर्मोंका यह मुख्य सिद्धान्त हो गया है कि जबतक कोई मनुष्य हमारे धर्मपर विश्वास न करेगा, तबतक उसका शील, संयम जप-तप आदि कुछ भी काम नहीं आयगा, परन्तु जो मनुष्य हमारे सत्य धर्मपर विश्वास करेगा वह अपने आचरणोंको सुधारे विना भी स्वर्ग या मोक्षका अधिकारी हो जायगा। इसी सिद्धान्तके कारण सभी लोग अपनी टोलीवालोंको तो—चाहे वे कैसे ही दुराचारी क्यों न हों—धर्मात्मा मानकर उनसे प्रेम करने लगते हैं, और दूसरे धर्म्मवालोंको—चाहे वे कैसे ही सदाचारी हों—मिथ्याती, म्लेच्छ, काफिर आदि कह कर उनसे घृणा करने लगते हैं।

अपने धर्मका झंडा ऊँचा करने अर्थात् सबसे अधिक मनुष्योंको अपने धर्म्ममें लानेका सबसे ज्यादा शौक आजकल ईसाई पादरियोंको है, जो दुनियाभरमें फिरते हैं और सब प्रकारके लोगोंको ईसाई बनाते हैं। इसी बढ़े हुए शौकके कारण उन्होंने ईसा मसीहके उपदेशके सर्वथा विरुद्ध एक अतिविचित्र सिद्धान्त बना लिया है और उसे वे दुनियाके लोगोंके सामने गा गाकर सुनाते हैं कि मनुष्यको रातदिन अनेक पाप करना पड़ते हैं, इसकारण मनुष्य ऐसा शुद्धाचरणी और सुकर्मी नहीं हो सकता है जिससे उसका कल्याण हो सके, अतएव उसको अपने उद्धारके लिए किसी दूसरी शक्तिका सहारा लेनेकी जरूरत है, जो मल्लाहकी तरह उसका बेड़ा पार लगा दे और वह मल्लाह ईसा मसीहके सिवा और कोई नहीं है। क्योंकि परमपिता परमेश्वरने उसे खास इसी लिए भेजा था कि जो मनुष्य तेरे झंडेतले आयगा उसका बेड़ा पार हो जायगा। इसके अतिरिक्त ईसा मसीहने शूली पर चढ़कर उन सब लोगोंके पापोंका

बदला भी चुका दिया है, जो उसके झंडेके नीचे आते रहेंगे या ईसा मसीहका नाम लेते रहेंगे। ईसाई पादरियोंका यह भयानक सिद्धान्त यद्यपि लोगोंको पापोंसे निर्भय करता और दुनियामें पाप ही पाप फैलाता है, परन्तु अपने धर्म्मका झंडा फहरानेके शौकमें पादरियोंने उक्त सिद्धान्तको इस लिए बना लिया है कि जिससे भोले लोग जल्दीसे बहकावेमें आ जायँ और ईसा मसीहका नाम लेने लगे।

ईसाई पादरियोंके सिवा अन्य धर्म्मोंके मनुष्य भी यद्यपि खुल्लम-खुल्ला यह भयानक सिद्धान्त नहीं बतलाते हैं, तथापि वे अपने अपने देवताओंकी कृपासे पापोंकी निवृत्ति होना अवश्य बतलाते हैं। इसके सिवा अपने अपने परमेश्वरके आगे प्रायः सभी धर्म्मोंके लोग इस आशयका गीत गाते हैं कि "हे प्रभो! मैं महापापी और दुराचारी हूँ, इस लिए अपने कर्मोंके द्वारा तो मैं कभी किसी प्रकार इस संसार-सागरसे पार नहीं हो सकता हूँ; परन्तु तू सर्व शक्तिमान् और दीन-दयालु है, तूने अनेक महापापियों और दुराचारियोंको तार दिया है, इस लिए मैं भी तेरी शरणमें आया हूँ और तेरी ही कृपासे पार होना चाहता हूँ।" इस प्रकार सभी धर्मोंके लोग-"मेरे अवगुण मत चित धारो, स्वामी मोहि दीन जानकर तारो" की टेर लगाते हैं और अपने परमेश्वरकी दयाके भरोसे रहकर अपने आचरणोंको सुधारनेकी कोई फिकर नहीं करते हैं। अर्थात् अब इस सिद्धान्तको प्रायः सभी धर्म्मोंवाले मानने लगे हैं कि हमारे परमेश्वरकी कृपासे हमारे पाप दूर हो सकते हैं और हम अपने आचरणोंको सुधारे बिना ही उसकी कृपासे पार हो सकते हैं।

बल्कि अब अपने अपने धर्मके झंडेको मजबूत करनेके लिए सभी धर्म्मोंके लोग यह बात भी मानने लगे हैं कि केवल एक परमपिता परमेश्वरकी उपासनासे बेड़ा पार नहीं हो सकता है, बल्कि उसके साथ साथ परमेश्वरके प्रतिनिधि या उस धर्मके प्रवर्तकको भी पूजना चाहिए।

यदि कोई आदमी उस परमेश्वरको पूजता हो जिसको मुसलमान लोग 'खुदा' और ईसाई लोग 'गाड' कहते हैं, बल्कि 'खुदा' या 'गाड' कहकर ही उसकी माला जपता हो, और उसकी वही स्तुति गाता हो जो मुसलमान और ईसाई लोग गाते हैं, परन्तु वह मुहम्मद साहब या ईसा मसीहको न मानता हो, तो मुसलमानों या ईसाईयोंकी निगाहसे उसकी वह 'खुदा' या 'गाड'के प्रति की हुई भक्ति व्यर्थ जायगी—किसी भी कामकी नहीं समझी जायगी। इसी प्रकार यदि कोई आदमी परमेश्वरकी पूरी पूरी भक्ति करता हो, उसको वैसा ही सर्वशक्तिमान्, जगत्कर्ता और दयालु मानता हो जैसा कि हिन्दू लोग मानते हैं, और हिन्दुओंकी ही बनाई हुई स्तुतियाँ और प्रार्थनायें पढ़ता हो, परन्तु वह श्रीकृष्ण या महादेव आदि उन देवताओंको न मानता हो जिनके नामपर हिन्दुओंके भिन्न भिन्न सम्प्रदाय चल रहे हैं, तो हिन्दुओंकी दृष्टिमें उसकी वह भक्ति भी कुछ कार्य्यकारी नहीं होगी, अर्थात् वैष्णव लोगोंके खयालसे उसकी भक्ति उस वक्त तक मंजूर नहीं होगी जब तक वह विष्णुका ध्यान नहीं करेगा, शैवोंके खयालसे उसकी पूजा उस समयतक स्वीकार नहीं होगी जब तक वह शिवको नहीं मानेगा, सिक्खोंके खयालसे वह उस वक्त तक पार नहीं हो सकेगा जब तक कि गुरु नानककी भक्ति नहीं करेगा और कबीर पंथियोंके विचारसे वह उस वक्त तक किसी योग्य नहीं बन सकेगा जब तक कि वह कबीर साहबका गुणगान नहीं करेगा। गरज, भिन्न भिन्न धर्म्मोंमें आपसमें दंगा—फसाद होते रहनेके कारण पक्षपात और द्वेषने यहाँतक जोर पकड़ा है कि परमेश्वरकी भक्तिका तो तिरस्कार होने लगा है और प्रत्येक धर्म्मके चलानेवालोंकी मान्यता बढ़ती जाती है। 'कहनेका तात्पर्य यह है कि अब अपने अपने धर्म्मके झंडोंका पक्ष करनेके सिवा और कुछ धर्म्म ही नहीं गिना जाता है।

अपने अपने इन पक्षपातके झंडोंकी रक्षाके वास्ते मुसलमानों और ईसाइयोंमें क्या क्या गुप्त सलाहें होती रहती है, सो तो हम नहीं जानते हैं, परन्तु अपने हिन्दू लीडरोंको हम साफ तौर पर यह कहते हुए सुनते हैं कि हिन्दुओंमें अनेक दर्शनशास्त्र प्रचलित हैं जो अपना अपना निराला सिद्धान्त स्थापित करते हैं, इसी प्रकार हिन्दू-धर्म्ममें सम्प्रदाय भी अनेक हैं जो भिन्न भिन्न प्रकारके आचरण सिखलाते हैं, इस कारण हिन्दूधर्मकी रक्षा अब इसी तरह हो सकती है कि चाहे कोई कैसा ही सिद्धान्त माने, कैसा ही आचरण करे, परन्तु वह वेदोंको अवश्य ही माने, जिससे सारी हिन्दू जाति एक बनी रहे और एक धर्म्मके झंडेके नीचे खड़ी रहे। परन्तु वेदोंपर श्रद्धा रखनेके लिए न तो उनको कभी पढ़ना ही चाहिए और न कभी उनके कथनको समझना ही चाहिए। क्योंकि उनके कथनको समझ जानेपर सब प्रकारके सिद्धान्तवाले उनपर कदापि श्रद्धा नहीं रख सकेंगे। उनपर तो केवल उन्हींकी श्रद्धा रहेगी जिनके सिद्धान्त उनकी बातोंसे मिलते जुलते होंगे। इस कारण वेदोंके विषयमें सबको यही मानना चाहिए कि वे किसीकी भी समझमें नहीं आसकते हैं--उन्हें बिना समझे बूझे ही मानते रहना चाहिए। यदि अँगरेजों या स्वामी दयानंद आदिके किये हुए वेदोंके अनुवादोंको पढ़नेका मौका मिल जाय, या किसी ऐतिहासिक पुस्तकसे यह मालूम हो जाय कि वेदोंमें अग्नि, जल, वायु आदि देवताओंकी प्राथनाओंके सिवा और कुछ नहीं है, तो भी उनपर आँख मीचकर श्रद्धा रखनी चाहिए और उनको 'ईश्वर-वाक्य' समझते रहना चाहिए। क्योंकि इन वेदोंके नामसे ही सारे हिन्दू एक सूत्रमें पिरोये जासकते हैं और एक झंडेके तले आसकते हैं। इसी प्रकार कोई कोई लीडर जैन, बौद्ध, सिख, कबीरपंथी आदि लोगोंको भी जो वेदोंको नहीं मानते हैं, हिन्दू धर्म्मके झंडेके नीचे लानेके लिए यह सिद्धान्त

प्रकट करते हैं कि जो लोग सिरपर चोटी रखते हैं और मुसलमानों तथा ईसाइयोंके हाथकी रोटी नहीं खाते हैं, वे सब हिन्दू हैं। ऐसे लीडर चमारों और चूहड़ोंको भी मुसलमान और ईसाइयोंके घरकी रोटी खानेसे मना करते हैं और इस प्रकार उनको हिन्दुओंमें मिलाना चाहते हैं। इसी प्रकार अन्य लीडर भी अपनी अपनी समझके अनुसार ऐसी और भी अनेक तदबीरें निकालते हैं जिनसे लोग बिखरने न पावें और सभी हिन्दू एक होकर अपने धर्म्मके अनुयायियोंकी संख्या बढ़ावें। परंतु हिन्दुओंमें सत्य सिद्धान्तोंके फैलानेकी और उनके आचरणोंको उत्तम बनानेकी फिकर बहुत ही कम लीडरोंको रहती है। यदि किसीको थोड़ी बहुत फिकर रहती भी है तो उसमें भी असली गरज गिरोहबंदीकी ही रहती है। इसका कारण यही है कि धर्म्मोंके बीचमें दंगा-फसाद और खून-खराबा होता रहनेके कारण अन्य धर्मके लीडरोंके समान हिन्दू लीडरोंको भी हिन्दुओंका एक समूह बनाकर हिन्दूधर्म्मके नामका एक झंडा खड़ा रखनेकी बड़ी भारी जरूरत जान पड़ने लगी है और उसने सत्य मार्ग ग्रहण करने तथा शुद्ध आचरण रखनेकी फिकर भुलाकर सदैव इस झंडेकी रक्षा करनेकी ही धुन पैदा कर दी है। मतलब यह कि धर्मोंके बीचमें सदैव झगड़े टंटे होते रहनेके कारण अब धर्म्मका नाम केवल गिरोहबंदीके लिए ही रह गया है। इस लिए धर्म्मके नामसे जो कुछ किया जाता है वह सब गिरोहबंदीके लिए ही रह गया है—इसके सिवा धर्मका और कुछ मतलब ही नहीं रहा है।

यही कारण है कि दुनियाके सब लोग भिन्न भिन्न धर्म्मोंके अनुयायी होते हुए और अपने अपने धर्मको मनुष्यके कल्याणका एकमात्र सर्वोत्तम उपाय बतलाते हुए भी एक ही प्रकारका आचरण कर रहेहैं और चोरी जारी झूठ-फरेब आदि कुकर्मोंमें एक समान ही

प्रवृत्त दिखाई देते हैं। अर्थात् मनुष्योंके आचरणोंको ठीक बनानेमें इस समय कोई भी धर्म कुछ भी कार्य्य नहीं कर रहा है, बल्कि सब धर्म्मोंके मनुष्योंके आचरणोंमें जो थोड़ी बहुत भलाई नजर आती है वह या तो पारस्परिक लौकिक व्यवहारको निभानेके लिए होती है या राज्यदंडके भयसे होती है। गरज यह कि धर्म्मोंके बीचमें लड़ाई–झगड़े रहनेके कारण सभी धर्म्मोंकी मिट्टी खराब हो गई है और जो धर्म्म मनुष्योंके आचरणोंको ठीक करके उनको कल्याण तथा परमशान्ति प्राप्त करानेके लिए जारी हुए थे, वे अब गिरोहबन्दी, पक्षपात और द्वेष पैदा करनेके सिवा और किसी भी कार्य्यके नहीं रहे हैं।

इसी कारण सभी धर्मोंके लोग धर्म्मके नामसे जो उपदेश लोगोंको सुनाते हैं, या जो धर्म्मचर्चा करते हैं उसकी गरज इसके सिवा और कुछ नहीं होती है कि सुननेवालोंपर उनके धर्म्मका प्रभाव जम जाय और दूसरे धर्म्मोंका प्रभाव घट जाय, जिससे उनके गिरोहका झंडा मजबूत हो जाय और दूसरे गिरोहोंका कमजोर। इसी कारण प्रायः सब लोग अपने अपने धर्म्मोंकी खूबियाँ दिखलाने और दूसरे धर्म्मोंके दोष निकालनेमें बड़ी बड़ी युक्तियोंसे काम लेते हैं, खूब बातें बनाते हैं, मायाका जाल फैलाते हैं और येन केन प्रकारेण अपने धर्मकी बातोंको–चाहे वे कैसी ही लचर क्यों न हों–सत्य ठहरानेकी चेष्टा किया करते हैं, और दूसरे धर्मोंकी मजबूत बातोंको भी असत्य ठहराना चाहते हैं। इन लोगोंके सहधर्म्मी यद्यपि इस बातको भली भाँति जानते हैं कि हमारा साथी मायाचारसे काम ले रहा है और भिन्न मतवालोंको साफ साफ धोखा दे रहा है, परन्तु फिर भी वे अपने धर्म्मकी पुष्टि और अन्य धर्म्मोंकी हीनता सिद्ध होते हुए देखकर खुशी होते हैं और बीच-बीचमें तालियाँ बजाकर जबरदस्ती अपने साथीकी जीत और

दूसरोंकी हार दिखाते हैं। यही नहीं, वे वर आकर अपने साथीकी पीठ ठोक कर कहने लगते हैं "कि आज तो तुमने अन्यमतवालोंको खूब ही छकाया। यद्यपि उनकी पकड़ बहुत जोरदार थी, तो भी तुम अनेक चालें चलकर उनके चक्करसे निकल आये।" गरज आज कल भिन्न धर्मवालोंके साथ धर्मचर्चामें जो कोई जितने अधिक मायाचारसे काम लेता है वह उतना ही अधिक प्रशंसाका पात्र समझा जाता है। अर्थात् जिस प्रकार आजकलकी राजनीतिमें धोखे-बाजी जरूरी समझी जाती है, उसी प्रकार वह धर्मचर्चामें भी जरूरी हो गई है। इस तरह जो धर्म्म मनुष्यके हृदयसे मायाचारको निकालकर उसको सत्यवादी और सरलस्वभावी बनानेके लिए प्रचलित हुए थे, वही अबआपसमें लड़ाई झगड़े रहनेके कारण स्वत: ही मायाचारको जरूरी समझने लगे हैं। चाहे लौकिक व्यवहारमें यह मायाचार कैसा ही निंद्य क्यों न समझा जाता हो, परन्तु भिन्न धर्मवालोंके साथ धर्मचर्चा करनेमें तो इसकी बहुत ही जरूरत समझी जाती है।गरज यह कि आपसके लड़ाई झगड़ोंके कारण धर्मका स्वरूप ही बदल गया है और गिरोहबन्दी करने तथा अपने अपने पक्षोंका समर्थन करनेके सिवा उसका और कोई काम ही नजर नहीं आता है।

२०—सत्य धर्म्मकी खोज।

आज कल सभी धर्म्मोंके लोग अपने अपने धर्मको ईश्वरप्रणीत और अन्य सब धर्म्मोंको कपोलकल्पित तथा मिथ्या बतलाते हैं। इस तरह यदि सब मिलाकर एक सौ मत प्रचलित हों, तो दुनियाके लोग उनमेंसे ९९ मतोंको मनुष्यकृत और अपने एक मतको ईश्वरकृत ठहराते हैं। इसका अर्थ यह होता है कि प्रत्येक मतको ९९ मतवाले मनुष्यकृत या मिथ्या बतलाते हैं, सिर्फ एक उसी मतका माननेवाला उसे ईश्वर-वाक्य ठहराता है। परन्तु बदलेमें वह भी ९९ मतोंको मनुष्योंका गढ़ा हुआ ही कहता है। अर्थात् यह बात प्रायः सभी मतवाले स्वीकार करते हैं कि संसारमें मनुष्योंके बनाये हुए मत भी प्रचलित हो जाते हैं, बल्कि बहुत करके तो संसारमें मनुष्योंके ही रचे हुए मत प्रचलित हो गये हैं और प्रायः सौमेंसे ९९ मनुष्य ऐसे ही मन-गढ़न्त मतोंको मान रहे हैं। ईश्वरकृत सच्चे मतके माननेवाले तो बहुत ही कम हैं। इसका कारण भी सब मतोंवाले यही बतलाते हैं कि मनुष्य अपने गढ़े हुए मतोंको भी अपनी मायाचारीसे ईश्वरकृत बता देते हैं और झूठमूठ ही ऐसी कहानियाँ भी जोड़ लेते हैं कि जिससे उनका मत ईश्वरकी तरफसे आया हुआ जाहिर हो। इस प्रकार दुनियाके लोग उनकी मनगढ़न्त बातोंको ईश्वर-वाक्य मानने लगते हैं और उनके फंदेमें आकर वास्तविक ईश्वर-वाक्यको झूठ समझने लगते हैं। दुनियाके १०० मेंसे ९९ मनुष्य इसी धोखेमें आये हुए हैं और हमारे मतको जो साक्षात् ईश्वर-वाक्य है, झूठा और मन-गढ़न्त ठहराते हैं।

अपने मतके अतिरिक्त ९९ मतोंकी इस धोखेबाजीको तोड़कर उन्हें झूठा और बनावटी सिद्ध करनेके लिए सभी मतोंवाले प्र-

नियमोंको टटोलते हैं और उन ९९ मतोंमें जो जो कथन इन नियमोंके विरुद्ध मिलते हैं, उनको असम्भव बतलाते हैं और इस तरह उनकी झुठाई पकड़कर दिखलाया करते हैं। परन्तु जब अपने मतका जिक्र आता है तब इन नियमोंको ताकमें रखकर उसकी सभी असम्भव बातोंको सत्य और निर्भ्रान्त बतलाने लगते हैं। बल्कि कोई कोई तो इन असंभव और अलौकिक बातोंके कारण ही उसे ईश्वरप्रणीत सिद्ध करने लग जाते हैं। यह बात सब जानते हैं कि पुरुष और स्त्रीके संयोगके बिना कभी गर्भ नहीं रह सकता है-इस प्राकृतिक नियमके सिवा अन्य किसी रीतिसे मनुष्यका उत्पन्न होना संभव नहीं है। गरज, इस नियमकी सत्यता सभी मतवाले निर्विवाद रीतिसे स्वीकार करते हैं और इस नियमको अटल मानकर हिन्दू लोग ईसाइयों और मुसलमानोंके इस कथनको कि ईसा मसीहकी उत्पत्ति स्त्री-पुरुषके संयोगके बिना पवित्रात्मासे हुई थी झूठ ठहराते हैं और मुसलमान तथा ईसाई लोग हिंदुओंके इन कथनोंको असत्य ठहराते हैं कि पांडवोंकी उत्पत्ति सूर्य, इंद्र, पवन आदि देवताओंके सत्वसे हुई थी और पार्वतीने शरीरके मैलसे गणेशजीको बना दिया था। कहनेका मतलब यह है कि दूसरे मतोंका खंडन करनेके लिए तो सभी मतोंवाले मनुष्योत्पत्तिके इस नियमको बड़े जोर शोरके साथ काममें लाते हैं, परन्तु जब इसी नियमसे अपने मतका खंडन होता है तब वे परमेश्वरकी अलौकिक और अनन्त शक्तिका बहाना बनाने लगते हैं। कोई कोई मत ऐसे भी हैं जो इन कथाओंको नहीं मानते हैं; परन्तु सृष्टिकी आदिमें मनुष्योंकी उत्पत्ति बिना माता पिताके ही हुई थी यह अवश्य बतलाते हैं और कमसे कम इस जगह तो वे भी मनुष्योत्पत्तिके उक्त नियमको भूल जाते हैं।

इस तरहकी और भी हजारों बातें हैं कि जिनके द्वारा सभी मतोंवाले अन्य ९९ मतोंके कथनोंको अप्राकृतिक और असम्भव सिद्ध

करते और उन्हें झूठा ठहराते हैं, परन्तु अपने धर्मकी जाँचके लिए इन हज़ारों बातोंमेंसे किसी एकको भी काममें नहीं लाना चाहते हैं, बल्कि अपने धर्मको इन असम्भव और अप्राकृतिक कथनोंके कारण ही ईश्वरकृत सिद्ध करने लग जाते हैं। जैसे ईसाई और मुसलमान लोग तो रामायण और महाभारतमें वर्णित रामचन्द्र और कृष्ण आदि अवतारोंके अद्भुत कृत्योंको प्रकृतिविरुद्ध बतलाकर उनको झूठ कहते हैं और हिन्दूलोग ईसा मसीहके मरकर फिर कबरमेंसे जिन्दा निकल आने, मुर्दोंको जिन्दा करने और मुहम्मद साहबके चाँदके दो टुकड़े कर देने आदि बातोंको निरी गप बतलाते हैं। परन्तु जब स्वयं उनकी बारी आती है तब सभी मतोंवाले अपने अपने मतकी असम्भव और अप्राकृतिक बातोंको ईश्वरकी करामात बतलाते और उन्हींके द्वारा अपने अपने अवतारोंकी प्रतीत कराने लग जाते हैं। जैन, बौद्ध, सिख आदि सभी मतवालोंका यही हाल है। इससे साफ़ जाना जाता है कि दुनियाके लोगोंको न तो अपने लिए ही सत्यधर्मकी खोज करनी है और न उन्हें दूसरोंको ही सत्य धर्म सिखलाना है। बल्कि धर्मोंके बीचमें द्वेष और लड़ाई-झगड़े मचे रहनेके कारण दुनियाके लोग आँख मीचकर—बिना समझे-बूझे ही—अपने अपने धर्मकी बड़ाई करते और दूसरे धर्मोंकी बुराई गाते रहते हैं। इस तरह प्रत्येक धर्मको पक्षपात और द्वेषने बुरी तरह जकड़ रक्खा है।

इस पक्षपात और द्वेषसे दुनियामें बहुत अशान्ति और दुःख फैल रहे हैं तथा धर्म-सिद्धान्तोंमें भी बहुत गड़बड़ी पड़ गई है। इस लिए प्रत्येक मनुष्यको—यदि संसारके अन्य मनुष्योंका दर्द नहीं है तो कमसे कम उसे अपनी भलाईके लिहाजहीसे सही—कुछ समयके लिए पक्षपात और द्वेषको छोड़कर सत्य-मार्गका अन्वेषण अवश्य ही करना चाहिए। इसके सिवा उसे अपने मनमें यह सोचना चाहिए

कि जब हम, औरोंको उनके मतोंकी कलई खोल कर दिखलाते हैं और उनके मतोंको झूठा और भ्रान्त कह कर उन्हें सत्यपथ पर लाना चाहते हैं, तब हम स्वतः ही सत्यमार्गका अन्वेषण क्यों नहीं करते हैं। इस कथनका तात्पर्य्य यह है कि जब तुमने अपने बुद्धिबलसे यह पता लगा लिया कि १०० मेंसे ९९ मत मनुष्योंके चलाये हुए हैं और वे सब ईश्वरकृत माने जाते हैं तथा उनके माननेवाले उन पर पूर्ण विश्वास रखते हैं, तब क्या यह सम्भव नहीं है कि जिस प्रकार ९९ मत-वाले गलती कर रहे हैं उसी प्रकार तुम भी गलतीमें पड़े हुए हो, अर्थात् तुम्हारा मत भी मनुष्यकृत ही हो और तुम भी उसी प्रकारकी गलतीसे उसे ईश्वरकृत मान रहे हो जिस प्रकार कि ९९ मतोंके लोग मान रहे है ? मतलब यह है कि जिस प्रकार तुम दूसरे मत-वालोंको अपने अपने मतकी जाँच करनेको कहते हो उसी प्रकार स्वयं अपने मतकी जाँच क्यों नहीं करते हो ? जब कि तुम स्वयं कह रहे हो कि दुनियामे १०० मे ९९ मनुष्य ऐसे हैं जो मन-गढ़न्त मतोंको ही पक्षपात और मोहके कारण ईश्वरकृत समझ रहे हैं और उनके कारण अपनी गर्दनें कटा रहे हैं तब क्या यह संभव नहीं है कि तुम भी ऐसे ही मोहजालमें फँसे हुए हो, अर्थात् तुम्हारा मत भी ईश्वरकृत न होकर, कोई दूसरा मत ही ईश्वरकृत हो कि जिसको तुम बिना जाँचे ही मनुष्यकृत समझ रहे हो ? इसी तरह क्या यह संभव नहीं है कि दुनियामें कोई भी मत ईश्वरकृत न हो, बल्कि सभी मत मनुष्यकृत हों और उन सबमें तुम्हारा मत बहुत घटिया और कोई अन्य मत सबसे बढ़िया (श्रेष्ठ) हो ?

यदि दुनियामें एकाध ही झूठा मत प्रचलित हो गया होता और दुनियाके सौ मनुष्योंमेंसे एकाध मनुष्य ही उसका अनुयायी होता, तो बेशक तुमको अपने मतपर संदेह करनेकी कोई जरूरत नहीं थी; परन्तु जब तुम्हारे कथनानुसार सौमें ९९ मत झूठे प्रचलित

हो रहे हैं और १०० में ९९ मनुष्य इन झूठे मतोंके ही भक्त बन रहे हैं, अर्थात् जब अधिकतर मनुष्य भ्रममें पड़े हुए हैं, तब सबको ही अपने अपने मतपर संदेह करने और उसकी पूरी पूरी जाँच पड़ताल करनेकी आवश्यकता है। झूठकी ऐसी बहुलता और प्रबलता होने पर भी यदि तुम सत्यासत्यकी जाँच नहीं करते हो, और अपने मतको उस कसौटी पर कसकर नहीं देखते हो जिस कसौटीसे अन्य मतोंको जाँचते हो, तो कहना होगा कि तुम अपने आपको धोखा देना चाहते हो, अर्थात् तुम अपना कल्याण नहीं करना चाहते हो, बल्कि जबरदस्ती अपने धर्म्मको सच्चा कहकर और दूसरे धर्मोंको झूठा बतलाकर अपनेको पक्षपात और द्वेषके गहरे गड्ढेमें डाले रखना पसंद करते हो। इसमें सन्देह नहीं है कि धर्म्मके नामसे मनुष्योंमें चिरकालसे भारी संग्राम होता रहनेके कारण पक्षपात और द्वेषने तुम्हारे हृदयमें बड़ा गहरा घर कर लिया है–यह पक्षपात और द्वेष ही तुम्हारे रोम रोममें घुस गया है कि जिसके सबबसे तुम्हारे हृदयमेंसे पाप-पुण्यका भय तथा सुख दुःख और हानि लाभका विचार ही निकल गया है और केवल यही एक खयाल बाकी रह गया है कि हमारी बातमें फ़र्क न आने पावे, अर्थात् जिस धर्मको हम अपना बतला रहे हैं उसकी तो पताका फहराती रहे और अन्य धर्म्मोंकी प्रतिष्ठा फीकी पड़ जाय। परन्तु विचारशील और बुद्धिमान् लोगोंको यह पक्षपात और द्वेष छोड़ देना चाहिए और दूसरोंकी नहीं तो कमसे कम अपने कल्याणकी फ़िकर तो अवश्य ही रखनी चाहिए।

परन्तु धर्मके नामपर नित्य दंगा–फसाद होते रहनेसे मनुष्योंका हृदय ऐसा कठोर बन गया है और आँखोंपर पक्षपात और द्वेषका ऐसा मजबूत चश्मा चढ़ गया है कि उनको अपने अपने धर्म्मकी बुराई भी भलाईसी प्रतीत होती है और दूसरे धर्म्मोंकी भलाई भी

बुराईका रूप धारण करके काटनेको दौड़ती है। यह इस पक्षपात और द्वेषकी ही महिमा है कि प्रत्येक मतवाले अपने अपने धर्मको सच्चा और शेष ९९ धर्मोंको झूठा बतलाते हैं और जिन प्रमाणोंसे ९९ मतवालोंको झूठा ठहराते हैं उनको अपने मतके साथ नहीं लगाते हैं, बल्कि अपने मतको वे बिना प्रमाणके ही ईश्वरकृत मानते हैं और अपने मतके लिए प्रमाण ढूँढ़ना पाप समझते हैं। इस पक्षपात और द्वेषके कारण मनुष्य अपने तथा पराये धर्मोंकी बातोंसे बिलकुल अनभिज्ञ होनेपर भी यह कहनेमें ज़रा नहीं शरमाता है कि हमारे धर्मके जो सिद्धान्त होंगे वे सब सच्चे हैं और दूसरे सब धर्म्मोंके सिद्धान्त भ्रान्त तथा लचर हैं। इस तरह प्रत्येक मतवाला अपने मतको कल्याणकारी और दूसरोंके मतको पापजनक तथा नरककी ओर ले जानेवाला बतलाता है। धर्मके इस अंध पक्षपातके दृश्य नित्य ही देखनेमें आते हैं और सभी धर्मोंके भोले लोग इस प्रकारकी लीलायें दिखाया करते हैं। बहुतसे लोग तो यहाँ तक मूर्खता प्रकट किया करते हैं कि यदि किसी उलटे-पुलटे सिद्धान्तके विषयमें उनको यह विश्वास दिला दिया जावे कि यह तुम्हारे धर्म्मका सिद्धान्त है, तो चाहे वह सिद्धान्त उनके धर्म्मके विरुद्ध ही क्यों न हो, वे उसे बिलकुल सच्चा समझकर उसका पूरा पूरा पक्ष लेने लगते हैं; और यदि इसके विपरीत खास उनके धर्मके किसी अति उत्तम सिद्धान्तके विषयमें यह बतला दिया जाय कि-यह सिद्धान्त उनके धर्म्मका नहीं है तो वे उस सिद्धान्तको बिलकुल झूठा सिद्ध करके उससे द्वेष करने लग जाते हैं।

मतलब यह है कि इस समय मनुष्य पक्षपात और द्वेषका पुतला बन रहा है और इसे ही अपना परमधर्म समझ रहा है। अतएव बुद्धिमानोंको उचित है कि वे पक्षपात और द्वेषको छोडकर अपने प्रकृत लाभालाभको देखें।

२१-मनुष्यकी अल्पज्ञता और पूर्वजोंके धर्म्मका अनुकरण ।

सम्भव है कि इस स्थलपर हमारे भाई यह कहने लगें कि मनुष्य अल्पज्ञ है,-जब उसे इतनी ही खबर नहीं है कि हमारे शरीरके अंदर क्या है और किस तरह उसका काम चल रहा है, तब वह जीव और ईश्वर, स्वर्ग और नरक और भूत-भविष्यतकी बातोंको कैसे जाँच सकता है- कैसे उन्हें झूठ या सच ठहरा सकता है ? अतएव उसको सर्वज्ञ परमेश्वरके उन वचनोंका भरोसा करना पड़ता है जो आत्मज्ञानी ऋषियोंद्वारा उसे विदित हुए हैं या शास्त्रोंमें लिखे मिलते हैं। इस पर हमारा यह नम्र निवेदन है कि यदि संसारमें एक ही सर्वज्ञ परमेश्वर होता और वह एक ही प्रकारके आत्मज्ञानियोंद्वारा अपने वाक्य हम तक पहुँचाता, अर्थात् एक ही प्रकारके सिद्धान्तोंवाले शास्त्र दुनियामें होते, तब तो आँख मीचकर कर उन्हींका कहना मान लिया जाता और अपनी बुद्धिसे कुछ भी काम नहीं लिया जाता; परन्तु यहाँ तो सैकड़ों सर्वज्ञ परमेश्वर पृथक् पृथक् रूपसे प्रकट हो रहे हैं और उनके वाक्योंको मनुष्यों तक पहुँचानेवाले भी सभी आत्मज्ञानी कहे जाते है तथा उन सबके ही सिद्धान्त शास्त्रोंमें लिखे मिलते हैं। इसी लिए प्रत्येक सर्वज्ञ परमेश्वरका एक एक जुदा जुदा मत होनेके कारण इस पृथ्वीपर भिन्न भिन्न प्रकारके सैकड़ों मत प्रकट हो गये हैं। ऐसी दशामें यदि अल्पज्ञ होनेके कारण मनुष्य इन बातोंमें अपनी बुद्धि नहीं चला सकता है तब वह यह बात भी कैसे कह सकता है कि इन सैकड़ों धर्मोंमेंसे एक तो सर्वज्ञपरमेश्वरकथित है और शेष सब काल्पनिक तथा असत्य हैं ? बल्कि इस अवस्थामें तो मनुष्यको सभी सर्वज्ञ परमेश्वरोंके आगे

सिर झुकाना चाहिए और सभी धर्म्मोंको सत्य मानकर उनके आदेशानुसार चलना चाहिए। परन्तु यह बिलकुल असंभव है, क्यों कि इन धर्मोंमें तो धरती-आसमान जैसा अंतर है। एक धर्म जिस क्रियाको अत्यन्त आवश्यकीय बतलाता है दूसरा धर्म्म उसीको महापाप ठहराता है। इसके सिवा ये सभी परमेश्वर दूसरे परमेश्वरोंका निषेध भी तो करते हैं, अर्थात् उनको झूठा कहकर उनके मानने और पूजनेसे अपनी अप्रसन्नता भी तो प्रकट करते हैं। इस कारण यदि मनुष्य अपनी बुद्धिसे बिलकुल काम न ले और सभी परमेश्वरोंको पूजने और सभी धर्म्मोंको माननेके लिए तैयार हो जाय, तो दूसरे सभी धर्म अपने एक ही धर्म्मको मानने और अन्य समस्त धर्म्मोंको असत्य समझनेका उपदेश देते हैं। फिर बतलाइए कि ऐसी हालतमें मनुष्य क्या करे और क्या न करे ? अर्थात् वह अपनी अल्प बुद्धिको लगाये बिना किस तरह किसी एक सर्वज्ञ परमेश्वरको सत्य माने और किस तरह अन्य सर्वज्ञ परमेश्वरोंको झूठा माने, या किस तरह उनके बतलाये हुए धर्म्मोंको भ्रान्त समझे ?

इस स्थान पर यदि यह कहा जाय कि बाप-दादे या बड़े-बूढ़े जिस धर्म्मको मानते चले आये हों उसीको सच माने और दूसरोंको झूठा जाने, तो यह पहचान भी तो इस अल्पज्ञ मनुष्यने अपनी बुद्धिसे ही निकाली है। इसके सिवा इसका यही अर्थ होता है कि हम अपनी अल्पज्ञताके कारण यह बात तो नहीं जान सकते हैं कि कौन धर्म्म सच्चा है और कौन झूठा है, परन्तु अपनी उस अल्पबुद्धिसे इतना बात अवश्य जान गये हैं कि हमारे बापदादे या पूर्वज सच्चे और झूठे धर्म्मकी पहिचान करनेकी शक्ति रखते थे, अर्थात् वे हम जैसे अल्पज्ञ नहीं, किन्तु सर्वज्ञ थे। परन्तु जब हम अपनी अल्पबुद्धिसे इतनी बात समझ सकते हैं कि हमारे बाप-दादे सर्वज्ञ थे तब यह क्यों नहीं जान सकते हैं कि इन धर्म्मों-

मेंसे कौनसा धर्म्म सर्वज्ञ ईश्वरकथित है और कौन नहीं है। दूसरे, यदि मनुष्योंके बाप-दादे सर्वज्ञ होते, या अन्य किसी तरहसे वास्तविक धर्म्मको पहिचान सकते, तो वे सब एक ही धर्म्मके अनुयायी होते, परंतु ऐसा नहीं है, मनुष्योंके पूर्वज उन सभी धर्म्मोंके माननेवाले चले आते हैं जो सौमेंसे ९९ झूठे हैं। तब उनके धर्म्मको ग्रहण करनेका नियम बनाना तो खुल्लमखुल्ला सौमें ९९ मनुष्योंको झूठा धर्म धारण कराना और उन्हें सच्चे धर्मसे विमुख रखना है।

धर्मोंके पक्षपात और द्वेषसे लोगोंका हृदय ऐसा मलिन हो गया है-इनका उनपर ऐसा गहरा रंग चढ़ गया है कि अब उनको अपनी भलाई बुराई-कल्याण अकल्याणका कुछ भी खयाल नहीं रहा है। उन्हें पक्षपात और द्वेषके सिवा कुछ नहीं सूझता है। इसी लिए यह एक सीधा रास्ता निकाल लिया गया है कि बाप-दादे जिस धर्म्मको मानते चले आते हों-वह चाहे सच्चा हो या झूठा, कल्याणकारी हो या अकल्याणकारी, स्वर्गमें लेजानेवाला हो या नरकमें-उसीको सच्चा कहते रहना और उसीको मानते रहना। इसका नतीजा यह हो रहा है कि सौमें ९९ मनुष्य झूठे धर्म्मको ग्रहण कर रहे हैं और उनके नामपर लड़-मर रहे हैं। बाप-दादोंके धर्म्मको माननेका यह सत्यानाशी नियम आगेके लिए कायम रखना मानो आगामी संतानको इस बातपर बाध्य करना है कि उनमें भी सौमेंसे ९९ मनुष्य बिलकुल झूठे धर्मोंको मानें और अपना अकल्याण करते रहें।

बुद्धिमान मनुष्योंको सोचना चाहिए कि मनुष्य एक धर्म्मके मामलेमें ही अल्पज्ञ नहीं हैं, बल्कि वह सभी मामलोंमें अल्पज्ञ है। जैसे वह न तो अपने शरीरकी प्रकृतिको ही ठीक ठीक जानता है और न शरीरके रोगोंके कारणोंको ही पूरी पूरी तरह पहिचानता है, तो भी अपना अल्पबुद्धिसे थोड़ा बहुत जितना जान सकता है उसीसे अपना काम चलाता है। अपनी अल्पज्ञताके कारण यद्यपि

कभी कभी वह गलती भी किया करता है और नुकसान भी उठाता है, परन्तु अपनी बुद्धिसे काम न लेने और बीमारीका बिलकुल इलाज न करनेकी अपेक्षा अपनी अल्पबुद्धिसे काम लेनेसे फायदेमें रहता है। इसी प्रकार यह अल्पज्ञ मनुष्य यदि धर्मके मामलेमें भी अपनी बुद्धिसे काम ले, अर्थात् जिस प्रकार शरीरके रोगों और ओषधियोंके गुणोंकी छानबीन करता है उसी तरह धर्मकी बातोंकी भी छानबीन करने लगे, तो वह उस विषयमें भी बहुत कुछ सत्य ज्ञान प्राप्त कर ले। जिस प्रकार अपनी अल्प बुद्धिसे वह अपने शरीरके अनेक रोगोंका इलाज कर लेता है और स्वास्थ्यके नियम बना लेता है, उसी प्रकार अपनी आत्माका भी इलाज करने लग जावे और अपनी आत्मिक सुख-शांतिके लिए भी बहुतसे नियम बना लेवे। परन्तु शोक है कि धर्मके नामपर आपसमें लड़ाई झगड़े होते रहनेसे यह मनुष्य पक्षपात और द्वेषमें ऐसा फँस गया है कि वह आत्मकल्याणके लिए सत्यमार्गकी खोज करनेकी ओर ज़रा भी नहीं झुकता है, केवल अपने बाप-दादोंके खड़े किये हुए झंडोंका पक्ष करनेकी ही फिकरमें लगा रहता है।

दुनियाके लोग बीमारीके मामलेमें इस नियमको कदापि स्वीकार नहीं करते हैं कि बाप-दादे जिस प्रकारका इलाज करते थे, वह इलाज अच्छा हो या बुरा, आप भी वही इलाज करावें और जिस हकीमसे वे इलाज कराते थे उससे रोगकी निवृत्ति हो या न हो, आप भी उसीसे इलाज करावें। इसके विपरीत बीमारीके मामलेमें सभी लोग नवीन नवीन उपाय खोजते रहते हैं, सभी तरहके वैद्य डाक्टरोंको टटोलते हैं और अपनी अल्पबुद्धिसे इस बातका निश्चय करते रहते हैं कि इस रोगमें किसकी ओषधि लेनी चाहिए और किसकी सलाह पर चलना चाहिए। जिसकी ओषधिसे वे आराम होता नहीं देखते हैं या रोग बढ़ जानेका खयाल

करते हैं उसका इलाज तुरन्त छोड़ देते हैं और किसी दूसरे वैद्य हकीमको तलाशने लगते हैं। ऐसा करनेसे यद्यपि वे अपनी अल्पज्ञताके कारण कभी कभी गलती भी कर जाते हैं और नुकसान भी उठाते है, तो भी अपनी बुद्धिसे अच्छा हकीम या वैद्य ढूंढकर ही अपना इलाज़ कराते हैं और बहुधा बड़े बड़े भयंकर तथा असाध्य रोगोंसे छुटकारा पा लेते है। ऐसा करनेसे वे उस गतानुगत अवस्थासे हज़ार गुणा अच्छे रहते हैं और जरूरतके अनुसार अनेक वैद्यों, हकीमों या डाक्टरोंसे इलाज कराके लाभ उठाया करते हैं।

मनुष्य ऐसा मूर्ख नहीं है कि बीमारी आदि लौकिक कार्य्योंमें भी वह अपने बाप-दादोंकी लकीर पर चलता रहे और अपनेको अल्पज्ञ समझकर जरूरतके अनुसार अपनी बुद्धिसे काम न लेवे। मनुष्य कैसा ही अल्पज्ञ क्यों न हो परन्तु अपने लौकिक कार्य्योंमें अवश्य ही अपनी बुद्धिसे काम लेता है और जिस कार्य्यमें अपनी हानि दखता है उसे छोड़कर शीघ्र ही कोई दूसरा उत्तम उपाय खोजने लगता है। एक धर्म्मके मामलेमें ही वह ऐसा नही करना चाहता है, अर्थात् धर्म्मके लिए जरा भी अपनी बुद्धिको श्रम नहीं देना चाहता है। यही कारण है कि धर्म्मके मामलेमें इतना भारी अंधेर फैला हुआ है कि १०० मेंसे ९९ पंथ झूठे होने पर बराबर चल रहे हैं और लोग उनमेंसे निकलनेका जरा भी साहस नहीं करते हैं।

संसारके छोटे बड़े सभी कार्य्योंके विषयमें मनुष्य ऐसा सोचा करते हैं कि अल्पज्ञ होनेके कारण यद्यपि मैं इन कार्य्योंके हानि-लाभका पूरा पूरा निश्चय नहीं कर सकता हूँ, इस कारण कभी कभी गलती भी कर जाता हूँ, परन्तु यदि अपनी बुद्धिसे बिलकुल काम लेना छोड़ दूँगा, तो इन छोटे मोटे उपायोंसे भी वँचित हो जाऊँगा जो अभी अपनी अल्पबुद्धिसे कर लेता हूँ। यदि मैं अपनी अल्पबुद्धिका उपयोग न करूँ और आँख मीचकर काम करने लग

जाऊँ तो मेरे सभी काम उल्टे पुल्टे हो जायँ और सारा ही खेल बिगड़ जाय। इस लिए यद्यपि मैं सर्वज्ञ नहीं हूँ, तो भी अपनी तुच्छ बुद्धिके द्वारा जहाँतक अपने हानि लाभका विचार कर सकता हूँ वहाँतक मुझे अवश्य ही विचार करना चाहिए—और जहाँतक अपने कार्य्यकी सिद्धिके लिए उत्तमसे उत्तम उपाय खोज सकता हूँ वहाँतक अवश्य खोजना चाहिए—यही मेरा कर्त्तव्य और मनुष्यत्व है। परन्तु शोक है कि धर्म्मके मामलेमें मनुष्य अपना यह कर्त्तव्य बिलकुल भूल जाते हैं और अपनी आत्माके हानि-लाभका कुछ भी विचार न करके—आँख मीचकर अपने बाप-दादोंके मार्गपर चलते रहते हैं और अल्पज्ञ होनेका बहाना बनाकर धर्म्मके मामलेमें बुद्धिको लगाने या उसमें कुछ भी छान-बीन करनेको महापाप समझते हैं। इसके सिवा अपने बाप-दादोंका अनुकरण करनेमें वे यहाँतक अंधे हो जाते हैं कि बाप-दादोंने जिस धर्म्मात्मा पंडितसे दीक्षा ली हो, या जिसे अपना धर्म्मगुरु बनाया हो, उसके बेटे पोतेको ही—चाहे वह कैसा ही मूर्ख और कुकर्मी क्यों न हो, अपना गुरु बनाते हैं। परंतु बाप-दादे जिस हकीमसे इलाज कराते थे उसका बेटा पोता यदि मूर्ख हो तो उससे वे कदापि इलाज नहीं कराते हैं, तत्काल ही कोई दूसरा अच्छा हकीम खोजने लगते हैं।

इसका कारण यही है कि लौकिक कार्य्योंके हानि-लाभमें तो मनुष्य अपना वास्तविक हानि लाभ समझता है और इस लिए वह उसमें अपनी बुद्धिको लगा कर नवीन नवीन उपाय ढूंढ़ते रहना ज़रूरी समझता है; परन्तु धर्म्मकी बातोंको वह एक प्रकारका खेल तमाशा या पक्षपात और द्वेष करनेका बहाना मात्र समझता है और इसी लिए जिस धर्म्मके पक्षपाती उसके बापदादे रहे आये हैं उसी धर्म्मका पक्ष करना और उसका झंडा ऊँचा उठाना अपना कर्त्तव्य समझ लेता है। यही नहीं, ऊपरसे वह आत्मकल्याणकी बातें

भी बनाने लगता है। पर वास्तवमें यदि आत्मकल्याणकी बातें उसके अन्तरंगमें होतीं, तो वह न तो दूसरे धर्म्मवालोंसे द्वेष ही करता और न धर्म्मके नामसे लड़ाई-झगड़े ही उठाता, बल्कि वह अत्यन्त शान्त होकर सभीसे प्रेम करने लगता और पक्षपातको हटा कर सभी धर्म्मोंकी खोज करनेमें तत्पर होता। जिस प्रकार वह अपने लौकिक कार्य्योंमें अपनी समझके अनुसार एकसे एक बढ़कर उपाय खोजता रहता है, उसी प्रकार धर्म्मके मामलेमें भी करता, अर्थात् जो बात जिस धर्म्ममें उसे लाभदायक प्रतीत होती उसीको वह ग्रहण करता और जिस बातको हानिकारक समझता उसको तुरंत ही छोड़ देता। परन्तु धर्म्मकी तो उसके हृदयमें कोई कदर ही नहीं है, इसी-लिए वह उसकी जाँच-पड़तालकी ओर जरा भी ध्यान नहीं देता है। वह जो कुछ करता है, केवल अपने बाप-दादोंके झंडेका पक्ष निभानेके लिए।

विचारशील पुरुषो! ज़रा तो विचारो कि जब तुम किसी विध-र्म्मीसे बातचीत करते हो और उसको उसके धर्म्मकी असत्यता और अपने धर्म्मकी सत्यता समझाते हो, उस समय तुम सिवाय बुद्धिके और किसी चीजसे काम नहीं लेते हो और उसे भी बुद्धिसे काम लेनेका उपदे-श देते हो, अर्थात् बुद्धिसे ही सब सिद्धान्तोंकी जाँच करना और सच झूठकी परख करना सिखाते हो, क्यों कि वह दूसरे मतवाला न तुम्हारे मतके शास्त्रोंपर विश्वास रखता है और न उन्हें सर्वज्ञ-भाषित ही मानता है, जिससे तुम उसको अपने शास्त्रोंके वचन दिखाकर चुप करा सकते; वह तो केवल अपने ही शास्त्रोंपर विश्वास रखता है और उन्हें ही ईश्वर-वाक्य मानता है। इस लिए तुम उसे यही समझाते हो कि मनुष्यको शास्त्र-वचनों पर ही भरोसा करके नहीं बैठ रहना चाहिए, बल्कि सब सिद्धान्तोंकी जाँच अपने बुद्धि-बलके द्वारा ही करनी चाहिए। क्यों कि जब सभी धर्मोंवाले अपने

अपने धर्म्मको ईश्वर-वाक्य बतलाते हैं, तब यह कैसे हो सकता है कि एक धर्म्मको तो हम आँख मीचकर ईश्वर-वाक्य मान लें और दूसरे और धर्म्मोंको कपोलकल्पित ठहरावें। इस वास्ते मनुष्यका कर्त्तव्य है कि वह अपनी बुद्धिको जोर देकर और पक्षपातको त्याग कर सभी सिद्धान्तोंकी जाँच करे। इससे जो सिद्धान्त सत्य सिद्ध होते जावें उन्हें ग्रहण करता जावे और जो सिद्धांत असत्य सिद्ध होवें, उन्हें त्यागता जावे। इस प्रकार तुम उसको शब्दप्रमाणकी--अर्थात् जो कुछ शास्त्रोंमे लिखा है उसकी--परवा न करके प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणोंके द्वारा समस्त सिद्धान्तोंकी जाँच करना बतलाते हो और तुम भी उस समय उसे अपने शास्त्रोंके वाक्य न सुना कर प्रत्यक्ष और अनुमानसे ही अपने सिद्धान्तोंकी सचाई और उसके सिद्धान्तोंकी झुठाई सिद्ध करते हो। परन्तु क्या यह खेदकी बात नहीं है कि यह सब कष्ट तुम दूसरोंके समझानेके लिए उठाते हो और अपने लिए सत्यकी कुछ भी खोज नहीं करते हो, अर्थात् अपने लिए तो तुम केवल शब्द-प्रमाणको ही काफी समझते हो और अपने शास्त्रोंके वचनोंके सिवा और कुछ भी नहीं सुनना चाहते हो।

इस लिए धर्मके मामलेमें हमको ऐसा वेपरवाह नहीं बनना चाहिए, बल्कि पक्षपातको छोड़कर अपने पराये धर्मका खयाल हृदयसे दूरकरके सत्यकी खोज करनी चाहिए। अपने शास्त्रोंमें जो कुछ लिखा है आँख मीचकर उसीपर विश्वास कर बैठना ठीक नहीं। हमें भी अपनी बुद्धिसे प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणोंके द्वारा सब सिद्धान्तोंकी जाँच करनी चाहिए और जो सिद्धान्त सत्य निकलें उन्हीं पर विश्वास करना चाहिए। ऐसा करनेसे ही हम पक्षपातके गहरे गढ़ेसे निकलकर सत्य मार्गपर प्रतिष्ठित हो सकेंगे।

२२–भक्ति और उद्यम ।

धार्मिक सिद्धान्तोंका स्थापित करना या उनको सच झूठ ठहराना, इस पुस्तकका उद्देश्य नहीं है। इसमें हमें मनुष्य-जीवन-निर्वाहकी मोटी मोटी बातोंका ही वर्णन करना है। इस लिए मनुष्य अपनी अपनी श्रद्धा और खोजके अनुसार जीव और ईश्वर, अर्थात् आत्मा और परमात्माका चाहे जो स्वरूप माने, अपने आत्माके कल्याणके लिए चाहे जो मार्ग निकाले और अपनी आध्यात्मिक और पारलौकिक उन्नतिके लिए चाहे जिस रीतिसे परमेश्वर, देवी-देवता या संतों महन्तोंको माने और उनकी पूजा करे, इस पर हमें इस जगह कुछ भी बहस नहीं करना है; परंतु जीवन-निर्वाहके लिए इतना अवश्य कहना है कि वह लौकिक कार्य्योंकी सिद्धिके लिए उनके कारणोंको खोजे और उनको ही जुटानेका प्रयत्न करे, किसी गुप्त शक्ति या मंत्र तंत्र पर भरोसा न करे। अर्थात् जो लौकिक कार्य्य जिन जिन कारणोंके एकत्रित होनेसे सम्पन्न होता है, उस कार्य्यको बनानेके लिए उन सब कारणोंको जुटावे, उसकी सिद्धिके लिए किसी परमेश्वर, देवी-देवता, साधु-संत या जंत्र मंत्र आदि पर भरोसा न करने लगे। क्योंकि जिस प्रकार गेंहूँ बोनेसे ही गेंहूँ पैदा हो सकते हैं चावल बोनेसे नहीं, उसी तरह अन्य लौकिक कार्य्य भी उचित कारणोंके जुटाये बिना सम्पन्न नहीं हो सकते हैं। इस लिए जिन जिन कारणोंसे जो कार्य्य बनता है उनको न जुटानेवाला और इन गुप्त शक्तियोंपर भरोसा करनेवाला उस कार्य्यकी सिद्धिसे वंचित रहता है और व्यर्थ ही अपने मनको भटकाता है।

यदि किसी व्यक्तिको हमारी इस बातपर भरोसा न हो और वह कारणोंको जुटाये बिना ही किसी गुप्त शक्तिके द्वारा कार्य्यसिद्धि होना संभव

मानता हो, तो उसे चाहिए कि वह उससे किसी छोटेसे कार्य्यको कराके देख ले। यदि कोई गुप्तशक्ति उसका वह छोटासा कार्य्य कर दे, तो फिर उसको बड़े बड़े कार्य्योंके हो जानेका भरोसा कर लेना चाहिए; परंतु यदि वह छोटासा कार्य्य भी न बन सके तो समझ लेना चाहिए कि या तो उस गुप्त शक्तिमें इस प्रकार कार्य्य कर देनेकी शक्ति ही नहीं है, या वह गुप्त शक्ति किसीका कहना ही नहीं मानती है। उदाहरणार्थ-वह किसी फटे हुए कपड़ेको हाथमें लेकर बिना सुई धागेके उसके सिलजानेकी प्रार्थना कर देखे, या बिना आग जलाय तवेपर रोटी डालकर उसके सिक जानेकी या इसी तरह और भी किसी छोटे कार्यके हो जानेकी प्रार्थना कर देख ले। यदि उस गुप्त शक्तिसे ये छोटे छोटे कार्य्य ही न बन सकें, तो फिर प्रार्थना आदिके द्वारा अन्य बड़े बड़े कामोंके हो जानेकी आशाको भी त्याग दे; बल्कि जिस प्रकार वह ये छोटे छोटे कार्य्य प्रार्थना किये बिना ही उनके कारणोंको जुटाकर कर लेता है, उसी प्रकार अपने बड़े बड़े कार्य्य भी उनके कारणोंको जुटाकर कर लेवे।

इसी प्रकार, मनुष्यको सुख-दुःख या उसके कर्म्मोंका फल देनेवाला कोई परमेश्वर है या नहीं, इसपर भी हम इस पुस्तकमें कोई बहस नहीं करना चाहते है, परन्तु इतना अवश्य कह देना चाहते है कि तुम अपने आचरणोंको सुधारने और उत्तम उत्तम कर्म करनेकी कोशिश करते रहो और यह आशा बिलकुल मत रक्खो कि पूजा भक्ति करने या स्तुति-स्तोत्र पढनेसे तुम्हें अपने बुरे कर्म्मोंका फल न भोगना पड़ेगा, या उत्तम कार्य्य किये बिना ही तुमको उत्तम फल मिल जायगा। ज़रा विचार करो कि यदि कोई बदमाश, जो चोरी और डकैती आदि बड़े बड़े अपराध किया करता हो, अपने देशके राजाके पा[illegible] जाकर तरह तरहकी डालियाँ लगाकर और भेंट देकर य[illegible] प्रार्थना करे कि मुझसे चोरी और डकैती तो छूट नहीं सकती

परंतु मैं आपका सच्चा भक्त हूँ, इस लिए मेरे अपराधोंपर ध्यान न देकर आप अपने राज्यके सभी हाकिमोंके पास 'आज्ञापत्र' लिख भेजिए कि यह आदमी यद्यपि बड़े बड़े अपराध किया करता है परंतु अपनी सेवा और भक्तिसे हमको प्रसन्न रखता है, इस लिए हम इसके अगले पिछले सभी अपराध क्षमा करते हैं और सभी हाकिमोंको हुक्म देते हैं कि यह आदमी चाहे जैसा अपराध या उत्पात क्यों न करे; परन्तु इसे कभी मत टोको और न इसे दंड ही दो; बल्कि इसको सब प्रकारकी सहायता देते रहो और इसे सुखी रखनेकी हर-तरहसे कोशिश करो, तो आप स्वयं ही विचार करें कि उस बदमा-शकी यह प्रार्थना क्या कभी कोई राजा स्वीकार कर लेगा? यदि कर भी ले, तो क्या वह राजा महामूर्ख, अन्यायी और अपनी और प्रजाका सत्यानाश करनेवाला सिद्ध नहीं होगा?

बस, इस एक ही दृष्टान्तसे समझ लीजिए कि यदि हम अपने आचरणोंको सुधारनेकी कोशिश न करें और परमेश्वर, देवी-देवता या साधु-संतोंकी पूजा करके, उनको तरह तरहकी भेटें चढ़ाकर और आठों पहर उनके नामकी माला टार टार कर यह प्रार्थना करने लगें कि तुम मुझे अपना समझ कर मेरे पापोंपर कुछ ध्यान मत दो और अग्नि, जल, वायु आदि सभी देवताओंके पास यह आज्ञा भेज दो कि यह आदमी हमारा परम भक्त है, यह चाहे जो पाप करे और चाहे जितने प्राकृतिक नियमोंको तोड़े, या संसारी जीवोंको सतावे, परंतु इसके अवगुणोंपर बिलकुल ध्यान मत दो, न इसे किसी तरह टोको; बल्कि इसके सब कार्य सिद्ध कर दिया करो और इसके अपराधोंमें भी सहायता करते रहो; तो हमारी यह प्रार्थना कभी स्वीकार नहीं होगी। ऐसी प्रार्थना करके तो मानों हम अपने देवी-देवताओंकी स्तुति या भक्ति नहीं करते हैं, वरन् उन्हें महा अन्यायी, खुशामदपसंद और घूसखोर सिद्ध करते हैं,—और ऐसा

करके पाप कमाते हैं। इस लिए परमेश्वर, देवी-देवता या साधु-संतोंकी पूजा भक्ति आदि हमको उनके उत्तम गुणोंको ग्रहण करने, अपनी आत्माको उन्नत बनाने और अपने आचरणोंको सुधारनेके लिए ही करनी चाहिए और यह आशा कदापि नहीं करनी चाहिए कि उनकी पूजा भक्ति करने, स्तुति-स्तोत्र पढ़ने या उनकी खुशामद करनेसे हमको अपने खोटे कर्म्मोंका फल न भोगना पड़ेगा और उत्तम कर्म किये बिना ही हमें उत्तम फल मिल जायगा। हमको यह अच्छी तरह समझ रखना चाहिए कि हम भले बुरे जो जो कार्य्य करते हैं उन सबका फल हमें अवश्य भोगना पड़ता है-फिर वह फल चाहे प्रकृतिके द्वारा मिलता हो, चाहे ईश्वरके।

२३--भाग्य और उद्यम।

भाग्य और उपाय अर्थात् तकदीर और तदबीरके विषयमें भी लोग बहुत चक्करमें पड़े हुए हैं। एक कहता है कि पूर्व जन्ममें हमने जो कुछ भले बुरे कर्म्म किये हैं उन्हींके अनुसार हमें सुख दुःख मिलता है। दूसरा कहता है कि पहले जन्मका तो हमारा कुछ कर्म नहीं था, अर्थात् हमारा पहले कोई जन्म ही नहीं था, हमको परमेश्वरने इसी जन्ममें नवीन जीव बना दिया है, इस कारण वह ही जिसको जिस अवस्थामें रखना चाहता है, रखता है; उसे जो मंजूर होता है वही करता है--उसकी आज्ञाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल-डुल सकता है। परंतु अब हम जो कर्म करेंगे उसका फल हमको आगामी जन्ममें अवश्य मिलेगा और उसीके अनुसार हम स्वर्ग या नरकमें डाले जावेंगे और फिर अनन्त काल तक वहीं पड़े रहेंगे। अर्थात् इस एक जन्मके फल भुगतनेके लिए हमें अनन्त कालतक एक अवस्थामें पड़ा रहना होगा। तीसरा कहता है कि जैसा हमारा पूर्व जन्मका कर्म होता है और जो कुछ कर्म हम इस जन्ममें करते हैं, उन दोनों जन्मोंके कर्मानुसार हमें सुख दुःख मिलता है। उदाहरणार्थ--यदि हमने कोई ऐसा भोजन कर लिया हो जिसके कारण हमारे पेटमें दर्द होने लगता, तथा कुपच होकर अगला पिछला खाया पिया भी सब निकल जाता और हम बहुत कमजोर हो जाते। परंतु दर्द होनेके पहले यदि हमने ऐसा चूर्ण खा लिया हो, जो उस भोजनको अच्छी तरह पचा दे तो हमको दर्द भी नहीं होगा और वह भोजन हमारी ताकतको भी बढ़ावेगा। इस कारण हमको अपने पहले कर्मोपर ही सब्र करके नहीं बैठ रहना चाहिए, बल्कि इस जन्ममें भी तदबीर करते रहना चाहिए

करके पाप कमाते हैं। इस लिए परमेश्वर, देवी-देवता या साधु-संतोंकी पूजा भक्ति आदि हमको उनके उत्तम गुणोंको ग्रहण करने, अपनी आत्माको उन्नत बनाने और अपने आचरणोंको सुधारनेके लिए ही करनी चाहिए और यह आशा कदापि नहीं करनी चाहिए कि उनकी पूजा भक्ति करने, स्तुति-स्तोत्र पढ़ने या उनकी खुशामद करनेसे हमको अपने खोटे कर्म्मोंका फल न भोगना पड़ेगा और उत्तम कर्म किये बिना ही हमें उत्तम फल मिल जायगा। हमको यह अच्छी तरह समझ रखना चाहिए कि हम भले बुरे जो जो कार्य्य करते हैं उन सबका फल हमें अवश्य भोगना पड़ता है-फिर वह फल चाहे प्रकृतिके द्वारा मिलता हो, चाहे ईश्वरके।

२३--भाग्य और उद्यम।

भाग्य और उपाय अर्थात् तकदीर और तदबीरके विषयमें भी लोग बहुत चक्करमें पड़े हुए हैं। एक कहता है कि पूर्व जन्ममें हमने जो कुछ भले बुरे कर्म्म किये हैं उन्हींके अनुसार हमें सुख दुःख मिलता है। दूसरा कहता है कि पहले जन्मका तो हमारा कुछ कर्म नहीं था, अर्थात् हमारा पहले कोई जन्म ही नहीं था, हमको परमेश्वरने इसी जन्ममें नवीन जीव बना दिया है, इस कारण वह ही जिसको जिस अवस्थामें रखना चाहता है, रखता है; उसे जो मंजूर होता है वही करता है–उसकी आज्ञाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल-डुल सकता है। परंतु अब हम जो कर्म करेंगे उसका फल हमको आगामी जन्ममें अवश्य मिलेगा और उसीके अनुसार हम स्वर्ग या नरकमें डाले जावेंगे और फिर अनन्त काल तक वहीं पड़े रहेंगे। अर्थात् इस एक जन्मके फल भुगतनेके लिए हमें अनन्त कालतक एक अवस्थामें पड़ा रहना होगा। तीसरा कहता है कि जैसा हमारा पूर्व जन्मका कर्म होता है और जो कुछ कर्म हम इस जन्ममें करते हैं, उन दोनों जन्मोंके कर्मानुसार हमें सुख दुःख मिलता है। उदाहरणार्थ–यदि हमने कोई ऐसा भोजन कर लिया हो जिसके कारण हमारे पेटमें दर्द होने लगता, तथा कुपच होकर अगला पिछला खाया पिया भी सब निकल जाता और हम बहुत कमजोर हो जाते। परंतु दर्द होनेके पहले यदि हमने ऐसा चूर्ण खा लिया हो, जो उस भोजनको अच्छी तरह पचा दे तो हमको दर्द भी नहीं होगा और वह भोजन हमारी ताकतको भी बढ़ावेगा। इस कारण हमको अपने पहले कर्मोपर ही सब्र करके नहीं बैठ रहना चाहिए, बल्कि इस जन्ममें भी तदबीर करते रहना चाहिए

इसी तरह कोई चौथा कहता है कि पिछले कर्म्मोंका भी फल मिलता है और वर्तमान समयके कर्म्मोंका भी, अर्थात् तकदीर और तदबीर दोनों काम आती हैं। परंतु कुछ आकस्मिक घटनायें ऐसी भी हो जाती हैं कि जिनका तदबीर और तकदीर दोनोंसे कुछ संबंध नहीं रहता है। कारण कि संसारका सारा चक्र हमारे कर्म्मोंके अधीन नहीं हो सकता है और यदि अधीन हो भी तो अनेक जीवोंके कर्म्मोंके अधीन कैसे हो सकता है? संसार तो अपने स्वभावके ही अनुसार चल रहा है—वह किसी जीवके कर्म्मोंके अधीन नहीं है। अर्थात् हवा, पानी, सूर्य, चन्द्र आदि प्रकृतिकी सभी वस्तुयें अपने अपने स्वभावके अनुसार कार्य्य करती हैं और उनसे जो परिणाम निकलते हैं वे सभी मनुष्योंको भुगतने पड़ते हैं। यही आकस्मिक घटनायें हैं जिनसे कोई नहीं बच सकता। इस पर दूसरा कहता है कि मनुष्य अपनी बुद्धिसे इनसे बचनेका भी उपाय कर सकता है और करता रहता है। बेशक, वर्षा किसी मनुष्यके कर्म्मोंकी अधीनताके कारण नहीं होती है, वह अपने स्वभावके अनुसार जब उसके कारण जुट जाते हैं, तभी हुआ करती है, परन्तु मनुष्य मकान बनाकर या छतरी लगाकर अपनेको भीगनेसे बचा सकता है, और वर्षाके पानीको किसी तालाबमें इकट्ठा करके और नहर आदिके द्वारा इच्छित स्थान पर ले जाकर उससे अपने अनेक कार्य्य भी बना सकता है।

इस प्रकार तक़दीर और तदबीरके विषयमें अनेक प्रकारके सिद्धान्त प्रचलित हो रहे हैं; परन्तु इस पुस्तकमें हम इन सिद्धान्तों-पर कुछ भी बहस न करके स्थूल रूपसे यही कहना चाहते हैं कि मनुष्य चाहे जिस सिद्धान्तको मानता हो, परन्तु उसे उद्यम अवश्य करना चाहिए और ईश्वरकी मर्जी, पूर्वजन्मके कर्म, या आकस्मिक घटनाओंके भरोसे उसे कदापि नहीं बैठना चाहिए। अर्थात् यह खयाल करके कि जो कुछ हमारे भाग्यमें बदा होगा, या जो होनहार

होगा वह अवश्य ही होगा, हमको अपना कर्त्तव्य कदापि नहीं छोड़ना चाहिए। क्योंकि यदि यही सिद्धान्त सच्चा हो कि जो होनहार होगा वही होगा, हमारा पुरुषार्थ कुछ भी काम न आयगा, तो भी पुरुषार्थ करते रहनेसे कुछ हानि नहीं होती है। क्योंकि हमारे पुरुषार्थ या उद्यमसे वह होनहार हमसे नाराज होकर अपनी चाल तो बदल नहीं देगी—वह तो ज्योंकी त्यों ही रहेगी; हाँ, यदि भाग्य या होनहार वास्तवमें कोई वस्तु नहीं है, बल्कि जो कुछ होता है वह पुरुषार्थसे होता है या इस समयका पुरुषार्थ हमारे भाग्य या होनहारको बदल सकता है और आकस्मिक घटनाओंसे बचा सकता है, तो भाग्य या होनहारके भरोसे पर बैठे रहनेसे हमें अवश्य ही नुकसान उठाना पड़ेगा और हमारे सारे कार्य्य बिगड़ जावेंगे। इसलिए चाहे कोई भी सिद्धान्त सच्चा हो, परन्तु हमें भाग्यके भरोसे न बैठकर उद्यम और पुरुषार्थ करते रहना चाहिए। क्योंकि ऐसा करनेसे हमें किसी तरहकी हानि नहीं उठानी पड़ेगी और हर हालतमें लाभ होगा।

इसके सिवा यह भी देखा जाता है कि उद्यम और पुरुषार्थको न तो कोई छोड़ता है और न छोड़ सकता है। बात सिर्फ इतनी ही है कि जिन कार्योंसे मनुष्यको अधिक प्रीति होती है उनके असम्भव होनेपर भी, अनेक प्रकारकी जोखिमोंमें पड़कर भी, वह उद्योग करता है, और जिन कार्य्योंसे उसे कम प्रीति होती है उनको वह भाग्य या होनहारके भरोसे पर छोड़ देता है। जैसे भूख लगने पर अपना पेट भरनेके लिए सभी लोग उद्यम करना जरूरी समझते हैं, भाग्यके भरोसे बैठ रहना कभी पसंद नहीं करते हैं। इस कामको वे दो चार दिनके लिए भी भाग्य पर नहीं छोड़ते हैं, अर्थात् दो चार दिनके लिए भी इस बातको आजमाकर नहीं देखते हैं कि पेट भरना होगा तो भर जायगा, हम क्यों कष्ट उठावें और क्यों हाथ मुंह चलावें। कहनेका

मतलब यह है कि जरूरी कामोंको कोई भाग्य पर नहीं छोड़ता है, परन्तु जिन कामोंके किये बिना अपना गुजारा चल जाता है, या आलस्य-प्रमाद या विषय-भोगोंमें फँसे रहनेके कारण जिन कामोंके करनेमें लापरवाही हो जाती है, उन्हींको भाग्य या होनहार पर छोड़ दिया जाता है। देखो, अपने प्राणप्रिय पुत्रके बीमार हो जाने पर लोग उचित अनुचित सब प्रकारके उपाय करने लगते हैं। जिन धर्मोंको वे महापापजनक और घोर नरकमें डुबानेवाला समझते हैं या जिन लोगोंको महा अधर्मी और पापरूप समझते हैं, उनके देवी-देवताओंतकको पूजने लगते हैं, भंगी चमारोंके आगे सिर झुकाने लगते हैं और ऐसे अनेक टोटके करने लगते हैं जिनको वे बिलकुल झूठ और भ्रमपूर्ण बतलाया करते हैं। इस अवसर पर वे भाग्य या होनहारको बिलकुल ही भूल जाते हैं; और रातदिन दौड़ने फिरने और उपाय पर उपाय करनेके सिवाय उन्हें कुछ भी नहीं सूझता है। परन्तु बेटीके बीमार होने पर वे उद्यम, उपाय या पुरुषार्थका बिलकुल निषेध करने लगते हैं और एक मात्र भाग्य या होनहारके भरोसे पर बैठकर कहने लगते हैं कि इसकी जिन्दगी होगी और भगवानको बचानी होगी तो बच जायगी, नहीं तो उपाय करनेसे क्या होता है? क्योंकि जो होनहार है वह होकर ही रहती है— किसीके टाले कैसे टल सकती है? यदि उपाय करनेसे कुछ हो सकता—मौत टाली जा सकती, तो सेठ साहूकार और राजा महाराजा कभी न मरते। गरज कि जिन कामोंको लोग बहुत जरूरी नहीं समझते हैं उन्हींको वे भाग्यके भरोसे छोड़ देते हैं।

हमारी समझमें तो इस भाग्य या होनहारका बहाना बनानेका खयाल आना भी हानिकारक है, क्योंकि जिस मनुष्यको इस भाग्य या होनहारका जरा भी खयाल होता है उसका आलस्य-प्रमाद या उसकी विषय-वासनायें उसे अपनी ओर खींच लेती

हैं और उसके जरूरी कामोंको भी गैर जरूरी बना देती हैं। इस तरह वह अपने जरूरीसे जरूरी कामोंमें भी लापरवाही करने लगता है और उन्हें भाग्यके भरोसे छोड़ने लगता है। यदि किसी विद्यार्थीका चित्त खेल तमाशोंमें लगा रहता हो और परीक्षा देनेकी फिकर भी उसके सिरपर सवार रहती हो, तो ऐसी हालतमें भाग्य या होनहारका जरासा भी खयाल उसके हृदयमें बारंबार यह कल्पना उठाने लगेगा कि परीक्षामें पास होना यदि मेरे भाग्यमें लिखा होगा तब तो मैं पास हो ही जाऊँगा, फिर खेल तमाशोंको क्यों छोडूं और क्यों अपने शौकको पूरा न करूँ? इसी तरहके विचारोंसे बहुतसे विद्यार्थी फिसल जाते हैं और अपना पाठ याद करनेकी अपेक्षा खेल तमाशोंको जरूरी समझने लगते हैं। इसी प्रकार और भी अनेक जरूरी कामोंके लिए यह भाग्यका खयाल उद्यम और पुरुषार्थ करनेसे चित्तको हटाता है और मनुष्यको आलस्य, प्रमाद और विषय-कषायोंमें फँसा देता है। भारतवर्षके पुराणादि धर्मग्रन्थोंमें जबसे भाग्यके गीत गाये गये हैं तभीसे उसकी अवनतिका प्रारंभ हुआ है। जो भारत किसी समय अनेक प्रकारकी विद्याओं और कलाओंमें सबका शिरोमणि बना हुआ था वही आज बिलकुल विद्याविहीन और उत्साहरहित होकर जरा जरासी चीजोंके लिए दूसरोंका मुंह ताक रहा है।

इस लिए वास्तवमें भाग्य या होनहार कोई वस्तु हो या न हो, परन्तु मनुष्यको यही उचित है कि वह इसका खयाल भी दिलमें न आने दे और यही हौसला रक्खे कि जो कुछ होगा, हमारे ही उद्योगसे होगा, अर्थात् यदि हमने पिछले जन्ममें खोटे कर्म भी किये होंगे और संसार-चक्रकी भी कोई चाल हमारे विरुद्ध आकर खड़ी होगी तो भी हम अपने इस जन्मके उद्योगसे उन पर विजय पा सकेंगे, उनको उलट कर सुख-सम्पति प्राप्त कर सकेंगे; कमसे कम उनके खोटे फलोंको हलका तो अवश्य कर डालेंगे।

२४—कलियुग और पुरुषार्थ।

भारतके बहुतसे धर्म्मोंका आजकल यह भी एक सिद्धान्त है कि पहले तो सतयुग था जिससे उस समय चारों ओर धर्म्मोंका प्रचार था और अब कलियुग है जिससे धर्म्मकी हानि हो रही है। कलियुग और सतयुगकी इन बातोंकी जाँच करनेसे जाना जाता है कि जिस समय इस भारतवर्षमें बौद्ध तथा जैनधर्म्मका अधिक प्रचार हो गया, वेदोंकी मान्यता घट गई और देवताओंके आगे पशुओंको मारकर बलि देने या यज्ञादिमें पशुओंके होम करनेकी अधिक निन्दा होने लगी, तब पुराणमतानुयायी हिन्दुओंने उस समयको अपने विरुद्ध समझकर उसका नाम कलियुग रख दिया। उसी-समयसे वे लोग भूतकालकी बड़ाई करने लगे और उन्होंने ऐसी ऐसी आज्ञायें प्रचारित कीं कि कलियुगमें पशुओंका होम करना आदि निषिद्ध है, क्यों कि इस युगमें धर्म्मनिंदक लोग अधिक हो गये हैं। आगे चलकर जब हिन्दू धर्म्मका फिर प्राबल्य हो गया, यहाँतक कि बौद्ध लोग तो बिलकुल देशसे निकाल दिये गये और जैनी लोग हिन्दुओंके अनेक सिद्धान्तोंको स्वीकार करके नाममात्रको रह गये, तबसे जैन लोग भी इस समयको कलियुग कहने लगे। परन्तु इस पुस्तकमें हम इस बहसको नहीं उठाना चाहते हैं, बल्कि स्थूल रूपमें यही कह देना चाहते हैं कि चाहे इस समय कलियुग बीत रहा हो या सतयुग, किन्तु हमको यही उचित है कि जहाँतक हमसे हो सके हम स्वयं धर्मात्मा बननेकी कोशिश करते रहें और दूसरोंको भी धर्मात्मा बनावें। ऐसा करनेसे हमको किसी प्रकारकी हानि नहीं उठानी पड़ेगी, उलटा लाभ ही होगा। क्योंकि यदि यह समय वास्तवमें कलियुग है, तो हमको धर्ममें लगनेकी कोशिश कर-

नेसे कभी नुकसान नहीं होगा, बल्कि कलियुगका बुरा असर भी बहुत कम हो जायगा, और यदि यह वास्तवमें कलियुग नहीं है, तो भी धर्मकी ओर झुकनेसे हमको लाभ होगा। गरज चाहे कलियुग हो या सतयुग, परंतु हमको यह उचित नहीं है कि हम अधर्म और पापकर्म करने लग जायँ और पुरुषार्थसे मुंह मोड़ लें। हमको तो यही उचित है कि हम अपनी शक्तिभर धर्मपालन करनेकी कोशिश करते रहें और अधर्मसे हरदम बचते रहें। कलियुगका खयाल हमको धर्मकी ओर झुकने और अधर्मसे बचनेमें उत्साहहीन करता है। यदि हम कलियुगका यह खयाल अपने दिलसे निकाल दें और सभी समयोंको अपने पुरुषार्थके अधीन समझने लगें, तो इससे नुकसान तो कुछ भी नहीं होता है, उलटा धर्मकी ओर हमारा उत्साह बहुत बढ़ जाता है। इस वास्ते हमें यह खयाल अपने दिल पर नहीं लाना चाहिए कि इस समय कलियुग बीत रहा है या सतयुग, किन्तु यही विश्वास रखना चाहिए कि जैसा हम करेंगे वैसे ही बन जायँगे, अर्थात् बुरा करेंगे तो बुरे बन जायँगे और भला करेंगे तो भले हो जायँगे।

२५–भविष्यत् जाननेकी कोशिशसे हानि ।

दुनियाके लोगोंको भविष्यत् जाननेकी अर्थात् कल क्या होनेवाला है, इस बातको मालूम करनेकी, बहुत अधिक अभिलाषा रहती है । इसीके जाननेके लिए मनुष्योंने ज्योतिष, रमल, सामुद्रिक, स्वरोदय, शकुन और फल आदि अनेक उपाय निकाले हैं । वे ज्योतिषियों और फकीरोंसे पूछते फिरते हैं, भूत-प्रेतोंसे जानना चाहते हैं और जब मन बहुत ज्यादह भटकने लगता है तब धरती पर लकीरें खींचकर उनको ऊनी या पूरी गिनकर आगामी होनहार जाननेकी कोशिश करते हैं । परंतु एक बारकी लकीरोंसे जब उनके मनको संतोष नहीं होता है, तब वे बारंबार लकीरें खींचते हैं और कभी कुछ और कभी कुछ उत्तर पाते हैं, फिर भी उन परसे श्रद्धा नहीं हटाते हैं । जो आदमी उनको भविष्य बतला देनेकी आशा दिलाता हो–वह कैसा ही मूर्ख, विद्याहीन और चालाक क्यों न हो, वे उसके पीछे पीछे फिरने लगते हैं और उसकी खूब खुशामद करते हैं । जो ज्योतिषी उनके मनकी बात कह देता है उसे वे खूब माल खिलाते हैं और जो कोई भविष्यत्‌की कोई भयानक बात सुनाकर उन्हें डरा देता है उसके तो वे गुलाम ही बन जाते है और उस विपत्तिसे बचनेके लिए जो कुछ वह कहता है वही करने लगते हैं ।

इस पुस्तकमें हम इस बातकी बहस नहीं उठाना चाहते हैं कि भविष्यतकी बात जानी जा सकती हैं या नहीं, और यदि जानी जा सकती है तो किस रीतिसे । यहाँपर हम इतना ही कहना चाहते हैं कि यदि भविष्यतकी बात जानी जा सकती है, तो वह तभी जानी जा सकती है जब वह अमिट हो और किसी उपायसे बदली न जा सकती हो, अर्थात् जो कुछ होनेवाला है वह सब अनादिकालसे

ऐसा अटलरूपसे बँधा बँधाया हो कि किसी भी कारणसे बदला न जा सकता हो। ऐसी हालतमें ही उसका पहलेसे जान लेना संभव हो सकता है—अन्यथा नहीं।

परन्तु ऐसी अटल बात यदि पहलेसे जानी भी जा सकती हो तो उसके जाननेसे फायदा तो कुछ भी नहीं है, हाँ नुकसान निस्संदेह बहुत है। क्योंकि एक तो भविष्यतकी बातोंको पूछते फिरनेमें द्रव्य और समय खर्च होता है जो बिलकुल व्यर्थ जाता है, दूसरे बतलानेवाले भी सर्वज्ञ और केवलज्ञानी नहीं होते हैं, बल्कि जिस विद्याके द्वारा वे ये बातें बतलाते हैं उस विद्याके भी पूर्ण ज्ञाता नहीं होते हैं और इसी लिए कुछका कुछ बतलाकर लोगोंको व्यर्थ ही बहकाते रहते हैं। और यदि उनके मुंहसे कोई भारी विपत्तिकी संभावना सुन पाते हैं तो लोग व्यर्थ ही घबड़ा जाते हैं और यहाँ वहाँ भटकते फिरते हैं। मतलब यह है कि भविष्यतके झगड़ेमें पड़नेके बदले यदि वे अपने उद्यम और पुरुषार्थमें लगे रहें तो बहुत लाभ उठावें और अनेक चिन्ताओंसे बचे रहें। भविष्यतकी बात पूँछनेवाले उद्यमहीन होकर भटकते फिरते हैं और नुकसान उठाते हैं। इस लिए जिस देशमें भविष्यत् जाननेकी इच्छा बलवती हो जाती है वह देश गारत हो जाता है और जब तक यह चर्चा बनी रहती है तबतक हर्गिज़ नहीं पनपने पाता है। अतएव भविष्यतके जाननेकी इच्छा न करके अपने उद्यममें लगे रहना ही लाभकारी है।

ग्रन्थकर्त्ताकी अन्य पुस्तकें ।